I.S.S.N. 0975-6531

यू.जी.सी. केयरलिस्ट में सम्मिलित

वैचारिकी

भारतीय संस्कृति-साहित्य की शोध द्वैमासिकी

मार्च-अप्रैल 2025 * भाग 41 - अंक 2

भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता

भारत के अद्भुत स्थापत्य

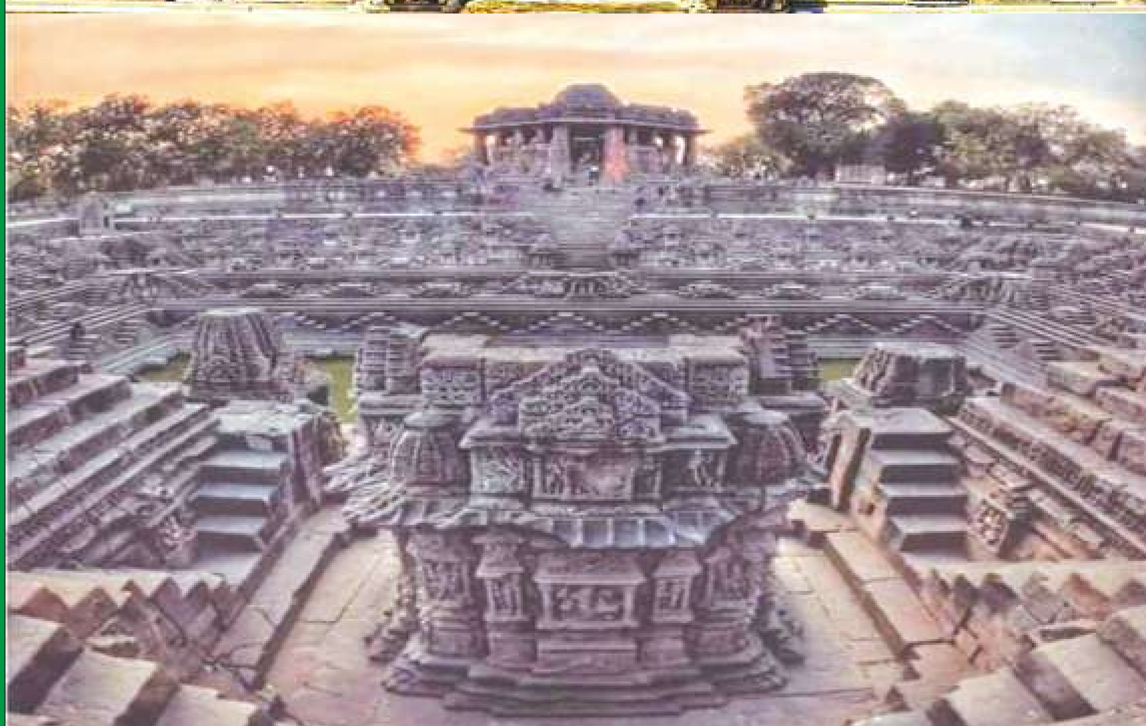

गुजरात के महेसाणा जिले में पुष्पावती नदी के किनारे सोलंकी नरेश भीमदेव प्रथम के शासनकाल (1022-1063) में निर्मित मोढेरा का सूर्य मंदिर।

वैचारिकी

भारतीय विद्या मन्दिर की द्वैमासिक शोध पत्रिका

अध्यक्ष-प्रधान सम्पादक

डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

सम्पादक

डॉ. बाबूलाल शर्मा

प्रबंध सम्पादक

शंकरलाल सोमानी

योगः कर्मसु कौशलम्

कार्यालय

भारतीय विद्या मंदिर

12/1, नेली सेनगुप्ता सरणी

कोलकाता-700 087

दूरभाष : 033-71001614

मो. : 09830559364

ई-मेल : bvm.vaichariki@gmail.com

Website : www.bharatiyavidyamandir.org

सदस्यता शुल्क

वार्षिक 450/- रुपये

द्वैवार्षिक 900/- रुपये

भुगतान

Payee's Name:
BHARATIYA VIDYA MANDIR
Current A/c No. : 32030320176
Bank : STATE BANK OF INDIA
Branch: New Market
IFSC Code No. : SBIN0004662

ISSN 0975-6531 **भाग : 41 अंक : 2**

वैचारिकी

धर्म-दर्शन-विज्ञान, साहित्य-लोकसाहित्य, इतिहास-पुरातत्व, कला-लोककला

यू.जी.सी. केयरलिस्ट में सम्मिलित

मार्च-अप्रैल, 2025 ✷ फाल्गुन शुक्ल 2, वैशाख शुक्ल 3, वि. सं. 2080-81 ✷ ₹ 50/-

अनुक्रम

- **अध्यक्षीय** 3
- **संपादकीय** 6
- **परंपरा और परिवर्तन**
  राजेंद्र रंजन चतुर्वेदी 9
- **धर्मसूत्रों में राजधर्म : एक विश्लेषण**
  डॉ. अजित कुमार 20
- **पौराणिक ग्रन्थों में वृक्षसंरक्षण तथा वृक्षों का महत्व**
  संतोष कुमार पाण्डेय 29
- **राजकीय संग्रहालय अलवर और उसकी कतिपय असाधारण कलाकृतियाँ**
  आस्था शर्मा 35
- **केशव कृत रसिकप्रिया के सन्दर्भ में कांगड़ा चित्र-शैली में नायिका भेद**
  मंजू गौतम 41
- **सूर-साहित्य में प्रकृति एवं संस्कृति की झलक**
  डॉ. अजय कुमार पटनायक 47
- **हिन्दी नाट्य-सृजन परम्परा में प्रसाद और उनका स्कन्दगुप्त**
  डॉ. शुभ्रा उपाध्याय 53
- **'अन्या से अनन्या' : एक हिस्से की सच्चाई**
  डॉ. अमरसिंह वधान 58
- **मन्नू भण्डारी की कहानियों में नारी-विमर्श**
  डॉ. गरिमा डिमरी 62
- **पहाड़ी आंचलिक उपन्यासों में चित्रित धार्मिक समस्या**
  डॉ. मनीषा बालासाहेब जाधव 71
- **अवधी, बघेली और छत्सीगढ़ी की रूप-रचना : एक तुलनात्मक अध्ययन**
  डॉ. गिरजा शंकर गौतम 77
- **सफल शिक्षक और सुधी समीक्षक डॉ. राम विनोद सिंह**
  पौल्टी कुमारी 84
- **कुपोषण का भारतीय परिदृश्य** (एक समाजशास्त्रीय अध्ययन)
  सुश्री सीता पाण्डेय 88
- **पाठक-मंच** 95
  फतह की हुई दिल्ली सिखों ने मुस्लिम बहन को तोहफे में दे दी (रावेल पुष्प)

■ प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक-प्रकाशक की अनुमति आवश्यक।

■ प्रकाशित लेखादि में अभिव्यक्त विचारों से प्रकाशक-सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

■ समस्त विवादों के लिए न्यायालय क्षेत्र कोलकाता।

अध्यक्षीय

सत्य का अन्वेषण

(गतांक से क्रमशः...)

नई लहर के समर्थक

जटिल विचारों की अभिव्यक्ति में गणित एक विस्मयकारी उपकरण तथा भाषा है तथा यह स्वाभाविक भी है। हमारा सौभाग्य है कि भारतवर्ष में कणाद, आर्यभट्ट जैसे महान गणितज्ञों ने अवतार लिया और देश को अपने अद्‌भुत ज्ञान से संपन्न किया था। देश में आयुर्वेद, नभकीय विज्ञान, धातुविज्ञान, योग तथा रसायन शास्त्र के क्षेत्र में पर्याप्त विकास हुआ था। पश्चिम में कोपरनिकस, गैलेलियो, न्यूटन आदि के साथ दिलचस्प तथा महत्वपूर्ण वैज्ञानिक क्रांति का सूत्रपात हुआ था।

19वीं सदी के अंतिम तथा 20वीं सदी के प्रारंभिक चरण में भौतिक-विज्ञान के क्षेत्र में मैक्स प्लैंक, आइंस्टीन आदि तथा सर आर्थर इडिंग्टन एन्ड्रू ल्यूबर्ग जैसे तंत्रिका-वैज्ञानिकों (Neuroscientists) के प्रयास से पुनरुत्थान हुआ। तत्कालीन विज्ञान-जगत में क्रांति उत्पन्न करने वाले 'सापेक्षिता का सिद्धांत' (Theory of Relativity) का प्रतिपादन आइन्सटीन ने इसी काल में किया था तथा इसी समय अंतरिक्ष, गुरुत्वाकर्षण तथा काल (Time) की व्याख्या भी की गयी थी। भारत में सर जगदीश चन्द्र बोस ने पौधों पर प्रयोग करना प्रारंभ किया था तथा इन प्रयोगों द्वारा उन्होंने प्रमाणित कर दिया था कि पौधों में भी जीवन, आत्मा तथा अनुभूति होती है। प्रमात्रा यांत्रिकी प्रकृति के रहस्यों की गहराई के सूक्ष्मतम स्तर तक जाती है। स्पंदन अथवा कंपन एवं अनेक अस्तित्वों के सिद्धान्त का चयन किया गया। सर आर्थर एडिनबर्ग, हाकिन्स, रोगर पेनरोज जैसे अनेक खगोल भौतिकी वैज्ञानिकों ने हमें ब्रह्माण्ड से संबंधित अनेक नए सिद्धांत विचारार्थ दिए। उन्होंने हमें ब्लैक होल्स (Black Holes), वर्महोल्स (Wormholes), अति अंतरिक्ष (Hyperspace), श्वेत-बौनो, जगत के विस्तृत होने तथा उसके स्पन्दित होने एवं विराट विस्फोट (Big Bang) आदि से संबंधित सिद्धान्त विचारार्थ दिए। कतिपय विद्वान ब्रह्माण्ड के 26 आयाम होने का तर्क देते हैं तथा अनेक विद्वान 11 या 10 आयाम होने की ही पुष्टि करते हैं। इन तथ्यों ने वास्तविकता के अध्ययन-क्षेत्र को अधिक विस्तृत कर दिया और अब हम यह देखने का

प्रयास कर रहे हैं कि सच्ची वास्तविकता क्या है। लेकिन निश्चित रूप से ये आयाम चार से तो अधिक हैं अर्थात लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई तथा काल (Time) से अधिक। 19वीं शताब्दी के अंत तथा 20वीं शताब्दी के प्रारंभिक चरण में रहस्य अधिक गहरा गया, जब ब्रह्माण्ड विषयक चिंतन में ऊर्जा तथा पदार्थ (Matter) से भिन्न एक नए तत्व 'चेतना' का प्रवेश हुआ।

डेविड बोह्म (Bohm) से लेकर अमित गोस्वामी जैसे नामचीन वैज्ञानिकों की बड़ी जमात का मत है कि चेतनता (Consciousness) अंतिम लक्ष्य हो सकता है। यह सभी को आच्छादित कर लेने वाली वस्तु जैसी है। अर्थात सब कुछ का प्रसर्जन चेतना से हुआ है। तो क्या यही (चेतना) ब्रह्म है? भौतिक विज्ञान तथा दर्शन का यहां विलय होता दिखाई दे रहा है। तथापि सत्य तथा वास्तविकता की खोज मानव द्वारा अभी भी जारी है।

चेतनता की इन्द्रियग्राह्यता

इरविन स्म्रोडिंगर के कथनानुसार - तब क्या यह सब एक रहस्य है? चेतनता भी एक रहस्य है। यदि हम मानव चेतना तथा अपनी बोधेन्द्रियों पर गौर करें तो कतिपय मूलभूत प्रश्न उत्पन्न होते हैं। उदाहरणार्थ देखने, सुनने, स्वाद, गंध, स्पर्शानुभव आदि की इन्द्रियां अपने धर्म से पृथक होकर स्वतंत्रतापूर्वक कार्य नहीं कर सकती। देखने अथवा सुनने की क्षमता हमारी तत्संबंधित बोधेन्द्रियों अर्थात नेत्र अथवा कान में निहित नहीं है। वहां से आगे संकेत भेजा जाता है- नेत्र अथवा कान को। आप इस तथ्य से अवगत हैं कि नेत्र की पुतलियों में मस्तिष्क नहीं रहता। नेत्र का लेन्स (Lens), दृष्टि-पटल (Retina) पर प्रकाश फोकस (Focus) करता है जो प्रकाश के अति सूक्ष्म कणों द्वारा उद्दीप्त होकर दृष्टि-स्नायु (Optic nerve) में करेन्ट (Current) प्रभावित करने लगते हैं। दृष्टि-स्नायु भी मात्र मस्तिष्क के दृष्टि-लौ (Optical Lobe) को हस्तान्तरित करने का माध्यम है। कतिपय वैज्ञानिकों का मत है कि मस्तिष्क की विद्युतीय तथा न्यूरोनल (Neuronal) गतिविधियां, दृष्टिपटल पर प्रदर्शित वस्तु से संबंधित विचार उत्पन्न कर देती हैं। मैक्सवेल का समीकरण यह बताता है कि चुम्बकीय विद्युत तरंगें अथवा संवेदनाएं, दिखाई देने वाली वस्तु से संबंधित विचार उत्पन्न करती हैं। परंतु मैक्सवेल का यह समीकरण यथार्थ के समीप नहीं प्रतीत होता है। अपितु यह अधिक समीचीन प्रतीत होता है कि विद्युत एवं चुम्बकत्व की उत्पत्ति चिंतन अथवा विचार द्वारा होती है। इस तरह वास्तव में आत्मा ही देखती है, सुनती है, सोच-विचार करती है तथा अनुभव करती है। किसी का ध्यान चेतना के भिन्न स्वरूप पर रहने के बावजूद उसकी तार्किकता सक्रिय रहती है। फोटोइलेक्ट्रिक ट्यूब के साथ एक रोबोट संयोजन कर सकता है परंतु उसका औचित्य नहीं बता सकता क्योंकि उसमें अनुभूति तथा इच्छा का अभाव है। मृत शरीर में आंख तथा अन्य इंद्रियां अपनी जगह पर रहते हुए भी निष्क्रिय हो जाती हैं- मृतक देख-सुन नहीं सकता, किसी प्रकार की अनुभूति नहीं कर सकता है। ऐसा क्यों होता है? हम लोगों ने योगियों के समाधिस्थ अवस्था में होने के बारे में सुना होगा अथवा देखा भी होगा। उस स्थिति में उनके हृदय तथा मस्तिष्क की गतिविधियां स्थगित रहती हैं- इसे डॉक्टरों तथा उपकरणों ने भी प्रमाणित किया गया है। परंतु समाधि की अवस्था से बाहर आने पर उनके शरीर के विभिन्न अंग सामान्य रूप से सक्रिय हो जाते हैं। ऐसा क्यों और कैसे हो जाता है?

नयनाभिराम गोचर दृष्य (Landscape) के साथ भी ऐसा ही होता है, उसमें निहित सौन्दर्य का निर्धारण, संदर्भ के मेल से, आत्मा द्वारा निदेशित मस्तिष्क से होता है। तो, क्या इसे संपूर्ण मान लिया जाय? क्या यह 'संपूर्ण' सभी आत्माओं में अपने प्रतिबिम्ब के साथ विद्यमान रहता है - जैसे कि अनेक पात्रों में भरे जल में सूर्य प्रतिबिम्बित होता है? परंतु पात्र में भरे जल में दिखाई देने वाले सूर्य को सूर्य नहीं कहा जा सकता, वह सूर्य का प्रतिबिम्ब मात्र है। परिमित आत्मा असंख्य जल-पात्रों में प्रतिबिम्ब के संपूर्ण योग सदृश्य है। प्रातःकाल जब हम

पूजागृह में बैठते हैं तो हमें वातावरण में शांति, स्वच्छता, निर्मलता एवं पवित्रता की अनुभूति होती है। यदि हम वहां अपने आराध्य के साथ अकेले हैं तो हमें ऐसा अनुभव होता है मानो हम उनसे वार्ता कर रहे हैं। क्या इस अनुभूति का कारण विद्युतीय चुम्बकत्व (electromagnetism) है? विद्युतीय चुम्बकत्व वास्वत में क्या है, इसे हम नहीं जानते। यह सब इन्द्रियग्राह्यता के बारे में है। इसी प्रकार हमारे आस-पास अन्य अनुभूतियां भी तैरती रहती हैं। क्या ये कुछ अधिक प्राप्त करने अथवा कुछ अन्य की तलाश करने का संकेत देती हैं? इसे हम नहीं जानते, हम केवल यह जानते हैं कि यह क्या है। हम केवल यह अनुभव करते हैं कि कोई बड़ी शक्ति, जिसे हम ईश्वर कहते हैं, का अस्तित्व है। वह क्या है, वह कैसा है, यह एक सनातन और चिरन्तन प्रश्न है।

इस संदर्भ में मैं कविवर जयशंकर 'प्रसाद' रचित 'कामायनी' की कतिपय पंक्तियां उद्धृत कर रहा हूं- ओह! शाश्वत सौंदर्य! तुम कौन हो? मैं स्वयं को कभी किस प्रकार अभिव्यक्त कर सकता हूं? तुम कौन हो, यह एक सनातन रहस्य है। अर्थ का खुलासा करने में विचार भी असफल हो जाते हैं।

प्रमात्रा भौतिक अवगाहनीय राकेट (Rocket) विज्ञान नहीं है

विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक मीचियो काकू (Kaku) ने प्रमात्रा भौतिकी के संबंध में कहा है - 'हम भौतिक वैज्ञानिक यहां बेहतर रंगीन टेलीविजन की वहज से नहीं टंका दिए गए हैं …। जगत में अपनी भूमिका तथा अपना स्थान जानने-समझने हेतु ही हम इसे करते हैं'। ऐसा प्रतीत होता है कि यथार्थ एवं ऊर्जा विज्ञान की भांति चेतनता के विज्ञान का धीरे-धीरे प्रस्फुटन होगा। यह विज्ञान मानव जाति को भव्य एवं श्रव्युदात्त मार्ग का अनुसरण करने हेतु प्रेरित करेगा।

यदि हम एक क्षण रुकें तथा सोचें कि दूर-दूर स्थित दो कण एक-दूसरे के सानिध्य में आते हैं तथा परस्पर समान व्यवहार करते हैं- कितना आश्चर्यजनक है यह! यह रहस्यमयी प्राकृतिक घटना क्या हमें इस बात के लिए प्रेरित नहीं करती कि अभी अनेक ऐसे मूलभूत तथ्य हैं, जिनका अनुसंधान और उन्हें समझना शेष है। हम दुहरी संकरी फटन अथवा रेखा-छिद्र (double slit) पर धुर प्रयोगों से संबंधित व्याख्या का अध्ययन करते हैं तो हमें आश्चर्य होता है कि कणों के तरंग के रूप में व्यवहार करने की पृष्ठभूमि में क्या रहस्य निहित है? क्या हम इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकते कि इसमें कणों की चेतना की प्रमुख भूमिका है? क्या हमें यह देखकर आश्चर्य नहीं होता कि कोई अन्य आयाम अथवा जगत, जीवन तथा घटनाओं का अबाध क्रम जारी रखने हेतु क्रियाशील है? हमें आभास होने लगता है कि सत्यान्वेषण में कुछ भी सुनिश्चित नहीं है तथा हमें संकेत मिलता है कि वहां जो कुछ है, वह मात्र संभावना है एवं वहां जो कुछ है वह संभावनाओं का सह-उत्पाद तथा भौतिकीकरण का संधात्री अथवा सांचा है। यह कब से, किसके द्वारा प्रारंभ किया गया था? क्या श्वेत बौनो का अस्तित्व है? क्या हमारे जगत के अलावा अन्य सामानांतर जगत भी है? और यदि इनका अस्तित्व है, तो क्या वे पूर्णतया स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर है? क्या अन्य जगत में जीवन है, जैसा कि कतिपय वैज्ञानिकों का मत है? क्या यह जगत 'स्वलिखित' 'स्व-रचित' है? यथार्थता के अनुसंधान में इस प्रकार के अनेक आश्चर्यजनक प्रश्नों का निर्विवादित उत्तर अभी भी प्रतीक्षित ही है।

अंत में मैं पुनः अपने प्रिय कवि जयशंकर प्रसाद की महान रचना 'कामायनी' के दो पद उद्धृत कर रहा हूं - *सत्य! किंतु तुम हो मात्र एक शब्द, तथापि कितना गूढ़ अर्थ है तुम्हारा, प्रज्ञा के पिंजरे में खेल रहे हो, तुम एक पालतू तोता जैसा व्यवहार करते हो। सभी चर्चाओं में तुम्हारी निरंतर खोज, एक खोखले शोर जैसी दुहराई जाती है, परंतु तर्कशील हाथों को र्स्पश से, तुम रहस्यम ढंग से विस्मृति में लुप्त हो जाते हो।*

- डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

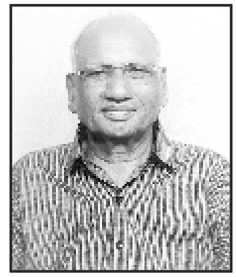

संपादकीय

धर्म निरपेक्षता : भारत का एक सांस्कृतिक मूल्य

2024 के स्वतंत्रता दिवस पर लाल किले की प्राचीर से दिए गए संबोधन में प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी ने देश को धर्म व ऊंच-नीच के आधार पर बांटने वाले कानूनों को खत्म करने की वकालत करते हुए सेकुलर सिविल कोड अर्थात धर्मनिरपेक्ष नागरिक संहिता लागू करने पर जोर दिया था। धर्मनिरपेक्ष नागरिक संहिता शब्द का इस्तेमाल करते हुए पीएम का यह कथन गौर करने लायक है कि देश का बड़ा वर्ग यह महसूस करता है कि वर्तमान नागरिक संहिता एक साम्प्रदायिक नागरिक संहिता है। सर्वोच्च न्यायालय ने भी समान नागरिक संहिता पर बार-बार चर्चा की है और ऐसे आदेश दिए हैं। राष्ट्र की एकता के लिए देश को धार्मिक आधार पर विभाजित करने वाले कानूनों को समाप्त किया जाना चाहिए। आधुनिक समाज में उनके लिए कोई जगह नहीं है। समय की मांग है कि एक धर्मनिरपेक्ष नागरिक संहिता (एससीसी) को अपनाए जाए और उस पर दृढ़तापूर्वक आचरण हो। धर्म निरपेक्षता शब्द यूरोप से, विशेष कर इंगलैंड से आयातित 'सेकुलिरिज्म' का अनुवाद है। इस शब्द का प्रवर्तन, यूरोप में इशाई धर्म-सत्ता अर्थात पोप द्वारा राज्यों के राजकाज में धर्माधारी हस्तक्षेप से तंग आकर किया गया था। स्पष्ट ही हमारे यहां भी इस शब्द की संविधान में प्रविष्टि इसी आशय से की गयी थी कि कोई भी धार्मिक सत्ता राजकाज या न्याय-व्यवस्था में हस्तक्षेप न करें। इस तरह धर्म निरपेक्षता का तातपर्य हुआ कि राज्य में किसी भी धर्म-समूह या सम्प्रदाय-पंथ के आंतरिक विधि-निषेधों से निरपेक्ष विधि-संहिता का पालन होगा जो प्राकृतिक या मानवीय आधारों या राज्य के हितों में होगी।

प्रधानमंत्री के संबोधन में 'धर्मनिरपेक्ष नागरिक संहिता' वाक्यांश इस्तेमाल होने के अपने निहितार्थ हैं। संभवतः समान नागरिक संहिता (यूसीसी) की जगह धर्मनिरपेक्ष नागरिक संहिता (एससीसी) का इस्तेमाल उन्होंने इसलिए किया ताकि संविधान में उल्लिखित 'धर्मनिरपेक्षता' शब्द और उसमें निहित दूरदर्शिता, भावनाओं एवं उसके औचित्य का शासन में निर्वाह हो सके। धर्मनिरपेक्ष नागरिक संहिता की वकालत संविधान सभा में डॉ. बीआर अंबेडकर द्वारा दिए गए तर्कों के बिल्कुल अनुरूप है। अनुच्छेद 44 (यूसीसी) को 23 नवंबर 1948 को संविधान सभा में डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने अनुच्छेद 35 के प्रारूप के रूप में पेश

किया जो उसी दिन सर्वसम्मति से पारित भी कर दिया गया। इसमें कहा गया था कि जो राज्य, नागरिकों के लिए पूरे भारत में समान नागरिक संहिता सुनिश्चित करने का प्रयास करेगा।

संविधान सभा में चर्चा के दौरान, हुसैन इमाम और कुछ अन्य सदस्यों द्वारा संशोधन पेश किए गए कि 'कोई भी समूह, वर्ग या समुदाय या लोग अपने व्यक्तिगत कानून को छोड़ने के लिए बाध्य नहीं होंगे, यदि उनके पास ऐसा कोई कानून है, और, बशर्ते कि किसी भी समुदाय का व्यक्तिगत कानून, जिसकी गारंटी कानून द्वारा दी गई है, समुदाय की पूर्व स्वीकृति के बिना नहीं बदला जाएगा। डॉ. बी. आर. अंबेडकर ने चर्चा के दौरान अपने जवाब में कहा- 'मुझे डर है कि मैं इस अनुच्छेद में पेश किए गए संशोधनों को स्वीकार नहीं कर सकता। मेरे मित्र, हुसैन इमाम ने संशोधनों का समर्थन करते हुए पूछा कि क्या इतने विशाल देश के लिए एक समान कानून संहिता होना संभव और वांछनीय है। हमारे देश में मानवीय संबंधों के लगभग हर पहलू को कवर करने वाली एक समान कानून संहिता है। हमारे पास पूरे देश में एक समान और पूर्ण आपराधिक संहिता है, जो दंड संहिता और आपराधिक प्रक्रिया संहिता में निहित है। हमारे पास संपत्ति के हस्तांतरण का कानून है, जो संपत्ति से संबंधित है और जो पूरे देश में लागू है। फिर परक्राम्य लिखित अधिनियम (निगोशिएबल इंस्ट्रूमेंट्स एक्ट) है, और मैं ऐसे असंख्य अधिनियमों का हवाला दे सकता हूं जो साबित करेंगे कि इस देश में व्यावहारिक रूप से एक नागरिक संहिता है, जो समान है और पूरे देश में लागू है।' स्पष्ट ही हुसैन इमाम इत्यादि द्वारा पेश संशोधन मुस्लिम धर्म के सापेक्ष थे जो समान नागरिक संहिता की अवधारणा को खंडित करने वाले थे।

1985 में, भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश वाई.वी. चंद्रचूड़ ने 'शाह बानो मामले' में इसी तरह के विचार व्यक्त किए थे। यह मामला एक मुस्लिम तलाकशुदा शाह बानो बेगम के बारे में था। उसने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के तहत भरण-पोषण के लिए आवेदन किया था। उसके पक्ष में फैसला सुनाया गया था। पर पति मोहम्मद अहमद खान ने इस आधार पर सर्वोच्च न्यायालय में अपील की थी कि धारा 125 मुसलमानों पर लागू नहीं होनी चाहिए क्योंकि यह मुस्लिम पर्सनल लॉ के विपरीत है। सर्वोच्च न्यायालय ने इस तर्क को खारिज करते हुए कहा कि धारा 125 सभी व्यक्तियों पर लागू होती है, चाहे उनका धर्म या पर्सनल लॉ कुछ भी हो। यह भारतीय लोकतंत्र का दुर्भाग्य था कि उस पर तत्कालीन राजीव गांधी कांग्रेस सरकार ने माननीय न्यायालय एवं संविधान के धर्म निरपेक्ष चरित्र का निरादर करते हुए अपने प्रचंड बहुमत का दुरुपयोग कर संसद में संविधान संशोधन कर मुस्लिम तुष्टिकरण को थोप दिया। वर्ष 2003 में जॉन वल्लमट्टम बनाम भारत संघ मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने फिर कहा था कि 'यह खेद का विषय है कि संविधान के अनुच्छेद 44 (यूसीसी) को प्रभावी नहीं किया गया है।' सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार से पूछा कि क्या वे समान नागरिक संहिता लागू करने के लिए तैयार हैं। 'समान नागरिक संहिता का क्या हुआ? आप इसे क्यों नहीं बनाते और क्यों लागू नहीं करते?' चौधरी हैदर हुसैन और बॉम्बे हाई कोर्ट के पूर्व मुख्य न्यायाधीश एमसी छागला जैसे प्रख्यात मुस्लिम न्यायविदों ने भी अनुच्छेद 44 (यूसीसी) को मजबूती से बरकरार रखा था।

एससीसी को लागू करना डॉ. बी.आर. अंबेडकर के सपनों को पूरा करने के बराबर होगा क्योंकि उनके अनुसार कानूनों के संहिताकरण का धर्म अर्थात पंथों या संप्रदायों से कोई लेना-देना नहीं है। स्वतंत्रता के बाद कांग्रेस सरकारों ने संविधान संशोधनों के माध्यम से संविधान की आत्मा पर एक के बाद एक प्रहार कर उसे क्षत किया, संभवतः इसे ही अंदर खाते समझ कर ऐसे प्रहारों से 'संविधान की रक्षा' का प्रलाप राहुल गांधी कर रहे हों, परन्तु संविधान-रक्षा का कार्य तो वास्तविक रूप से 'धर्म निरपेक्ष नागरिक संहिता' से ही संभव है, नहीं तो शाहबानो केश जैसे मामले इसे आरक्षित करते रहेंगे।

यह तत्थ है कि धर्म निरपेक्षता भारतीय संस्कृति के स्वभाव में हैं। इतिहास पर दृष्टिपात करें तो पूर्व मध्यकाल तक शासन-प्रशासन में यह स्वभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इस समय तक और इसके बाद भी किसी हिन्दू राजा-महाराजा ने दूसरे धर्म के लोगों को प्रताड़ित किया हो, इसका उदाहरण इतिहास में नहीं है, अपितु अभिलेखों में हिन्दू शासकों द्वारा मस्जिदों-मजारों-दरगाहों को भूमि-दान एवं अन्य अनुदानों के उल्लेख भरे पड़े हैं। मध्ययुगीन मुस्लिम सुल्तानों ने शासन-प्रशासन ने मुस्लिम सापेक्षता का जहर घोल दिया। मुगलकाल में बादशाह अकबर ने सर्वधर्म सापेक्षता की नीति अपनाई जो शाहजहां तक चलती रही, परंतु औरंगजेब ने 1669 ई. में हिन्दू मंदिरों-मूर्तियों के ध्वंस का फरमान जारी कर मुस्लिम धार्मिक कट्टरता का आचरण कर भारतीय आत्मा पर प्रचंड प्रहार कर दिया, हालांकि इससे कट्टर मुस्लिम खुश हो उठे क्योंकि उन्हें दूसरा धर्म जरा भी बर्दाश्त नहीं होता, जबकि भारतीयता यह है कि सब अपने-अपने धर्मों का पालन करने के लिए स्वतंत्र हैं और दूसरे की ऐसी स्वतंत्रता का आदर करते हैं अर्थात 'जीओ और जीने दो'। इस भारतीयता की रक्षा 'धर्मनिरपेक्ष नागरिक संहिता' से ही संभव है। वस्तुतः **धर्म निरपेक्षता भारत का एक सांस्कृतिक मूल्य है।**

- डॉ. बाबूलाल शर्मा

"वैचारिकी" पत्रिका के स्वामित्व आदि की घोषणा
(प्रपत्र 4 - नियम 8)

1. प्रकाशन का स्थान	:	भारतीय विद्या मंदिर 12/1 नेली सेनगुप्ता सरणी, कोलकाता-700087
2. प्रकाशन की आवृत्ति	:	द्वैमासिक
3. मुद्रक - प्रकाशक	:	नाम - शंकरलाल सोमानी, राष्ट्रीयता - भारतीय
	:	पता - सचिव, भारतीय विद्या मंदिर 12/1 नेली सेनगुप्ता सरणी, कोलकाता-700087
4. संपादक	:	नाम - डॉ. बाबूलाल शर्मा, राष्ट्रीयता -भारतीय
5. उन व्यक्तियों, संस्थाओं आदि के नाम जो पत्र के स्वामी और साझेदार हैं अथवा कुल पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के अंशधारक हैं।	:	भारतीय विद्या मंदिर, कोलकाता

मैं शंकरलाल सोमानी एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि ऊपर दिया गया विवरण मेरी जानकारी व विश्वास के अनुसार सही है।

ह. शंकरलाल सोमानी
सचिव - भारतीय विद्या मंदिर
12/1 नेली सेनगुप्ता सरणी,
कोलकाता-700087

31 मार्च 2025

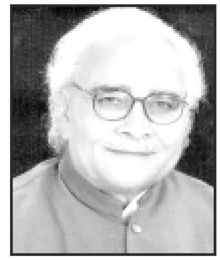

परंपरा और परिवर्तन

राजेंद्र रंजन चतुर्वेदी

संस्कृति और परंपरा परस्पर मिले हुए तत्व हैं, किन्तु वे पर्यायवाची नहीं हैं। परंपरा वह वेग है, जिसके माध्यम से संस्कृति गतिशील है। संस्कृति में निरन्तरता का जो सूत्र है, वह परंपरा है। जिस परिवेश में हमारा जन्म हुआ, उस परिवेश में निरन्तर गूँजने वाले हजारों-हजारों शब्द कहाँ से आये? ये भाषा, ये बोली, ज्ञान-विज्ञान की ये विरासत, ये विश्वास, ये कथा-कहानियाँ, ये प्रतीक, ये मिथक, ये सांस्कृतिक-तत्व, जो हमारी जीवनचर्या में व्याप्त हैं, हमको कैसे मिले? कहां मिले? ये सभी हमको अपने जीवन की अविच्छिन्न-परंपरा से प्राप्त हुए हैं, निरन्तरता के प्रवाह से प्राप्त हुए हैं। परंपरा प्रवाह, निरन्तर- प्रवाह। प्रवाह में जीवन बह रहा है, संस्कृति भी बह रही है। संस्कृति जीवन के साथ गतिशील है। जीवन के प्रवाह में ही संस्कृति प्रवाहित हो रही है। परंपरा जड़ नहीं हो सकती, जीवन प्रवाहशील है तो उसकी परंपरा स्थिर कैसे रहेगी? परंपरा भी कायाकल्प करती रहती है। इसलिए परंपरा का अध्ययन केवल प्राचीनता का अध्ययन नहीं है, वह नवीन होने की प्रक्रिया का भी अध्ययन है। परंपरा पोखर, जोहड़ या कूप नहीं है, परंपरा बहता नीर है। परता्मपरम्! और आगे, और आगे, और आगे, जैसे - वंश-परंपरा, गुर-शिष्य-परंपरा। जिस प्रकार गंगा की धारा का प्रवाह हिमालय से समुद्र पर्यन्त अविच्छिन्न है, कहीं से टूटा हुआ नहीं है। उसी प्रकार से परंपरा भूत-वर्तमान और भविष्य की निरन्तरता है। परंपरा और परिवर्तन का उदाहरण देखिये - यमुना बह रही है, यह प्रवाह है। हम घाट पर कल भी गये थे, तब भी यमुना बह रही थी, आज हम फिर गये, यमुना आज भी बह रही है, यह प्रवाह है, परंपरा है। किन्तु यमुना के प्रवाह में जिस जल का कल आचमन किया था, वह आज नहीं है। प्रवाह वही है, किन्तु जल बदल गया। इसी प्रकार पिता, पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र पीढ़ी दर पीढ़ी परिवर्तन हो रहा है लेकिन एक निरन्तरता है। परिवर्तन होते हैं लेकिन इसकी मूलधारा यों ही अक्षुण्ण बहती रही है। हमारा अपना ही मन निजी होते हुए भी नितान्त ऐकान्तिक नहीं है, वह जीवन के रिरंतर प्रवाह या दूसरे शब्दों में 'परंपरा' की रचना है। जिस प्रकार माता-पिता और माता-पिता की वंश-परंपराओं से हमने अपना शरीर प्राप्त किया है। उसी प्रकार हमारा मन भी उसी अविच्छिन्न वंश-परंपरा का दाय है। युगयीगन स्मृतियां और वासनाएँ कुंडलिनी के रूप में सोयी हुई हैं। हमारे अर्द्धचेतन और अचेतन मन में युग-युगांतर की स्मृतियां सो रही हैं, यह

निरन्तरता का सूत्र है।

पंडित विद्यानिवास मिश्रजी कहते थे कि "अंग्रेजी का tradition शब्द "परंपरा" का सही-सही पर्याय नहीं है। tradition शब्द का अर्थ है, किसी पदार्थ या विचार का यथावत (ज्यों का त्यों) हस्तान्तरण। जबकि परंपरा स्वीकार-परिहार अथवा त्याग और ग्रहण की वह निरंतरता है, जिसमें वह पदार्थ या विचार उत्कृष्ट से उत्कृष्टतर होता रहे।" एक पीढ़ी ने सभ्यता-संस्कृति, भाषा-संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान का जो विकास किया, दूसरी पीढ़ी और आगे ले गयी। परंपरा व्यक्ति और समाज को जोड़ती है, समरस बनाती है। परंपरा का न आधुनिकता से कोई विरोध है न विकास से कोई वैर है। आधुनिकता जीवन के निरंतर-प्रवाह की अविच्छिन्नता है, नया और नया, और-आगे, और-आगे, नित्य-निरन्तर। डा. हरद्वारी लाल शर्मा के शब्दों में --"परम्परा का अर्थ है परिवर्तन और निरन्तरता। लोक की रीति-नीतियों, रिवाजों और मान्यताओं, आचार-विचारों, आहार-व्यवहारों में समय के अनुरूप परिवर्तन आ जाता है, और इसी परिवर्तनशीलता अथवा परिवर्तन की क्षमता के कारण वह काल के झटके और धक्कों को सह लेता है और अनेक विजातीय-तत्वों को पचा लेता है। हिन्दू-लोक-जीवन में, महाभारत-काल से लेकर आज तक न जाने कितने सम्पर्क विदेशी-शक्तियों से हुए और न जाने कितने सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक संकट इस पर आये, पर वे सब-के-सब लोक-जीवन में समा गये और अनुकूल परिवर्तनों को आत्मसात् करके उसने इन्हें पचा लिया। इनसे यह लोक-जीवन अधिकाधिक सम्पन्न और समर्थ हो गया, और इस प्रकार लोक की निरन्तरता बनी रही। भोजन, पहनावा, या रीति-रिवाज में बदलाव आया, परन्तु इसकी भीतरी आत्मा अछूती रही। यह परिवर्तन और निरन्तरता है, जिसका एक नाम परंपरा है, यह लोक-जीवन का विधान है, और इसकी शक्ति का अक्षय स्रोत।" (लोकवार्ता-विज्ञान 247)।

सांस्कृतिक-परिवर्तन के कारक-तत्व

जिस प्रकार शांत जल में एक छोटा सा कंकड़ भी फेंक दिया जाए तो वह लहरें पैदा करता है, एक लहर के बाद दूसरी लहर, दूसरी लहर के बाद तीसरी लहर, पूरे जलाशय में नई लहर पैदा हो जाती हैं। एक कंकड़ के कारण पूरे जलाशय में लहरें भर जाती हैं, इसी प्रकार परिवेश में एक छोटा सा भी परिवर्तन आता है, उसकी भाषा में परिवर्तन आता है, उसके चिंतन में परिवर्तन आता है, उसकी जीवन-पद्धति में परिवर्तन आता है, संस्कृति में परिवर्तन आता है। लोकजीवन में नित नये लक्षित और अलक्षित कारकतत्वों के प्रवेश तथा उनके द्वन्द्व और समायोजन की निरन्तर-प्रक्रिया चलती रहती है। जैसे-- नये व्यक्तियों, पीढ़ियों, नये वर्गों, नये उपकरणों, नयी जातियों, बाजार और सत्ता तथा नयी फैशन के दबाव और हस्तक्षेप होते हैं। उत्पादन के साधन बदलते हैं तो वह भी संस्कृति है। जब गाँव, शहर में समा जाते हैं, तब उनकी संस्कृति भी बदल जाती है। नयी तकनीक आती है, वह तकनीक कितनी ही मामूली क्यों न हो। एक परिवर्तन दूसरे परिवर्तन का कारण होता है। निर्मलवर्मा ने अपने एक लेख में इस बात की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि जब एक नदी बांध दी जाती है या एक पेड़ टूट जाता है या एक जंगल उजड़ जाता है तो पूरा परिवेश ही परिवर्तित हो जाता है। उससे जुड़ी तमाम संवेदनाएँ, मिथक कथाएं, आशा-आकांक्षाएँ परिवर्तित हो जाती हैं।

मनुष्य की प्रकृति है चलना और चलते रहना। मनुष्य चलता है तो उसकी संस्कृति भी चलती जाती है। यह जहां भी जाता है, संस्कृति भी वहां चली जाती है। दो मनुष्य मिलते हैं, तब दो संस्कृतियाँ भी मिल जाती हैं। एक आदमी दूसरे आदमी के संपर्क में आता है तो उसकी भाषा का दूसरी भाषा से संपर्क होता है। एक भाषा दूसरी भाषा को प्रभावित करती हैं। एक भाषा के शब्द दूसरी भाषा में आते हैं, एक

भाषा की अभिव्यक्ति संपदा दूसरी भाषा में आती है। जैसे एक जनसमूह की भाषा की अभिव्यक्ति-संपदा दूसरे जनसमूह की भाषा में प्रवेश करती है, तो नए शब्द आते हैं, नए उच्चारण आते हैं, भाषा की नई भंगिमा आती है, उसी प्रकार से जब दो संस्कृतियाँ मिलती हैं तो नया नृत्य आता है, नया गीत आता है, नया स्वर आता है, नयी मुद्रा आती है, नई कविता आती है, नया नाटक आता है, नया शिल्प आता है, नई शैली आती है। एक आदमी का दूसरे आदमी से संपर्क होता है तो एक जीवन परंपरा का दूसरी जीवन परंपरा से संपर्क होता है। एक जीवन परंपरा के सांस्कृतिक तत्व दूसरी जीवन-परंपरा में आ जाते हैं।

सभ्यता और संस्कृति का विकास एक मनुष्य के दूसरे मनुष्य से सम्मिलन की गाथा है। एक मनुष्य से दूसरा मनुष्य मिला तो एक सभ्यता और संस्कृति से दूसरी सभ्यता और संस्कृति भी मिली। सामाजिक-राजनैतिक घटनाओं का निरंतर प्रभाव पड़ता है, आर्थिक व्यवहार का भी संस्कृति पर प्रभाव पड़ता है। संस्कृति भी मिली। संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में उतरती है तो द्वन्द्व भी होता है सांस्कृतिक समूह से दूसरे सांस्कृतिक समूह में संक्रमण करती है, एक जनपद से दूसरे जनपद में जाती है, एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाती है, एक देश से दूसरे देश में जाती है। जातियाँ चलती हैं, तब उनके साथ देवता भी चलते हैं। नेपाल के देवता कुमाउँ में आये, बालचिन हूंस्कार का पुत्र है। अपने पिता द्वारा अस्वीकार किए जाने पर उसने नेपाल छोड़ दिया। बंगाल में पूजित मनसा देवी का मन्दिर हरिद्वार में स्थापित हुआ, किनौर में हिमाचल में जमलू देवता भोटंत और चिन मान-सरोवर। रोमा लोग अपने को भारतवंशी बतलाते हैं।

सांस्कृतिक-परिवर्तन की प्रक्रिया के एक उदाहरण के रूप में संक्रमण हुआ, तब वन्य-संस्कृति के विश्वासों का भी कृषि-संस्कृति में नया रूपान्तरण हो गया। वन्य-संस्कृति का देवता 'मानव-बलि' भी ग्रहण करता था, कृषि-संस्कृति में वह अन्न और अन्न से बनी सामग्री का भोग लगाने लगा। वन्य-संस्कृति से चली आ रही प्रणालियाँ अपना रूप-रंग बदलकर जीवित रहीं, जैसे बलि में उड़द के दानों को सिंदूर में लपेटकर रखा जाता है, यह मांस का स्थानिक है। उसी प्रकार दुर्गा-पूजा में पेठे अथवा तरबूजे को काटना अथवा नारियल को पोड़ना बलि का ही प्रतीक है। डॉक्टर सत्येंद्र ने 'लोकजीवन और संस्कृति' निबंध में सकटचौथ की वार्ता का उल्लेख किया है, जिसमें तिलकुटे की मनुष्य जैसी आकृति बनाई जाती है। मुख पर घी और गुड़ रख दिया जाता है। घर का कोई बालक या पुरुष (बालिका या स्त्री नहीं) चाकू से उसका सिर धड़ से अलग कर देता है। काटते समय वह 'मैंऽऽ' की आवाज करता है। कटा हुआ सिर (तिलकुटा) गुड़ और घी काटने वाले को मिलता है। 'सकटचौथ' की यह 'तिलकुटा-बलि' बड़े स्पष्ट रूप में वन्य-संस्कृति की प्रथा के "धरती और बीज" की संस्कृति में हुए संक्रमण और संस्करण की कहानी कह देती है। तमिलनाडु में मरियम्मन को आमतौर पर खोपड़ी की माला पहनाई जाती रही है किन्तु अब उसे चूने से बनी खोपड़ी की माला के रूप में परिवर्तित किया गया है।

सांस्कृतिक-प्रक्रिया : विविधता से एकीकरण

भारत असंख्य विविधताओं का देश है। महाभारत में शताधिक जनपदों और सांस्कृति-समूहों का संदर्भ है। देश में भौगोलिक विशेषताएँ हैं - कहीं पहाड़ है, तो कहीं नदी है, तो कहीं समुद्र, कहीं रेगिस्तान है, कहीं बाँगर है, तो कहीं खादर है, कहीं जंगल है, कहीं महानगर का विकास हो चुका है। कहीं गर्मी अधिक पड़ती है, कहीं सर्दी अधिक पड़ती है। कहीं बर्फीली हवाएं चलती हैं तो कहीं वर्षा अधिक होती है। इसी प्रकार आनुवंशिक विविधताएँ हैं, आदमी के रूप-रंग शारीरिक-गठन की विविधताएं हैं। भाषा और बोलियाँ भिन्न-भिन्न हैं, आर्थिक-सामाजिक, सांस्कृतिक विविधताएं हैं। लेकिन उनमें एकीकरण की प्रक्रिया भी निरंतर

चलती रहती है। सामान्य आदमी विभाजित होकर जी नहीं सकता, धरती और आसमान एक है, हवा एक है, नदी एक है, बादल एक हैं, जाड़े-गरमी-बरसात एक हैं, अन्न एक हैं, पानी एक है। मनुष्य की मूल-प्रवृत्ति एक है। खाना-पीना, जीना-मरना एक है। इतिहास भी एक ही है। लकीरें ही तो अलग-अलग हैं, मनुष्य तो एक ही है और लकीरें भी वे, जो आदमी ने खींची हैं। अंततः मनुष्य-जीवन विराट-प्रकृति की ही निरन्तर प्रक्रिया है। विराट-प्रकृति, जिसके विस्तार को हम अनन्त ही कह सकते हैं।

संघर्ष और समन्वय

आदमी इधर से उधर जाता है, उसकी संस्कृति भी इधर से उधर चली जाती है, आदमी इससे मिलता है, उससे मिलता है, उसकी संस्कृति भी इससे और उससे मिल जाती है। वह व्यवहार करता है, उसकी संस्कृति भी व्यवहार करती है। वह संघर्ष करता है तो उसकी संस्कृति भी संघर्ष करती है। नये और पुराने के बीच द्वन्द्व होता रहा है और आज भी हो रहा है। जब भिन्न-भिन्न देशों के लोग मिलते हैं, तब भिन्न-भिन्न संस्कृतियां भी मिलती हैं, परसम्पर द्वन्द्व भी होता है किन्तु श्रेष्ठ-तत्वों का समन्वय भी होता है।

वैदिक परंपरा और लोक-परंपरा : द्वन्द्व और सामंजस्य

भागवत में वैदिक और लौकिक परंपराओं का द्वन्द्व बहुत स्पष्ट है। इन्द्र-यज्ञ और गोवर्द्धन-पूजा का प्रसंग हो या ब्रह्मा-मोह का प्रसंग हो। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने उल्लेख किया है कि नदी में अस्थि-निक्षेप वेद में नहीं है किन्तु संथालों में लोकविश्वास है कि दामोदर नदी में अस्थि-निक्षेप के बिना गति नहीं होती। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने लिखा है कि वेद में पूजा शब्द भी नहीं है। इसका मूल अवैदिक भाषाओं में मिलता है। बहुत लोगों की धारणा है कि- हमारी "पूजा" नामक क्रिया वेदबाह्य है। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने अपने निबन्ध "भारत में नाना संस्कृतियों का संगम" में सिंदूर की प्रथा का उदाहरण दिया है- "इस समय विवाहादि के अवसर पर सिन्दूर एक अपरिहार्य पदार्थ है, इसके बिना विवाह पूर्ण ही नहीं होता, किन्तु सुरेन्द्रमोहन भट्टाचार्य के पुरोहित दर्पण (अष्टम संस्करण) के कई स्थान उलटकर देखने से ही पता चल जायेगा कि यह सिन्दूर का आचार भी आर्यों ने किसी आर्येतर जाति से ही ग्रहण किया था। सिन्दूर का न तो कोई वैदिक नाम है और न सिन्दूर दान का कोई मन्त्र। सामवेदीय घट-स्थापन में सिन्दूर को स्पर्श करके जो मन्त्र पढ़ा जाता है, वह यह है - "ॐ सिन्धोच्छवासे पतयन्तम्" इत्यादि (पृ.-8), यजुर्वेदी घट-स्थापन में ॐ सिन्धोरिव प्राध्वने शूधनसो' इत्यादि और विवाह में सामवेदी अधिवास का मन्त्र इस प्रकार है -ॐ सिन्धोरुच्छवासे पतयन्त भुक्षितम्' इत्यादि (पृ.-70)। इन तीनों में से प्रथम और तृतीय मंत्र ऋग्वेद (7.46.43) में पाया जाता है। किंतु वहाँ सिन्धु नदी के उच्छवास का प्रसंग है। केवल शब्द-साम्य-मात्र से वह सिन्दूर के मंत्र रूप में व्यवहृत हुआ है। द्वितीय मंत्र ऋग्वेद का मंत्र (4.58.7) है जिसके साथ सिन्दूर का संबंध नहीं है। सामवेदी अधिवास-मंत्र में स्वस्तिक, शंख, रोचन, श्वेत सर्षप, रौप्य, ताम्र, चामर, दर्पन के जो मंत्र हैं, (70-71 पृ.), वे यद्यपि वैदिक मंत्र हैं, परंतु इन पर पदार्थों के साथ उनका कोई योग नहीं है। सिन्दूर मूलतः नाग लोगों की वस्तु है, उसका नाम भी नागगर्भ और नाग-सम्भव है। ("भारत में नाना संस्कृतियों का संगम" : आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन, शान्तिनिकेतन, विशाल भारत भाग 25 अंक 4 चैत्र 1906 : 1940 अप्रैल, पूर्णांक 148)।

शिव : द्वन्द्व और अन्तर्भुक्ति

आचार्य क्षितिमोहन सेन ने दक्ष-यज्ञ में शिव के विरोध को आर्य-वेदाचार और आर्येतर शिवोपासना के द्वन्द्व के रूप में परिभाषित किया है। दक्ष के यज्ञ में शिव नहीं बुलाये गये, और शिवहीन यज्ञ भूत-प्रेत-प्रमथादि द्वारा विध्वस्त हुआ, इसी से समझा जा सकता है कि शिव उस समय तक आर्येतर-जातियों के देवता थे। शिव किरातवेशी हैं, शिव शबर-पूजित

हैं। ब्रजभूमि में शिव से सम्बन्धित प्राचीन स्थान हैं। ब्रज के अनेक स्थलों से शिव की कहानी जुड़ी हुई है। नंद गाँव में जोगधूनी कुण्ड पर शिव ने धूनी रमायी थी। कामवन क्षेत्र में देहकुंड पर ब्रज की गोपियों ने वेणीशंकर महादेव की स्थापना की थी तथा सुनेहरा में स्वयं शिव को राधा ने सोने का हार पहनाया था। ब्रज में शिव की पूजा होती है। परन्तु वैष्णव परिवारों में शिव को अपवित्र देवता समझा जाता है। इस पहेली के विश्लेषण के लिये हम शिव सम्बन्धी एक गाधा को आधार बनायेंगे।

शैव-उपासना की परंपरा किस प्रकार श्रीकृष्ण में सम्मिलित हो रही है, इसका उदाहरण एक लोकगीत-गाथा है। हालांकि यह सूरदास के जमाने में भी प्रचलित रहा होगा। क्योंकि सूरसागर में यह पद है.... मैं जोगी जस गाया रे बाला। कृष्ण ने जन्म लिया है, यह खबर सुनकर कैलास-पर्वत से चल कर शिव गोकुल में आकर अलख जगाते हैं। ब्रज की गोपियां जाकर जसोदा से कहती हैं- देखो री एक बाला जोगी द्वारा तिहारे आया है री। अरी जसोदा, आज तो तेरे दरवाजे पर एक जोगी आया है। शरीर में भभूत रमी है, बड़ी-बड़ी जटा है, माथे पर चन्द्रमा है, गले में नाग लटका है। कंचनथाल में भिक्षा सजा कर मैया जसोदा दरवाजे पर आई, जोगी बोला- ना चाहिये तेरी दौलत दुनियां ना चाहिये धन माया री, अपने गुपाल जी कौ दरस कराया दै, जा कारन आया है री। तू मोतियों की माला ले, कंचन थार ले जोगी, ऐसी जिद क्यों करता है? तुझे देख कर मेरा लाल डर जायेगा। जोगी बोला- मैया, हमारी भिक्षा तो गोपालजी का दर्शन करना है। मैया तो डर रही थी। जोगी दरबाजे से लौटा और लाला का रोना शुरू हो गया। चुप ही न हो। थाली बजायी, नजर उतारी, दूध से लगाया पर लाला तो चुप नहीं हो रहा। रोता ही जा रहा है। क्या करूँ? अरी मैया, यह तो उस जोगी का ही कुछ चेटक है, उसे बुलवाओ। जोगी आया और उसने लाला को गोद में ले लिया। "बिथा भई सब दूर बदन की किलकि उठे नंदलाला।" अब जसोदा प्रसन्न हो कर जोगी से बोली - रहु रे जोगी नन्द-भवन में ब्रज कौ बासौ कीजै। जब-जब मेरौ लाल रोवै तब-तब दरसन दीजै। रे जोगी, तू तौ चेटक वाला है, अब तू नन्दगांव में ही रह जा, मेरा लाला जब कभी रोने लगे, तब-तब तू आ जाया करना। नंदभवन की पौरी के दक्षिण किवाड़ के पीछे बाबा महादेव का दर्शन है। अब इस गाथा में ध्यान देने योग्य सूत्र हैं -- शिव का तिरस्कार, शिव-उपासना की परंपरा में योग-संप्रदाय की अन्तर्भुक्ति, शिव की योगी वेशभूषा, योग से भय-आतंक, योगी का चेटक-चमत्कार, योगी द्वारा बाल-रक्षा का भाव, योगी का स्वागत तथा सत्कार। वैष्णव तथा शैव-तत्वों का समायोजन भक्ति की धरती पर होता है। जब श्रीकृष्ण रास रचाते हैं, तो भगवान शिव गोपी रूप धारण करके रास में पधारते हैं - मनमोहिनी ग्वालिन बन आया भोला-भाला रे।

ब्रज में जहाँ इस प्रकार के विधान है कि मुंह पर सकला जुठैरा हो जाता है तो दादी माँ कहती हैं कि महादेवजी की "जल्हैरी" का पानी लगा आओ। कोई जीव पैर से दब कर मर जाता है तो बड़ी-बूढ़ी कहती हैं कि महादेव जी के मन्दिर में दीपक जला आओ। इसी के साथ निषेध भी विद्यमान हैं कि महादेव जी का प्रसाद नहीं खाया जाता। ब्रज में कई जगह पर देखने में आया है कि महादेव जी पर जल तो चढ़ा आते हैं पर पूजा का लोटा नीचे रखा जाता है। जूठ-बिठार करने वाले को अघोरी या सरभंगी कह देते हैं, जबकि अघोरी या सरभंगी शैव-संप्रदाय हैं। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने विशाल भारत (अप्रैल 1940) में प्रकाशित 'भारत में नाना संस्कृतियों का संगम' शीर्षक लेख में कहा कि शिव आर्येतर देवता हैं। संभवतः उन दिनों मुनि-पत्नियाँ अधिकतर आर्येतर कूलोत्पन्ना थीं, इसलिये वे अपने पितृकुल के देवता की पूजा करने के लिये व्याकुल रहतीथी। वे अपने पितृकुल के इस देवताओं को न भूल सकीं। ध्यान देने की बात यह है कि राक्षसराज रावण भी शिव का उपासक है, यक्षराज कुबेर भी शिव का उपासक है, शिव का किरात-रूप तो पुराण-प्रसिद्ध है ही, पिशाच

मांसाहारी थे किन्तु वे भी शिव के ही उपासक थे महादेव की बरात का कुनबा प्रौगतिगासिक- भारत के गणगोत्रों का कुनबा है।

भैरव शिव का ही एक स्वरूप था। लाँगुरिया और हनुमान का सम्बन्ध भी शिव से है। डा. सत्येन्द्र ने ब्रज में प्रचलित लाँगुरिया शब्द की व्युत्पत्ति लांगूल से सिद्ध की है। हनुमान को तो लांगूल भैरव भी कहा जाता है। बूढ़ेबाबू लोकदेवता को शिव का रूप माना गया है। शिव के साथ वृषभ, नाग, चन्द्र, लिंग, मातृ, मूषक, सिंह, नाग और मयूर (टोटम) देवतत्व की अन्तर्भुक्ति होती है। 'माता जिनकी पार्वती पिता महादेव' रूप गणेश देवतत्व का समायोजन शिव के साथ हुआ। एक और शिव और मातृ-उपासना की परम्परा की अन्तर्भुक्ति होती है। तथा दूसरी और विष्णु की अन्तर्भुक्ति है। हस्तिगणगोत्र का देव गणेश, मूषक गणगोत्र, नागजाति का देव सर्प, चन्द्र-उपासकों का चन्द्र, नन्दीगण, मयूरगण कार्तिकेय सुब्रह्मण्यम, सिंह गणगोत्र, गंगा आदि कितने ही देव महादेव में समाये हुए हैं? शक्ति तत्त्व पार्वती के रूप में विद्यमान हैं- अर्घांगीश्वर। विष्णु और शिव का द्वन्द्व भी हुआ और हरिहर के रूप में अन्तर्भुक्ति भी। हरिहर में शिव और विष्णु अंतर्भुक्त हैं। शिव और शक्ति शिव शक्त्यैक रूपिणी।

गणपति और चन्द्रोपासकों का द्वन्द्व

लोकजीवन में एक ओर चन्द्रमा की पूजा का विधान है, श्रीकृष्ण चन्द्रवंशी हैं। शिव के मस्तक पर द्वितीया का तथा भगवती के माथे पर अष्टमी का चन्द्रमा है। शुक्लपक्ष की द्वितीया को चन्द्रदर्शन का विधान है, पुराना सूत अर्पित करके द्वितीया के चन्द्रमा की पूजा की जाती है। महिलाएं करवा-चौध को चन्द्रमा की पूजा करती हैं, अर्घ्य चढ़ाती हैं, दूसरी ओर भाद्रपद शुक्ला चौथ को चन्द्रमा के दर्शन का निषेध (Taboo) भी है। लोकमान्यता है कि श्रीकृष्ण ने भाद्रपदशुक्ला का चन्द्रमा देख लिया था... लोकविश्वास में इस कथा को कहने-सुनने से चौथ-चन्द्र देखने के दोष का परिहार माना जाता है। (भागवत स्कन्ध 10 अध्याय 56)। उल्लेखनीय है कि श्रीकृष्ण को स्यमन्तक-मणि की चोरी का कलंक लगा था, उसे चन्द्र-दर्शन का परिणाम बतलाया जाता है - चौथा चन्द्रमा देखियौं मोहन भादों मास। स्यमन्तक-मणि की कथा भागवत में है। भाद्र की चौथ को ब्रज में पत्थरचौथ भी कहते हैं क्योंकि इस दिन यदि चन्द्रमा दिखाई पड़ जाय तो लोग पत्थर फेंकते हैं। एक लोक कहानी है कि चन्द्रमा ने देखा कि गणपति अपने मूषक पर बैठ कर जा रहे हैं, तब चन्द्रमा उनको देख कर हँसने लगा तब गणपति ने चन्द्रमा को शाप दे दिया। गणपति और चन्द्रमा का द्वन्द्व। करवा चौथ व्रत स्त्रियों का बड़ा महिमामय व्रत है परन्तु ब्रज के पुरुष चन्द्रमा की पूजा नहीं करते। ब्रज में एक कहानी कही जाती है कि गणेश जो एक बार चन्द्रलोक के रास्ते से जा रहे थे कि चूहे पर से गिर पड़े। इस पर चन्द्रमा हंस दिये। तब क्रुद्ध गणेश ने शाप दिया कि जो तेरा मुख देखेगा उसे कलंक लगेगा। जब देवताओं ने बहुत आग्रह किया तब गणेश ने कहा कि यह शाप केवल चौथ का चन्द्रमा देखने से लगेगा। श्रीकृष्ण ने चौथ का चन्द्रमा देख लिया था, इसलिये उन्हें स्यमन्तकमणि चोरी का कलंक लगा। भागवत में स्यमन्तकमणि की कथा है। इस्लाम में चन्द्रमा के दर्शन की महिमा है, चन्द्रमा के दर्शन के बाद ही ईद का निश्चय होता है, मस्जिदों आदि पर चन्द्रमा की आकृति बनी होती है, चन्द्रमा के प्रति यह पवित्रता की भावना है।

मुस्लिम-संस्कृति : द्वन्द्व और समन्वय

"लोकवार्ता की पगडंडियाँ (पृ.- 234)" में डा. सत्येन्द्र ने बंगाल में प्रचलित रायमंगल की कथा उद्धृत की है। इस दक्षिणराय का एक भक्त एक ऐसे स्थान पर पहुँचा जहाँ उसने देखा कि एक ओर तो बड़े मियाँ (गाजीखां) की समाधि बनी हुई है, और उसके पास ही दक्षिणराय का सिर स्थापित है। लोग दोनों की पूजा करते हैं। वहाँ कहानी कही जाती है कि इस भूमि पर अधिकार के सम्बन्ध में बड़े मियाँ और 'दक्षिणराय' के बीच भयानक युद्ध हुआ। तभी

भगवान प्रकट हुए। ये भगवान आधे रूप में मुहम्मद थे और आधे रूप में मोरपंखधारी कृष्ण, एक हाथ में पुराण और दूसरे हाथ में कुरान। उन्होंने युद्ध रोका, और कहा अब से बड़े मियाँ की समाधि के साथ दक्षिणराय के सिर की स्थापना इस क्षेत्र में होगी और लोग दोनों की पूजा करेंगे। डा. सत्येन्द्र का कथन है कि "इस वृत्त में दो धाराओं का संघर्ष भी है और उनके समन्वय की प्रक्रिया भी है।"

उत्तर भारत में सैयद और भूमियाँ लगभग प्रत्येक गाँव में हैं, जिनकी पूजा दोनों समुदाय करते हैं। यहां हिन्दू-मुस्लिम की भेदक रेखाएँ ही पिघल गयी हैं। ऐसे दृश्य मैंने सासनी में स्वयं देखे हैं कि- मुस्लिम-महिलाएं सैयद के थान पर जा रही हैं और "सीता-वनवास" का गीत गा रही हैं। जिन्न या जिन्द अरब-परंपरा से आया है किन्तु उसकी मानता हिन्दू-जातियों में भी है, वह बेरिया पर रहता है। केवड़ा की बाड़ी में रहने वाला रईस है। सैयद के गीत हैं - सैयद सोये गोरि में दै दै गहरी नींद जगावै बीबी फ़ातिमा। सैयद यों भरि यों भरि यों भरि आबै, जैसें कूआ भरें पनिहार माई रे। सूफियों का लोकजीवन पर प्रभाव पड़ा, क्योंकि वे भारत के लोकजीवन की गहराई में उतर गये थे। उन्होंने हिन्दूलोकगाथाओं को लेकर बहुत साहित्य रचा जैसे- हीर-रांझा हो अथवा सोहनी-महिवाल, पद्मावत।

लोकजीवन की गहराई में झांकें तो, देखें एकीकरण की प्रक्रिया- जहां बीबी फातिमा और जसोदा का अन्तर समाप्त हो जाता है। मुस्लिम घरों में बालक का जन्म-मंगल होता है तो मुस्लिम घरों की स्त्रियाँ जच्चागीत गाती हैं - अलबेली जच्चा मान करे नंदलाल से या बीबी फातिमा ने जाये नंदलाल। इससे क्या अन्तर पड़ता है कि उसका नाम और रूप- यशोदा है या फातिमा है? बात तो मातृ-हृदय की है। मातृहृदय का जो रस छातियों में क्षीरसागर बन कर उमंग रहा है, वही तो संस्कृति है। जो संस्कृति मानव-संबंधों को रागात्मक बना देती है, दिव्य बना देती है , उनको रस में डुबो देती है, उसी का नाम संस्कृति है। लोकसंस्कृति लोकधर्मी है, वात्सल्य का भाव है तो उसकी कोई बिरादरी या मजहब नहीं हो सकता, वह तो मानुष-भाव है।

धर्मयुग के 10 मई '70 के अंक में बालकवि वैरागी ने 'कच्छ का पदयात्री' (संख्या 2) में हिंगलाज-माता की यात्रा का वर्णन लिखा था, उनके शब्द हैं - "सबसे ज्यादा आश्चर्य और सुख की बात यह है कि हिंगलाज-माता का पुजारी सदा-सदा से मुसलमान होता आया है। कहा जाता है कि मुसलमान-धर्म में मूर्तिपूजा की कोई मान्यता नहीं है पर हिंगलाज-माता जाकर कोई देखे कि वहां मुसलमान मूर्तिपूजा करता है। विशेष बात यह है कि हिंगलाज-माता की मूर्तिपूजा कोई पुरुष नहीं कर सकता है। वहां पुजारी न होकर पुजारिन हुआ करती है। मैं गया तब भी वहां की पुजारिन एक महिला थी। मन्दिर के आसपास ही सघन झाड़ हैं।"

16 अप्रैल, 1970 के धर्मयुग में 'एक दरगाह जो मन्दिर कहलाती है' शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ ता। आगरे के पास रुनकता नामक स्थान है, जहां से कुछ मील दूर यमुना-किनारे 'रेणुका' का क्षेत्र है, यहीं परशुराम का मन्दिर है, यहां से कुछ दूर मथुरा की दिशा में जाने पर यमुना किनारे पर ही एक विशाल भवन है। वहाँ पहुँच कर सबसे पहले भवन के नीचे भैरों की सिंदूर से पुती हुई मूर्ति और त्रिशूल दिखाई पड़ता है। इमारत के ऊपर चढ़कर एक विशाल मजार या समाधि दिखाई पड़ती है; जिसे देखकर ही कोई भी समझ सकता है कि यह किसी मुसलमान की समाधि होनी चाहिए। यहाँ एक ही स्थान पर एक ओर हिन्दुओं के भैरोंजी हैं तो दूसरी ओर मजार है। यह समाधि 'सरवर सुल्तान' की है, जो बहुत पहुँचे हुए मुसलमान फकीर अथवा सूफी थे। किन्तु ऐसे पीर का भैरोंजी से क्या सम्बन्ध? ऐसे दोनों साथ-साथ कैसे? तो वहाँ माना जाता है कि सरवर सुल्तान भैरों के गण हैं। यह समीकरण की प्रक्रिया है कि कोई देवता, पुत्र माना गया अथवा भाई माना गया, अथवा सेवक माना गया, मित्र माना गया, यह संबंध देवता के उपासक-गण का संबंध है। इसी प्रकार

सत्यपीर है, एक युग्म लोकदेवता है... मीयां-मसानी।

समस्त उत्तरी भारत में गोगाजी, गुरु गुग्गा या जाहरपीर की मान्यता है, यद्यपि इनका मूल स्थान ददरेवा है, जो हनुमानगढ़ जिले (राजस्थान) में है। इनकी पूजा बिना किसी भेदभाव के हिन्दू और मुसलमान दोनों ही करते हैं और हिन्दुओं में भी अन्त्यज से लेकर ब्राह्मण तक में इनकी मान्यता है। इनके पुजारी मुसलमान भी होते हैं। गुजरात से राजस्थान तक जिस जाहरपीर या गोगाजी की पूजा होती है उसमें यक्ष, नाग, सिद्ध, नाथ, राजपूत वीर-पूजा तथा मुसलमानी पंचपीर परंपरा के तत्त्व घुले मिले हैं। अलीगढ़ के पास मैकासुर नामक लोकदेवता की पूजा होती है। वहां मुसलमानों को भोजन कराना पूजा का अंग है।

राजस्थान में भुरान बाबा (धर्मयुग 10 अप्रैल 1977) अलाउद्दीन खिलजी के जमाने से जुड़ी किंवदन्ती है। "शेखावत्स एंड देयर लेंड्स" नामक पुस्तक में हरनाथ सिंह डूँडलोद ने लिखा है कि "बालाजी के सबसे बड़े बेटे थे मोकलजी (विक्रमी 1487) के कोई संतान नहीं थी। खेत में गाय चराते समय एक फकीर शेख बुरहान मिले, उनके आशीर्वाद से उनके घर पुत्र का जन्म हुआ, उसका नाम शेखा रखा गया। इनसे आगे चलकर शेखावत गोत्र बन गया। कर्नल टाड ने राजस्थान के इतिहास में इसका उल्लेख किया है। जयपुर-दिल्ली मार्ग पर अचरौल के आसपास की पहाड़ी पर भुरान बाबा की दरगाह है। वहाँ कब्बाली गा कर पूजा की जाती है। इनके अतिरिक्त पानीपत में कलन्दरसाहब की दरगाह है। मोइनुद्दीन चिश्ची, कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी, ख्वाजा नसीरुद्दीन, हजरत मटका शाह बाबा की दरगाह पुराना किला के पास स्थित है। हजरत शाह तुर्कमान बयाबनी की दरगाह दिल्ली के सबसे पुराने तीर्थस्थलों में से एक है, यहाँ हिन्दू भी जाते हैं।"

लोकजीवन में पंच का तत्त्व व्यापक है - पंच भूत, पंचेन्द्रिय, पंच पात्र, पंच देव। पांडव पांच थे। पाँच वृष्णि वीर थे। पंचायतन में पाँच की उपासना का विधान है। जैनों में भी अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु - ये पांच पूज्य हैं। इसी के साथ पंच-पल्लव, पंचपात्र का समावेश होता है। यक्ष संस्कृति का वीर आगे चल कर पीर में अन्तर्भुक्त होता है। पीर भी पाँच हैं- मुहम्मद अली, बीबी फातिमा, हरदौल, भुमियां और चामड।

सांस्कृतिक-प्रक्रिया के रूप

नाग-गरुड़, गंधर्व-निषाद, यक्ष, वानर, देव तथा असुर आदि वे जातियां, जिनके युद्धों की स्मृतियां पुराकथाओं में जीवित हैं, वे सब एक-दूसरे में समा गयीं, अन्तर्भुक्त हो गयीं। अन्तर्भुक्ति की प्रक्रिया लोकजीवन में निरन्तर चलती रहती है। यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति। जैसे अनेक नदियां समुद्र में जाकर खो जाती हैं उसी प्रकार परम्परायें भी एक बड़ी सांस्कृतिक धारा में समा जाती हैं। एक संस्कृति के सांस्कृतिक सूत्र-देवता, पूजा, दूसरी संस्कृति में समाविष्ट और अंतर्भुक्त हो जाते हैं। जब भिन्न-भिन्न संस्कृतियां मिलती हैं, तब द्वन्द्व तो होता है किन्तु उसी के साथ सशक्त सांस्कृतिक-तत्वों का अनुकरण भी होता है, स्वीकरण भी होता है। अनुकूलन भी होता है और आरोपण की प्रक्रिया भी चलती रहती है। संस्कृतियों के बीच जो क्रिया प्रतिक्रिया, अंतःक्रिया चलती रहती है, वह सहस्रमुखी है। समन्वय की प्रक्रिया को हम अनुकरण, अध्यारोपण, अवतार, प्रभाव तथा अन्तर्भुक्ति की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित कर सकते हैं।

अनुकरण : आचार्य क्षितिमोहन सेन ने लिखा है कि - "मुसलमानों के साथ सिक्खों की सदा लड़ाई लगी रही। किन्तु सिक्खों ने उन्हीं से ग्रन्थ-पूजा सीखी। कुरान की पूजा के स्थान पर सिखों ने ग्रन्थ-साहब की पूजा चलाई।" लोक अनुकरण करता है - लोकस्तदनुवर्तते। और इस अनुकरण प्रवृत्ति का प्रभाव पूरी संस्कृति पर पड़ता है।

अध्यारोपण : 'लोकवार्ता में एक व्यक्तित्व पर दूसरे व्यक्तित्व की अध्यारोपण प्रक्रिया है। यम पर धर्मराज और यमी (जुड़वां बहन) के व्यक्तित्व पर

यमुना का अध्यारोपण हुआ। कालिन्दी पर यमुना का अध्यारोपण हुआ। कालिन्दी कृष्ण की प्रेयसी हैं। यमराज और यमुना सूर्य के पुत्र और पुत्री हैं। वृन्दा पर तुलसी का अध्यारोपण हुआ। शंखचूड़ की पत्नी वृन्दा और हरि की पुराण-कथा में ऐसा ही कथासूत्र है, जिसके कारण वृन्दा हरि को शिला होने तथा हरि वृन्दा को जड़ बिरुला होने का शाप देते हैं। यही वृन्दा तुलसी में अन्तर्भुक्त हो जाती है। हरि शालिग्राम शिला बनते हैं। ब्रज में सांझी सूर्यनारायण की बहिन, रामसा पीर या रामदेव, कृष्ण के अवतार माने जाते हैं। बतुकम्मा को लक्ष्मी या गौरा या महागौरी कह कर बतलाया जाता है, यह अधायारोपण की प्रक्रिया है। अध्यारोपण के सांस्कृतिक-सूत्र ने भारत के लोकमन को एकत्र किया है, महत्व की बात यही है।

अवतार : अवतार संस्कृतियों की अन्तर्भुक्ति की प्रक्रिया है। एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में संक्रमण की प्रक्रिया का नाम अवतार है। एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में जाने के लिए जो सेतु बना है, उसका नाम अवतार है। साहित्य में जो स्थान अनुवाद का है संस्कृति में वही स्थान अवतार का है। अनुवाद एक सेतु है, जिससे साहित्य में एक भाषा दूसरी भाषा में अवतार लेती है। साहित्य का संक्रमण होता है, इसी प्रकार से एक संस्कृति जब दूसरी संस्कृति में संक्रमण करती है, तब उसका सेतु अवतार होता है। अवतारवाद विष्णु विराट में सभी देवताओं के समाविष्ट होने की प्रक्रिया है। शास्त्र अथवा लिखित-साहित्य में विष्णु के दस अवतार अथवा चौबीस अवतार माने गये हैं किन्तु लोकजीवन में कितने शिव के अवतार हैं, कितने पार्वती के अवतार हैं, कितने काली और लक्ष्मी के अवतार हैं, इनकी गणना करना कठिन है।

विशाखापत्तनम की चंडीदेवी श्री दुर्गालम्मा को विष्णु की पत्नी लक्ष्मी के अवतार के रूप में स्वीकार किया जाता है। येल्लम्मा को महाकाली की दासी के रूप में मान्यता दी जाती है। यह मातंगी और येलम्मा के सम्बन्ध की अभिव्यक्ति है। ग्रामदेवताओं को काली के अवतार के रूप में देखा जाता है। गूगा पीर को पद्मनाग का अवतार माना जाता है। लक्ष्मण और बलराम को शेषनाग का अवतार माना जाता है। भैरव शिव का अवतार हैं। कृष्ण को त्रिपुर सुन्दरी का अवतार माना गया है। राधा शिव की अवतार हैं। स्वामी हरिदास जी ललिता सखी के अवतार हैं। शंकराचार्य को शिव का अवतार माना जाता है। रामसा पीर या रामदेव कृष्ण के अवतार माने जाते हैं, साईंबाबा की अन्तर्भुक्ति विष्णु में की जाने लगी है और उनको विष्णु का अवतार माना जाने लगा है। साँई बाबा की जो आरती होती है, उसमें विष्णु के समस्त लक्षणों का उल्लेख किया जाता है।

सिद्धों का प्रभाव : जब-जब लोक का उद्वेलन होता है, तब-तब जातियों-संस्कृतियों के मिलन की गति तीव्र हो जाती है। उससे लोकजीवन प्रभावित होता है, यह आन्दोलन बुद्ध या महावीर का हो या सरहपा, कणहपा और गोरखा का। डॉ. धर्मवीर भारती ने अपने 'सिद्ध साहित्य' में जिन चौरासी सिद्धों के नाम गिनाये हैं उनमें अधिकांश का नाम बदल दिया गया है किन्तु आज भी छत्तीसगढ़ के अनेक गाँवों में मिल जायेंगे। यह सिद्ध सरहपाद के प्रति श्रद्धा है। प्रो. बाँके बिहारी शुक्ल बताते हैं कि उनके गाँव सेंदरी का नाम योगिनी सेन्दुरा दाई के नाम पर पड़ा, जो संभवतः सिद्ध करुपाद की भैरवी थी, इसलिए सेन्दरी गाँव के ठीक बाहर करुवा बाबा की पूजा होती है। सेन्दुरा दाई एक राजकुमारी थी, जो विवाह के उपरांत ससुराल गई और एक बार वापस आयी तो फिर कभी नहीं गई और सिद्धि प्राप्ति हेतु वह करुपाद के पास दीक्षित हुई। एक बुढ़िया सेंदुरा दाई की गाथा को विस्तार से गाती थी। सिद्ध बाबा ही बदलते-बदलते शीतबाबा हो गया। करुपाद का नाम सिद्ध करुआबाबा हो गया है। (मई 2009)।

नाथों का प्रभाव : हरियाणा नाथपन्थी जोगियों का क्षेत्र है। कलायत में गुरु गोरखनाथ का धूणा है। रोहतक के सांधी गाँव में बाबा मेलनाथ का धूणा है। फतेहाबाद में मोतीनाथ की समाधि है। चरखी दादरी

के गाँव ढाणी फौगाट में बाबा जातनाथ की समाधि और मन्दिर है। लोहारू-भिवानी राजमार्ग पर स्थित गाँव गिगनाऊ में बाबा बूँदीनाथ की समाधि है। जींद-रोहतक मार्ग पर जुलाना गाँव में नचलो नाथ, बुधनाथ, दयानाथ और शंकरगिरि की समाधि है। तोमाश-हिसार मार्ग पर खानक गाँव में बाबा मुंगीपा की मानता है। अजायब गाँव में नाथों का डेरा है जो बाबा हँसाईनाथ ने स्थापित किया था। बिधलाण गाँव में सेहरी गाँव के रास्ते पर बाबा सुकननाथ व रूढ़ानाथ का मठ है। पानीपत के मडलौडा में बाबा थानानाथ थे, जिनके शिष्य मोलइनाथ हुए, वे धूने की राख लगाकर रोग दूर कर देते थे। फरीदपुर के सपेरे कनीपा नाथ के अनुयायी हैं। ग्राम अहर में कण्डीनाथ की साधना भूमि है। उन्होंने जीवित समाधि ली थी। नांगल खेड़ी में बाबा सीताराम की समाधि है। सिवाह में इतवारगिरि की समाधि है। अटावला में छोटू बाबा की समाधि है। रोहतक-दिल्ली मार्ग पर बाबा चौरंगीनाथ का साधना स्थल था, बाद में बाबा मस्तनाथ ने इसे अपनी तप-भूमि बनाया था। रोहतक में बाबा बालकनाथ का मेला लगता है। हिसार के जिला कोथ कलां गाँव, रोहतक के खेड़ी साध, झज्जर के भंभेवा, रोहतक के बालंद गाँव और कैथल के उझाणा गाँव में नाथों के डेरे हैं। पेहवा में गरीबनाथ का डेरा विख्यात है। गुरु गोरखनाथ, मछन्दरनाथ, भरथरी, जाहरपीर (गूगा गुरु) की पूजा में हम नाथ-संप्रदाय के प्रभाव को परिलक्षित कर सकते हैं। राजस्थान में कालबेलिया नाथ लोग हैं, ब्रह्मा मन्दिर पुष्कर में घूमन्तू समुदाय का मिलन-पर्व होता है - भेरूजी भरथरी मेला में। वीर कल्लाजी राठौड़ के गुरु भैरवनाथ थे। योगी भरथरी का मेला अलवर में होता है। राजस्थान में भैरव, राजस्थान में व्यक्तिनामों का अध्ययन करने पर अनेक नाम भैरव से जुड़े हैं। ब्रज में भैरों की जात लगती है। लाँगुरिया के गीत गाये जाते हैं। कुमाऊँ के लोक-धर्म पर नाथ और सिद्धों का व्यापक प्रभाव पड़ा। कनफटे जोगियों, नाथों, दशनामी संन्यासियों के मठों, गाँवों और बद्रीनाथ, केदारनाथ, बागनाथ, जागनाथ, गणानाथ, भागनाथ आदि स्थान नाम इस प्रभाव के द्योतक हैं। कुमाऊँ में पौराणिक नारसिंह देवता की पूजा की जाती है। ये आधि-व्याधि और संकट को दूर करने वाले जोगी देवता हैं। गढ़वाली लोकसंस्कृति पर नाथों और सिद्धों का इतना प्रभाव पड़ा कि सारी परंपरा उन्हीं के रंग में रंग गयी। रोग निवारण, शाप, वशीकरण, उच्चाटन आदि के मंत्रों में आज भी उस परंपरा के दर्शन किये जा सकते हैं। (गोविन्द चातक, गढ़वाली लोक गीतों में तांत्रिक परंपरा, उत्तराखंड भारती जुलाई-दिसंबर 1973)। जादू के मंत्रों में मुहम्मद, हनुमान, पीर और गोरखनाथ साथ-साथ हैं। अनेक बौद्ध देवी-देवता अपने मूलस्रोत से विच्छिन्न होकर हिन्दूवेश में मौजूद हैं। धामी-संप्रदाय में, सहजिया-सम्प्रादय में ऐसे तत्त्व कहीं स्पष्टतः और कहीं अप्रत्यक्ष रूप में मिल जाते हैं।

अन्तर्भुक्ति : अन्तर्भुक्ति समष्टि-जीवन का महत्वपूर्ण सत्य है, जिससे हम मनुष्य और जीवन को समझ सकते हैं। जिस प्रकार संघर्ष सामूहिक-जीवन का एक सच है, उसी प्रकार उसका दूसरा पहलू समायोजन है। द्वंद्व-समायोजन की परिणति अन्तर्भुक्ति है। सामाजिक-विकास के संबंध में समाज विज्ञान का एक मान्य सिद्धान्त है कि इस विकास की बुनियाद वे घूमन्तू कबीले या गण हैं, जो जंगलों, पहाड़ों, नदियों और समुद्र के आसपास भोजन की खोज में घूमते रहते थे। उनकी पहचान गणगोत्र या टोटम से होती थी। उनके संघर्ष भी होते थे किन्तु जब परिचय में घनिष्ठता होती थी तब वे परस्पर सहयोग और समायोजन भी करते थे। उनके बीच मैत्री, प्रेम और विवाह के संबंध भी बन जाते थे। कबीलाई-जीवन के कुछ चित्र रांगेयराघव की पुस्तक महायात्रा-गाथा के पहले भाग (अंधेरा रास्ता) में हैं। भोजन की खोज भी चलती रही और कबीलों के बीच द्वन्द्व-संघर्ष, सहयोग, सामंजस्य और समायोजन भी चलता रहा। एक कबीला दूसरे कबीले में अन्तर्भुक्त होता रहा। भोजन के लिए शिकार की सभ्यता से मनुष्य ने

पशुचारण-सभ्यता में प्रवेश किया, तब वे अनेकानेक कबीले मिल कर बड़ा समुदाय बना। पशुचारण-सभ्यता से आगे चल कर जब मनुष्य ने खेती करना सीखा तब ग्राम की प्रतिष्ठा हुई और अनेकानेक समुदाय मिल कर ग्राम-समाज बना। और आगे चल कर बाजार बना और बाजार की जरूरतों ने नगर-सभ्यता को जन्म दिया जिससे समाज और बड़ा बन गया। नगर-राज्य (सिटी स्टेट) उसी जमाने की अवधारणा है, जब नगरराज्य की इकाई को नागरिक कहा जाता था। वह नागरिक शब्द आज के समय में भी प्रचलित है, नागरिक शब्द हमारे संविधान का आधारभूत शब्द हैं। समाज की सीमा विश्वव्यापिनी बन चुकी है, विश्वसमाज! औद्योगिक सभ्यता और और संचार के विकास के साथ विश्वग्राम की अवधारणा साकार हो चुकी है। मानव सभ्यता का आधार है भोजन और आच्छादन, वस्त्र और भवन आदि। ग्राम, नगर, महानगर, राज्य, राष्ट्र और विश्व की राजनैतिक- प्रशासनिक प्रणालियाँ विकसित हुईं और सभ्यता के विकास के साथ-साथ संस्कृति का भी विकास होता रहा। संस्कृति को सभ्यता से उसी प्रकार से अलग नहीं किया जा सकता, जैसे देह को मन से अलग नहीं किया सकता। एक कबीले या गण के सांस्कृतिक-तत्त्व दूसरे गण या कबीले के सांस्कृतिक-तत्त्वों के साथ घुलते-मिलते रहे। सामाजिक और सांस्कृतिक तत्वों के घुलने-मिलने और एक-दूसरे में समा जाने की प्रक्रिया को अन्तर्भुक्ति कहा जाता है। अन्तर्भुक्ति की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। यह जीवन का लक्षण है।

दक्षिण में मुल्लै वन-प्रान्त में ऐयर लोग गायें चराते थे और कण्ण के गीत गाते थे। गोप-संस्कृति का देवता गोपाल है, जो आगे चलकर कृष्ण में अन्तर्भुक्त हुआ। जब विष्णु युगसत्य के रूप में उभरे तब आगे चलकर नारायण और विष्णु भी कृष्ण में अन्तर्भुक्त हुए। सात्त्वतधर्म, शौरसेनीवंश, यादव वंश, शाकद्वीपीय ब्राह्मण जो नारायणी धर्म को लेकर आए थे, विष्णु में और सात्त्वधर्म शौरसेनी और यादवों में अन्तर्भुक्त हुआ। सूर्य को नारायण कहा गया। सत्य को नारायण कहा गया। सुपर्ण और नागों की अन्तर्भुक्ति विष्णु में है। वैदिक श्री दक्षिण में तिरु हैं, तिरुपति विष्णु के रूप में हैं। सुपर्ण (गरुड़) और नागों की अन्तर्भुक्ति भी विष्णु विराट में हुई। दक्षिण और उत्तर भारत की सांस्कृतिक - चेतना एक दूसरे में समा गयी। भारत की भिन्न-भिन्न प्रादेशिक और जनपद-भाषाओं के लोक-गीतों में कृष्ण समाये हुए हैं। यह राष्ट्र की अमोघ शक्ति है, इसे पहचानना ही होगा। भागवत की जो महत्वपूर्ण स्थापना है कि नाम-रूप विभेदेन अर्थात् जो भी अन्तर है, वह नाम-रूप का है, तात्विक नहीं है।

एक कबीले या गण के सांस्कृतिक-तत्व दूसरे गण या कबीले के सांस्कृतिक-तत्वों के साथ घुलते-मिलते रहे। सांस्कृतिक-तत्वों के घुलने-मिलने और एक-दूसरे में समा जाने की प्रक्रिया को अन्तर्भुक्ति कहा जाता है। शिव में नाग-तत्व की अन्तर्भुक्ति है। विष्णु में नाग और गरुड़ की अन्तर्भुक्ति है, बलराम में नाग की है। भारत के इतिहास में अनेक जातियों का उल्लेख मिलता है- यक्ष, राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, किरात, किन्नर, नाग, निषाद, देव, असुर आदि। अन्तर्भुक्ति का जीवंत उदाहरण हमारी भाषा है, जितनी जातियों से हमारा सम्पर्क हुआ, उन सभी के भाषातत्व हमारी भाषा में अंतर्भुक्त हो गये। माना कि संघर्ष जीवन का सच है किंतु वह अकेला नहीं है, समायोजन उसका दूसरा पक्ष है, और इन दोनों की परिणति अन्तर्भुक्ति है। मानव समाज, मानव संस्कृति और विश्व दर्शन के विकास का आधारभूत सच अन्तर्भुक्ति है। लोकवार्ता और लोकजीवन के अध्येताओं के लिए अन्तर्भुक्ति लोकसंस्कृति का महत्वपूर्ण अध्याय है। एक संस्कृति के सांस्कृतिक सूत्र- देवता, पूजा आदि। दूसरी संस्कृति में समाविष्ट और अंतर्भुक्त हो जाते हैं।

1828, NHBC, Sector 13-17, HUDA.
Panipat - 132103 (Haryana)
E mail - chaturvedirajendara@rediffmail.com
Phone No. 0180-2577186, 0999-600-7186

●

धर्मसूत्रों में राजधर्म : एक विश्लेषण

डॉ. अजित कुमार

धर्मसूत्रकारों ने तात्कालिक परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए 'राजधर्म' का विवेचन करना आवश्यक समझा। यह स्पष्ट है कि मुख्य रूप से 'प्रजापालन वृत्ति' को ही सर्वोपरि माना था। कहा जा सकता है कि राजा को यत्नपूर्वक अपने राष्ट्र की रक्षा करनी चाहिए। राजोचित व्यवहारों का पालन, गुप्तचरों की नियुक्ति, सदा सत्य प्रतिज्ञ होना, प्रमाद न करना, प्रसन्न रहना, व्यवहार में अत्यन्त कुपित न होना, भृत्यवर्ग का भरण पोषण, वाहनों की देखभाल करना, योद्धाओं का सत्कार करना और किए हुए कार्य में सफलता लाना--- यह सब राजा के कर्तव्य हैं। ऐसा करने से उसे इहलोक तथा परलोक में भी श्रेय की प्राप्ति होती है। राज्य समाज के पूर्ण विकास के लिए एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक संस्था है। राज्य अनेक प्रकार से समाज से सम्बन्धित संस्थाओं, व्यक्तियों और उनके अधिकारों-कर्त्तव्यों एवं परस्पर सम्बन्धों को प्रभावित करता है। किसी देश काल या समाज की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का वास्तविक मूल्यांकन उस देश, काल या समाज की राजनैतिक स्थिति के ज्ञान के बिना सम्भव नहीं है। कहा भी गया है 'यथा राजा तथा प्रजा' अर्थात् जैसी राज्य व्यवस्था होगी प्रजा भी उसी प्रकार के आचरण से युक्त होगी।

वैदिक ऋषियों ने राज्य शासन में धर्म की स्थापना स्वीकार की है। विभिन्न प्रकार की शासन प्रणालियों में शासन का आधार धर्म ही माना गया था। वेदों के अध्ययन से विदित होता है कि ऋषियों के तप से राष्ट्र-भाव की उत्पत्ति हुई थी। ऋषियों की तपस्या से जिस राष्ट्रीयता की उत्पत्ति हुई वह राष्ट्रीयता धर्म-नियम पालन के बिना कदापि विकसित नहीं हो सकती। वैदिक राजनीतिज्ञों का सिद्धान्त था कि ब्रह्मचर्यरूप तप करके ही राजा और राष्ट्रपुरुष राज्यपालन के अधिकारी होते हैं-- **'ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।'** वैदिक राजनीति में इन्द्रियलोलुप, स्वार्थी, उच्छृंखल, द्वेष, दम्भ से युक्त, दुष्कृत्यरत, हिंसारत, आसुरी वृत्तियों से अभिभूत के लिए स्थान ही नहीं था।

धर्मसूत्रों में वर्णित राजधर्म पर वैदिक आदर्श का प्रभाव स्पष्ट है। आपस्तम्ब तथा बौधायन दोनों धर्मसूत्रों में 'राजधर्म' पर चर्चा उपलब्ध है। 'धर्म' शब्द के अनेक तथा व्यापक अर्थ हैं। एक ही निश्चित और सीमित अर्थ में 'धर्म' शब्द का प्रयोग नहीं होता। धर्म शब्द विचार की दृष्टि से अनेक अर्थों का वाचक बन गया है। 'धर्म' शब्द का व्यापक अर्थ 'धृ' धातु

पर आश्रित है। 'धृ' का अर्थ धारण करना है। जिसे धारण किया जाता है यह धर्म है। धारण करने का अर्थ है पालन करना, अपनाना और बनाए रखना। राजधर्म का अर्थ है-- राजा का धर्म। महाभारत के अनुसार धर्म राजा पर आश्रित है।[1] व्यास का मत है कि धर्म से युक्त राजा धार्मिक कहलाता है। यदि राजा धार्मिक होगा तो प्रजा भी धार्मिक होगी, क्योंकि जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है।[2] जो राजा धर्म का अनुसरण करता है वह 'सृष्टिकर्ता' कहलाता है, लेकिन जो धर्म का अनुसरण नहीं करता वह 'विनाशक' कहलाता है।[3]

राजधर्म की श्रेष्ठता

प्रजा की रक्षा और प्रजा का पालन राजा का मुख्य धर्म है। राजपद और राजधर्म की विशेषता की दृष्टि से राजधर्म का पृथक् वर्णन किया गया है। राजा के द्वारा राजधर्म के पालन पर ही प्रजा के सभी वर्णों का धर्मपालन निर्भर करता है। राजधर्म समाज के धर्म-प्रासाद की नींव है। प्रजातन्त्र के शासन में भी राजधर्म का महत्त्व अक्षुण्ण रहता है, क्योंकि यहाँ प्रजातन्त्र का उत्तरदायित्व प्रतिनिधियों को दिया गया है जो प्रजा-पालन, धर्माचरण आदि के गुणों से सम्पन्न होने आवश्यक हैं। शासन राजधर्म के अनुसार ही चलता है। अन्तर इतना ही है कि राजतन्त्र की परम्परा में राजा वंशपरम्परा से शासन चलाता है और प्रजातन्त्र में यह जनमत से चुना जाता है।

राजा का महत्त्व

एक समय था जब न राजा था, न नियम, न कानून, न दण्ड और न ही दण्ड व्यवस्था। सभी लोग परस्पर स्नेह और सद्भाव से मिलकर सुखी और आनन्द से युक्त जीवन व्यतीत करते थे। उस समय लोग आत्मनियन्त्रित एवं धर्मनियन्त्रित होकर अपने अधिकारों का पालन करते हुए अपने कर्त्तव्यों का पालन करते थे। किसी दूसरे के अधिकार में हस्तक्षेप नहीं करते थे।[4] परन्तु धीरे-धीरे समय ऐसा आ गया जब समाज में अन्याय और अत्याचार चरम सीमा पर पहुँच गया। अत्याचारियों एवं दुष्टों के भय से पीड़ित प्रजा इधर-उधर भागने लगी। इसलिए ईश्वर ने सम्पूर्ण चराचर की रक्षा के लिए राजा की सृष्टि की। राज्य में शान्ति स्थापित करने के लिए राजा का होना अनिवार्य है। राजा ही पृथ्वी पर शान्ति स्थापित कर सकता है। देश में राजविप्लव होने पर कोई भी मनुष्य सुखी नहीं रह सकता।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में राजा के महत्त्व को बताते हुए कहा है कि राजा प्रजा में शांति और सुरक्षा की व्यवस्था करता है और वही मनुष्यों को वर्णाश्रम धर्म का पालन करने के लिए बाध्य करता है।[5] शुक्र के मत में यदि प्रजा का नेता राजा न हो तो प्रजा इस प्रकार विपत्ति में मग्न हो जाती है, जिस प्रकार बिना कर्णधार के समुद्र में नौका डूब जाती है।[6] राजा के महत्त्व का वर्णन करते हुए मनु ने कहा है कि-- 'यह मनुष्य ही है, ऐसा समझकर बालक राजा का भी अपमान न करे, क्योंकि मनुष्य के रूप में यह कोई बड़ा देवता होता है।[7] क्योंकि ईश्वर ने इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा और कुबेर का सारभूत अंश लेकर राजा की सृष्टि की है।[8] इसलिए उसे साधारण मनुष्यों से श्रेष्ठ माना गया है और सबको अपने अंकुश में रखने का अधिकार एवं सामर्थ्य राजा को प्राप्त है। महाभारत में राजा के महत्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि 'जिस प्रकार सूर्य अन्धकार को दूर कर देता है, उसी प्रकार राजा भी अधर्म का नाश कर देता है। रामायण में इस विषय पर कहा गया है कि 'राजा से विहीन राष्ट्र का भाग्य उसी प्रकार का होता है, जैसे चरवाहे से विहीन गाय का।'[9] डॉ. बेनी प्रसाद का मत है कि 'यदि राजा अपना कर्तव्य निर्वाह नहीं करेगा तो शक्तिशाली मनुष्य दुर्बलों को लूट लेंगे और मार देंगे। सदाचारी मनुष्य सबके पूज्य नहीं होंगे। कोई भी मनुष्य अपनी वस्तु को अपना नहीं कह सकेगा और इस प्रकार अपनत्व की भावना अदृश्य हो जाएगी। यहाँ तक कि कोई भी अपनी पत्नी तथा पुत्र को भी अपना नहीं कह सकेगा।[10]

राजा के गुण

राजा के महत्त्व के कारण ही प्राचीन भारतीय विद्वानों ने राजा की योग्यता एवं गुणों की विशेषता पर बल दिया है। राजा को ही काल का कारण माना गया है। यदि राजा सम्पन्न हो तो उसकी प्रजा भी सम्पन्न एवं सुखी होगी। प्राचीन भारतीय विद्वानों का मत है कि राजा को सच्चरित्र, साहसी तथा ईमानदार होना चाहिए। कवि कालिदास का इस विषय में मत है कि राजा को पुष्टांग होना चाहिए, क्योंकि पूर्ण रूप से स्वस्थ होने पर ही प्रजा की रक्षा की जा सकती है, जो कि राजा का मुख्य धर्म है।[11] इस विषय में याज्ञवल्क्य का मत है कि राजा को उत्साही, महालक्ष्य वाला, दूसरों के उपकार को न भूलने वाला, वृद्धों की सेवा करने वाला, विजय युक्त, शक्तिशाली, कुलीन, सत्यभाषी, पवित्र, आरम्भ किए कार्य को पूरा करने में विलम्ब न करने वाला, जाने हुए कार्यों को स्मरण करने वाला, सदगुणी, दूसरे के दोष को न कहने वाला, धार्मिक, बुद्धिमान, वीर एवं रहस्य के छिपाने में चतुर होना चाहिए।[12] मनु ने भी ऐसा ही विचार व्यक्त किया है। राजा को धृति, क्षमा, दम आदि मनु कथित दस धर्मों को अवश्य ग्रहण करना चाहिए। इससे स्पष्ट होता है कि राजा में धार्मिक, राजनैतिक गुणों के साथसाथ नैतिक गुण भी होने चाहिए।

राजा के कर्तव्य

राजा का सर्वप्रथम कर्तव्य है अपनी प्रजा के धन तथा जीवन की रक्षा करना। बौधायन का मत है कि राजा प्रजा से उसकी आय का छठा भाग वेतन के रूप में लेकर उसकी रक्षा करे।[14] टीकाकार गोविन्द स्वामी का मत है कि ब्राह्मण की रक्षा करने पर वह उसके धर्म में से छठा भाग ग्रहण करता है। इस विषय में उन्होंने वसिष्ठ एवं गौतम के मत को उद्धृत किया है।[15] प्रजा की रक्षा न करने वाला राजा प्रजा के पाप के आधे भाग का अधिकारी कहा गया है, क्योंकि वह रक्षा करने के लिए ही प्रजा से कर लेता है। जिस राजा की प्रजा सुरक्षित है, उसके लिए गृह स्वर्ग के समान है, किन्तु जिसकी प्रजा सुरक्षित नहीं है उसका मन्दिर भी नरक के समान है। मनु ने यह स्पष्ट किया है कि जो राजा प्रजा की रक्षा न करता हुआ केवल कोष वृद्धि के लिए अर्थ ग्रहण करता है उस राजा के विरुद्ध प्रजा के मन में द्वेष पैदा हो जाता है और प्रजा विद्रोह कर बैठती है। राजा मरता है तो वह नरक का भागी बनता है।[16] इस व्यवस्था से स्पष्ट होता है कि धन ग्रहण करने का अधिकार राजा को तभी तक है जब तक वह प्रजा की रक्षा कर रहा है। ज्यों ही वह अपने कर्तव्य में प्रमाद करता है उसे उसके अधिकार से वंचित कर दिया जाए।

आपस्तम्ब का मत है कि-- जिस राजा के राज्य में, ग्राम व वन में चोरों का भय नहीं होता वह कल्याणकारी राजा होता है।[17] राजा का यह भी कर्तव्य है कि वह अतिथियों का 'आवसथ' में ठहरने का समुचित प्रबन्ध करे। आपस्तम्ब के अनुसार अतिथि कम से कम वेदों का विद्वान् अवश्य हो।[18] इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि धर्मसूत्रों के काल में वेदों का काफी महत्त्व था। अब भी अतिथियों के ठहरने के लिए स्थान बनाए हुए हैं, जहाँ पर सब प्रकार के व्यक्ति ठहर सकते हैं, परन्तु धर्मसूत्रों के समय में विद्वानों को ही ठहराया जाता था। उन अतिथियों को उनके गुणों के अनुसार निवासस्थान, आसन, शैया, अन्न और पेय पदार्थ दिया जाता था। राजाओं को अपने गुरुओं तथा मन्त्रियों की अपेक्षा कम आराम का जीवन व्यतीत करना उचित समझा जाता था। उसके राज्य में किसी को भूख, रोग, शीत, ताप आदि किसी प्रकार का भौतिक कष्ट नहीं होना चाहिए।[19] आपस्तम्ब का मत है कि अस्त्रों का अभ्यास, नृत्य, गीत, वाद्यवादन आदि केवल राजा के अधीनस्थ सेवकों के निवासस्थल पर हों, अन्यत्र नहीं। जो राजा किसी प्रकार की हानि पहुँचाए बिना ब्राह्मणों को उनकी विद्या तथा चरित्र के अनुसार धन देता है, वह अनन्त लोकों को प्राप्त करता है।[20]

बौधायन धर्मसूत्र में वर्णित है कि राजा को युद्ध से

डरकर नहीं भागना चाहिए तथा बर्छीदार अस्त्रों से या विषादि से बुझाए गए अस्त्रों से प्रहार नहीं करना चाहिए। इस प्रकार के निर्देश मनुस्मृति में भी मिलते हैं।[21] परन्तु आपस्तम्ब धर्मसूत्र में इस प्रकार का कोई संकेत नहीं मिलता। बौधायन का मत है कि भयभीत, सुरापान से मत्त, पागल, चेतनहीन, कवचादि बन्धनों से हीन, स्त्री, बालक, वृद्ध और ब्राह्मण के साथ युद्ध न करे।[22] आपस्तम्ब के मतानुसार ऐसे व्यक्तियों का वध नहीं करना चाहिए जिन्होंने अस्त्र डाल दिए हों, जो अस्तव्यस्त केशों के साथ दोनों हाथ जोड़कर दया की भीख माँगते हों अथवा जो युद्धक्षेत्र से डरकर भागे हों।[23] इस प्रकार के निर्देश गौतम धर्मसूत्र तथा मनुस्मृति में भी दृष्टिगोचर होते हैं।[24]

राजा का मंत्रिमण्डल व पुरोहित

राजधर्म की चर्चा करते हुए राजा के मंत्रिमण्डल की चर्चा करना भी आवश्यक है। क्योंकि आत्मरक्षा के साथ-साथ यह भी समस्या है कि राज्य का संचालन किस प्रकार किया जाए, प्रजाजनों की देखरेख किस प्रकार की जाए, राज्य का विस्तार एवं सुरक्षा किस प्रकार हो तथा राज्य की आर्थिक स्थिति किस प्रकार सुदृढ़ की जाए? स्पष्ट है कि राजा अकेले इतने बड़े राज्य की देखरेख नहीं कर सकता। इसके लिए उसे कुछ सहायकों की आवश्यकता होती है। राजा के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह मंत्रिमण्डल बनाए, उनसे मंत्रणा करे तथा राजनैतिक कार्यों में उन्हें सहायक बनाए। परन्तु आपस्तम्ब तथा बौधायन दोनों ही धर्मसूत्रों ने इस महत्वपूर्ण विषय की चर्चा नहीं की है। दोनों धर्मसूत्रों में केवल पुरोहित के विषय में ही चर्चा है। राजा को एक पुरोहित नियुक्त करना चाहिए, जो कि धार्मिक तथा राजनैतिक विषयों पर सलाह दे सके। प्रायः धर्मसूत्रों में यही बात कही है। बौधायन का मत है कि राजा को सभी विषयों के ज्ञान में निपुण पुरोहित का चयन करना चाहिए तथा उसके परामर्श के अनुसार कार्य करना चाहिए।[25] इस प्रकार के वचन गौतम धर्मसूत्र में भी उपलब्ध होते हैं।[26] आपस्तम्ब के मतानुसार पुरोहित धर्मशास्त्र तथा अर्थशास्त्र में निपुण होना चाहिए।[27] पुरोहित को न केवल धार्मिक विषयों में राजा का साथ देना चाहिए अपितु युद्ध क्षेत्र में भी साथ रहना चाहिए। कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी इस विषय पर चर्चा मिलती है। इसके अनुसार राजा अत्यन्त उन्नत कुल में उत्पन्न, शील तथा सदाचार सम्पन्न, सभी वेदों और व्याकरणादि वेदांगों का ज्ञाता, दैवी विपत्तियों एवं शकुनशास्त्र के विज्ञ, दण्डनीति में निपुण, दैवी और मानवी आपदाओं को अथर्ववेद में कहे गए मन्त्रों से दूर कर देने में कुशल व्यक्ति को ही अपना पुरोहित बनाए। जिस प्रकार शिष्य गुरु को, पुत्र पिता को तथा सेवक स्वामी को पूज्य मानता है उसी प्रकार राजा भी पुरोहित को पूज्य मानकर उसका अनुसरण करे।[28] याज्ञवल्क्य स्मृति में भी पुरोहित के चयन के विषय में वर्णन उपलब्ध होता है।[29]

रक्षाकार्य के लिए नियुक्त अधिकारी

प्रजा की रक्षा करना राजा का मुख्य कर्तव्य है। इस विषय में आपस्तम्ब का मत है कि राजा ग्रामों तथा नगरों में प्रजा की रक्षा के लिए तीन उच्च वर्णों के पवित्र आचरण वाले तथा सत्यवादी पुरुषों को नियुक्त करे। नियुक्त किए गए पुरुष नगर की प्रत्येक दिशा में एक योजन तक नगर की चोरों आदि से रक्षा करें। प्रत्येक ग्राम के चारों ओर एक कोश तक रक्षा करें। यदि इन क्षेत्रों में चोरी हो जाए तो वह चुराई गई वस्तु इन रक्षा करने वाले पुरुषों से दिलवाए।[30] गौतमधर्मसूत्र में वर्णित है कि चुराई हुई वस्तु को ढूंढवाकर उस व्यक्ति को दे दे। यदि वह वस्तु नहीं मिलती तो राजा अपने कोष में से उतना धन दे दे।[31] परन्तु इस प्रकार के वचन बौधायन धर्मसूत्र में दृष्टिगोचर नहीं होते। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में इस विषय पर यह भी वर्णित है कि राजा का परम कर्तव्य है कि वह विशेष रूप से ब्राह्मण की और उसके धन की रक्षा करे। ब्राह्मण के धन की रक्षा करते समय यदि राजा की मृत्यु भी हो जाए तो वह यज्ञ के बराबर ही

कर्म होता है।[32]

राजा का प्रासाद व सभा

प्रश्न उठता है कि राजा अपना प्रासाद किस प्रकार बनवाए? इस विषय पर आपस्तम्ब के वचन दृष्टिगोचर होते हैं। आपस्तम्ब का मत है कि प्रजा की रक्षा के लिए राजा को इस प्रकार का नगर तथा प्रासाद बनवाना चाहिए जिसका द्वार उत्तर दिशा की ओर हो। प्रासाद नगर के बीच में होना चाहिए। प्रासाद के आगे एक 'आवसथ भवन' बनवाए जिसका नाम आमन्त्रण रखे। नगर से कुछ दूर दक्षिण की ओर एक 'सभाभवन' बनवाए, जिसके द्वार दक्षिण तथा उत्तर की ओर हों, जिससे अन्दर तथा बाहर देखा जा सके[33] 'सभा' शब्द के विषय में विभिन्न मत दृष्टिगोचर होते हैं। उत्तरवर्ती काल में सभा शब्द का प्रयोग 'न्यायालय' के अर्थ में किया जाने लगा। 'सभा' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के समय से ही होने लगा था। सभा को समिति की बहन बताया है। डॉ. आलतेकर का मत है कि वैदिक समय में 'सभा' शब्द का प्रयोग उस स्थान के लिए किया जाता था, जहाँ पर सब मनुष्य एकत्रित होकर उन मनुष्यों में से अपना नेता चुनते थे। एक और स्थल पर इस प्रकार के वचन उपलब्ध होते हैं-- सभा का रूप ग्राम सभा था, जहाँ राजनैतिक एवं सामाजिक विषयों पर विमर्श होता था।[34]

श्री.एम.आप्टे सभा को कुछ चुने हुए व्यक्तियों का संगठन मानते हैं। इसका कार्य विधि तथा न्यायिक विषयों को देखना था परन्तु उसमें राजनीतिक विषयों पर भी विमर्श होता था। सभा को 'नरिष्टा' भी कहा जाता है। जायसवाल ने 'नरिष्टा' का अर्थ इस प्रकार किया है प्रस्ताव जिसका उल्लंघन न हो सके। यह अर्थ उन्होंने सायण के आधार पर किया है।[35] लुड्विग के अनुसार सभा सभी सामान्य नागरिकों की संस्था नहीं थी। उसमें ब्राह्मण और धार्मिक वर्ग के प्रतिनिधि थे। सूत्रों के समय में 'सभा' शब्द का प्रयोग 'जहाँ पर मनुष्य एकत्रित होते थे' तथा 'सभाभवन' के लिए होता था। 'जुआघर' को भी उस समय 'सभा' कहा जाता था। आपस्तम्ब का मत है कि ब्रह्मचारी तथा स्नातक को द्यूतादि की सभा में नहीं जाना चाहिए।[36] आपस्तम्ब का यह भी मत है कि सभाभवन के बीच में एक ऊँचा स्थान बनवाए तथा उस पर जितनी आवश्यक हो उतनी मात्रा में युग्म संख्या में विभीतक (काष्ठ) से बनी हुई गोटियाँ रखें।[37] द्यूत खेलने वाले आर्य पवित्र आचरण वाले तथा सत्यवादी हों।[38]

राजस्व

कोई भी राज्य आय के स्थिर साधनों के बिना कार्य नहीं कर सकता। राज्य की आय के मुख्य साधन कर, दण्ड, पृथ्वी में गड़ा धन तथा युद्ध में लूटा हुआ माल है। आपस्तम्ब तथा बौधायन दोनों धर्मसूत्रों में कर तथा दण्ड से प्राप्त आय का वर्णन है। राजा की आर्थिक व्यवस्था का आधार कर है। किन्तु कर ग्रहण करने में भी राजा को विवेक का आश्रय लेकर नियमों का पालन करना होता है।

धर्मसूत्रों ने कर ग्रहण करने के नियमों पर प्रकाश डाला है। आपस्तम्ब का मत है कि राजा को न्यायोचित कर ग्रहण करना चाहिए।[39] बौधायन का मत है कि राजा प्रजा की आय का छठा भाग कर के रूप में ग्रहण करे।[40] गौतम का मत है कि राजा किसानों से दसवाँ, आठवां या छठा भाग कर के रूप में ग्रहण करे।[41] मनुस्मृति में भी इसी प्रकार का नियम बताया है।[42] बौधायन के मतानुसार कर ग्रहण का नियम इस प्रकार है-- यदि कोई वस्तु दूसरे द्वीप से समुद्र मार्ग से लाई गई हो तो राजा उनमें से किसी उत्कृष्ट वस्तु को ग्रहण करके शेष में सौ में दस पण के रूप में ग्रहण करे। अन्य व्यापारिक वस्तुओं में भी उनके मूल्य के अनुसार उसमें से सबसे अच्छी वस्तु को लिए बिना तथा व्यापारी को बिना पीड़ित किए हुए शुल्क ग्रहण करें।[43] मनु का मत है कि जिस प्रकार जोक, बछड़ा और भँवरा थोड़ा-थोड़ा अपने भोजन (रक्त, दूध और मधु) को ग्रहण करता है; उसी प्रकार राजा को प्रजा से थोड़ा-थोड़ा वार्षिक कर ग्रहण करना

चाहिए।[44] अर्थात् प्रजा को अत्यधिक करभार से त्रस्त नहीं करना चाहिए। सम्भवतः इस प्रकार का निषेध दो कारणों से किया है। प्रथम कर भार से त्रस्त प्रजा व्याकुल होकर स्वयं विद्रोह न कर दे अथवा किसी विद्रोही या आक्रामक का साथ न दे। मनु का मत है कि राजा में प्रजा के धन हरण की लिप्सा, राजा और प्रजा दोनों का विनाश कर देती है। जिस प्रकार शरीर का शोषण करने से प्राणियों के प्राण क्षीण हो जाते हैं उसी प्रकार राष्ट्र के शोषण से राजा के प्राण क्षीण हो जाते हैं।[45]

मनु का यह भी मत है कि राजा व्यापारी से खरीद-बिक्री, मार्ग, भोजन, मार्गादि में चोरादि से रक्षा का व्यय और लाभ को भली प्रकार से देखकर कर ग्रहण करे।[46] परन्तु आपस्तम्ब में यह नहीं बताया गया कि कर किससे किस प्रकार ग्रहण किया जाए। आय के साधन कर के अतिरिक्त और भी हैं। बौधायन धर्मसूत्र में वर्णित है कि जिस सम्पत्ति का स्वामी ब्राह्मण से भिन्न वर्ण का हो, और उस स्वामी का पता न हो तो राजा एक वर्ष तक उस व्यक्ति की प्रतीक्षा करे, यदि वह एक वर्ष तक न लौटे तो वह सम्पत्ति स्वयं राजा ग्रहण कर ले।[47] आपस्तम्ब के मतानुसार सभी बन्धुबान्धवों के न होने पर राजा दाय को ग्रहण करे।[48] इस सम्बन्ध में आपस्तम्ब धर्मसूत्र में यह भी बताया गया है कि कर किन-किन व्यक्तियों से ग्रहण नहीं करना चाहिए। विद्वान् श्रोत्रिय, ब्राह्मण, सभी वर्णों की स्त्रियों, अल्प-वयस्क बालक, गुरुकुल में अध्ययन करने वाले, धर्म के आचरण में संलग्न तपस्वी, दास वृत्ति वाले तथा अन्धे, गूँगे, बहरे और रोगी यह सब कर से मुक्त होते हैं। संन्यासी से भी कर ग्रहण नहीं करना चाहिए।[49] यह विश्वास किया जाता है कि संन्यासी तथा तपस्वी के उत्पन्न किए गए पुण्य में से, जो राजा इनकी रक्षा करता है, उसे उनके पुण्य में से छठा भाग प्राप्त होता है। परन्तु बौधायन धर्मसूत्र में किन-किन व्यक्तियों से कर ग्रहण नहीं करना चाहिए इसका वर्णन नहीं है।

दण्ड व्यवस्था

यहाँ धर्म शब्द का प्रयोग 'लॉ' के अर्थ में किया गया है। याज्ञवल्क्य, मनु आदि ने राजा की भाँति धर्म को भी दैवी-उत्पत्ति के रूप में माना है। उनका कथन है कि जब प्राणी मत्स्य-न्याय से पीड़ित हो रहे थे, तब प्रजापति ने उनके कष्टों को दूर करने के लिए धर्म की उत्पत्ति की और उसकी सहायता से शासन करने का आदेश दिया। किन्तु उस समय प्राणी मोह-ग्रस्त थे, जिसके कारण शासन करना कठिन हो गया। तब प्रजापति ने राजा की सृष्टि की और उसकी सहायता के लिए दण्ड की व्यवस्था की और राजा को यह आदेश दिया कि वह दण्ड की सहायता से धर्म की मर्यादा की रक्षा करे तथा उसका उल्लंघन करने वाले को दण्ड दे। यहाँ तक कि राजा को भी दण्ड के अधीन कहा गया है। राजा की निरंकुशता को दूर करने के लिए धर्म तथा दण्ड ऐसे अंकुश थे, जिसके कारण राजा का निरंकुश होना सम्भव नहीं था। मनु ने यह स्पष्ट किया है कि राजा की कार्य सिद्धि के लिए भगवान ने सम्पूर्ण प्राणियों के रक्षक ब्रह्मतेजमय धर्मस्वरूप अपने पुत्र दण्ड की सृष्टि की।[50] वास्तव में राजा स्वतंत्र नहीं है धर्मदण्ड के आधीन है। धर्मदण्ड ही वास्तविक राजा है।

राजदण्ड की रचना इसलिए की गई है जिसमें समस्त जीव अपने-अपने कर्मों को नियत रूप से करते रहें। राजदण्ड न होने पर बलवान व्यक्ति दुर्बल व्यक्ति को पीड़ित करेगा जिससे दुर्बल व्यक्ति अपने भोग को नहीं भोग सकेगा और वह बलवान व्यक्ति भी दूसरे किसी व्यक्ति से पीड़ित होकर अपने भोग को नहीं भोग सकेगा। जिसके कारण सर्वत्र अस्तव्यस्तता का साम्राज्य छा जाएगा। मनुष्य को प्रमाद से बचाने, उसके धन की रक्षा करने के लिए तथा लोक में मर्यादा को बनाए रखने के लिए दण्ड की व्यवस्था की गई है। इस प्रकार समाज में सुख, शान्ति, सुरक्षा, न्याय का पालन करवाना ही दण्ड का मुख्य उद्देश्य है। इसी कारण यह कहा जाता है कि सबके सो जाने पर

भी दण्ड जागता रहता है और इसी कारण विद्वान् उसे राजधर्म मानते थे।

दण्ड के मुख्य रूप से तीन उद्देश्य हैं। प्रथम-- जिस प्रकार का पाप है उसी प्रकार दण्ड देने की भावना यथा आँख के बदले आँख लेने की प्रवृत्ति। द्वितीय दण्ड के द्वारा समाज में एक उदाहरण रखने की आकांक्षा अर्थात् अपराधी का दण्ड इस प्रकार का हो जो लोगों के हृदय में भय का संचार करे, जिससे अन्य लोग अपराध की ओर प्रवृत्त न हों। तृतीय अपराधी को सुधारने का प्रयत्न किया जाए, ताकि वह पुनः उस तरह का अपराध न करे। प्रारम्भ में वैदिक काल में वाग्दण्ड तथा धिग्दण्ड का प्रयोग होता था। क्योंकि अधिकतर अपराध प्रायश्चित के द्वारा दूर कर दिए जाते थे। बाद के समय में मृत्यु दण्ड तक का भी उल्लेख मिलता है। इस काल में शारीरिक तथा आर्थिक दण्डों की स्थिति स्पष्ट हो रही थी। वैदिक काल में वाग् तथा धिक् के साथ अर्थ तथा शारीरिक दण्ड का प्रयोग होता था, परन्तु इनका विकास स्मृतियों के समय में हुआ था। आपस्तम्ब एवं बौधायन धर्मसूत्रों में शारीरिक, आर्थिक तथा वाग्दण्ड की चर्चा है। आर्थिक दण्ड से राजा को आय प्राप्त होती थी। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में वर्णित है कि राजा साक्षियों के आधार पर प्रश्न करके शपथ दिलाकर अपराधी को दण्ड दे।[51] वाग्दण्ड अर्थात् वाणी द्वारा समझाना, अर्थात् अपराधी को उसके अपराध से परिचित कराकर छोड़ देना। धिग्दण्ड अर्थात् अपराधी द्वारा किए गए अपराध को लक्ष्य करके बुरा भला कह कर छोड़ देना। धन दण्ड में अपराधी से धन ग्रहण करना। काय दण्ड अथवा वध दण्ड अर्थात् विविध प्रकार के शारीरिक दण्ड, बेंत या रस्सी से मारना या मृत्यु दण्ड देना। कारागार दण्ड में कारागार में अपराधियों को दण्ड की अवधि तक निरुद्ध करना। जाति बहिष्कार दण्ड अर्थात कुछ अपराधों के लिए जाति से बहिष्कार करना। प्रायश्चित दण्ड अर्थात कुछ के लिए प्रायश्चित दण्ड का विधान है, जिनके अनुष्ठान से अपराधी आत्मशुद्धि कर सकता है। सम्पत्ति दण्ड अर्थात कुछ अपराधों के लिए अपराधी की सम्पत्ति छीन लेना। निर्वासन दण्ड अर्थात कुछ ऐसे अपराध भी है जिनके लिए अपराधी को राज्य निर्वासन दण्ड का भी विधान है।

शारीरिक दण्ड के अन्तर्गत अंगच्छेद, देश-निकाला, मारना तथा मृत्यु दण्ड आता है। यदि अपराधी ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य वर्ण का हो तो, राजा कर्म के अनुसार पुरोहित द्वारा बताया हुआ दण्ड स्वयं ही दे और मृत्यु का दण्ड भी वह दे सकता है। किन्तु सन्देह होने पर राजा दण्ड न दे। ऐसा आपस्तम्ब में दृष्टिगोचर होता है।[52] नैतिक नियमों की रक्षा तथा धर्म का उल्लंघन करने वालों को दण्ड देना राजा का धर्म है। नैतिकता की रक्षा के लिए उसे स्त्रियों के प्रति किए गए दुर्व्यवहार करने वालों को दण्ड देना चाहिए। आपस्तम्ब के मतानुसार यदि कोई पुरुष जानबूझ कर किसी विवाहित स्त्री या विवाह योग्य कन्या को दुर्भावना पूर्ण दृष्टि से देखता है तो उसे दण्ड देना चाहिए।[53] व्यभिचार में प्रवृत्त होने वाले पुरुष की प्रजननेन्द्रिय कटवा देनी चाहिए।[54] मनुस्मृति में वर्णित है कि उसे देश निकाला भी देना चाहिए।[55] परन्तु बौधायन धर्मसूत्र में इस प्रकार के वचन उपलब्ध नहीं होते। व्यभिचार से दूषित कन्या का भरण-पोषण राजा को करना चाहिए। प्रायश्चित के बाद वह विवाहार्थ ग्राह्य मानी गई है।

यदि कोई मजदूर कृषि कर्म को बीच में छोड़े तो उसे पीटना चाहिए। इसी प्रकार का दण्ड गौ के उस चरवाहे को भी मिलता है जो बीच में ही काम छोड़ देता है।[56] आपस्तम्ब के मतानुसार प्रथम तीन वर्णों के व्यक्ति की निन्दा करने वाले या अपशब्द कहने वाले शूद्र को कठोर दण्ड देना चाहिए।[57] मनुस्मृति में वर्णित है कि द्विजातियों के नाम तथा जाति का उच्चारण करके कटु वचन कहने वाले शूद्र के मुख में जलती हुई दस अंगुल लम्बी लोहे की शलाका डालनी चाहिए।[58] जो शूद्र प्रथम तीन वर्णों के पुरुष के साथ

वार्तालाप में, मार्ग में, शय्या में बैठने के आसन पर तथा अन्य कर्मो में समान व्यवहार करे तो उसे डण्डे से पीटना चाहिए।[59] किसी पुरुष का वध करने पर, चोरी करने पर, भूमि पर बलपूर्वक कब्जा कर लेने पर शूद्र की सम्पूर्ण सम्पत्ति को छीन लेना चाहिए तथा उसका वध कर देना चाहिए। किन्तु यदि एक ब्राह्मण यह सब अपराध करता है तो उसका वध नहीं होता अपितु उसकी आँखों पर पट्टबन्ध इस प्रकार बाँध दिया जाता है, जिससे वह जीवन भर न देख सके।[60] बौधायन का भी यही मत है कि ब्राहाण को किसी भी अपराध के लिए वध का दण्ड नहीं देना चाहिए।[61] उनका यह भी मत है कि ब्राह्मण के द्वारा ब्राह्मण की हत्या करने पर, गुरुपत्नीगमन करने पर, सुवर्ण चुराने पर, सुरापान करने पर राजा उसके माथे पर क्रमशः मनुष्य के धड़, शृंगाल और सुरापात्र की आकृति जलते हुए लोहे से अंकित करावे और राज्य से बाहर निकाल दे।[62]

अर्थ दण्ड में धन से लेकर सर्वस्व हरण तक दण्ड दिया जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति से खेत लेकर उस पर खेती नहीं करता, जिसके कारण उसमें फसल उत्पन्न नहीं होती, यदि वह व्यक्ति धनी है तो वह उस फसल का मूल्य खेत के स्वामी को दे।[63] इसी प्रकार यदि पशुओं का रखवाला पशुओं को निगरानी करने के लिए ले गया हो और उस समय रखवाला पशुओं को मर जाने दे या चोरी हो जाने दे, तो वह पशुओं का मूल्य पशुओं के मालिक को दे, ऐसा आपस्तम्ब का मत है।[64] मनुस्मृति में भी इसी प्रकार के वचन दृष्टिगोचर होते हैं।[65] आपस्तम्ब के मतानुसार यदि कोई व्यक्ति जानबूझकर किसी का भोजन ग्रहण कर ले तब उसके वस्त्र छीन लेने चाहिए।[66] बौधायन ने केवल वध करने पर ही ऐसे दण्ड का निर्धारण किया है। इनका मत है कि क्षत्रिय का वध करने वाला व्यक्ति राजा को एक सहस्र गाएं और एक सांड दे। वैश्य की हत्या करने पर सौ गाएं और शूद्र की हत्या करने पर दस गाएं तथा दोनों स्थितियों में एक सांड भी राजा को दे।[67] यदि राजा किसी दण्ड के योग्य व्यक्ति को दण्ड नहीं देता तो वह पाप राजा को लगता है। ऐसा आपस्तम्ब का मत है।[68] परन्तु कुछ कारण ऐसे हैं जिन पर दण्ड नहीं दिया जाता। जो व्यक्ति ईंधन, जल, मूल, पुष्प, फल, गन्ध, घास, शाक आदि, बिना जाने हुए कि यह किस व्यक्ति के हैं, ग्रहण कर ले, उसे राजपुरुष वाणी से डाँटकर रोक सकता है। परन्तु संकट आने पर यदि व्यक्ति जानबूझकर भोजन ग्रहण करता है तो उसे दण्ड देना नहीं चाहिए ऐसा आपस्तम्ब का मत है।[69]

न्याय व्यवस्था

न्याय व्यवस्था भी राजा का धर्म है। उसे न्यायकर्त्ताओं को उनकी योग्यता, विद्या, कुल, अवस्था, बुद्धि और आचरण का विचार करके नियुक्त करना चाहिए। इस प्रकार जो राजा अपने इन कर्त्तव्यों का पालन करता है वह दोनों लोकों को प्राप्त करता है।[70] न्याय व्यवस्था 'राजधर्म' में एक विवेच्य विषय है। परन्तु आपस्तम्ब तथा बौधायन धर्मसूत्र में इसका विवेचन नहीं किया गया। इस विषय पर महाभारत के अनुशासन पर्व में वर्णित है कि यदि राजा न्यायालय के समय पर न्यायालय में उपस्थित नहीं होता अथवा कार्यवाही के समय कोई विघ्न डालता है तो राजा अपराधी सिद्ध होता है। इस प्रकार विघ्नता से न्याससभा के कर्मचारी भी प्रमाद से युक्त हो जाते हैं।[71] राजा को निरपराध व्यक्तियों को दण्ड देने पर नरक का भय ही नहीं होता अपितु जनता का राजा के प्रति विद्रोह करने का भी भय रहता है। राजा न्याय करते समय अपने कुटुम्बी का भी ध्यान नहीं रख सकते।[72] इस प्रकार राजा यदि न्यायिक नियमों का पालन नहीं करेगा तो राज्य में क्रान्ति आ जाएगी।

मनु ने राजा तथा राजपुरुष के द्वारा किसी प्रकार का वाद उपस्थित करने का निषेध किया है। साथ ही यह भी कहा है कि राजा या राजपुरुष को किसी के वाद में किसी प्रकार का हस्तक्षेप भी नहीं करना चाहिए। राज्य का एक प्रमुख कार्य समुचित न्याय

दिलाना है। न्यायालय द्वारा निर्णय दिए जाने के पश्चात् भी कुछ मामले पुनर्विचार के योग्य माने जाते थे। इसका विवेचन याज्ञवल्क्य स्मृति में उपलब्ध होता है।[73]

संदर्भ

1. महाभारत शान्ति पर्व 320/6। **2.** वही 75/4। **3.** महाभारत, अनु. पर्व 91/9; शुक्र नीतिसार 1/73। **4.** महाभारत शान्ति पर्व 59/14। **5.** अर्थशास्त्र 1/13/8। **6.** शुक्र नीतिसार 1/65। **7.** मनुस्मृति 7/8। **8.** मनुस्मृति 7/4। **9.** रामायण अयोध्या काण्ड 67/29। **10.** थ्योरी ऑफ गवर्नमेंट इन एन्सियन्ट इंडिया, पृ.- 301। **11.** रघुवंश 1/13। **12.** याज्ञवल्य स्मृति 1/309-311। **13.** मनुस्मृति 7/37-44। **14.** बौधायन धर्मसूत्र 1/10/18/1। **15.** बौधायन धर्मसूत्र 1/10/18/1 पर गोविन्दस्वामी की टीका। **16.** मनुस्मृति 9/254। **17.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/10/25/15। **18.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/10/25/8। **19.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/10/25/10-11। **20.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/10/25/14; 2/10/26/1। **21.** बौधायन धर्मसूत्र 1/10/18/9-10। **22.** बौधायन धर्मसूत्र 1/10/18/11। **23.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/5/20/12। **24.** गौतम धर्मसूत्र 2/1/17-18; मनु 7/91। **25.** बौधायन धर्मसूत्र 1/10/18/7-8। **26.** गौतम धर्मसूत्र 2/2/14-15। **27.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/5/10/15। **28.** कौटिल्य अर्थशास्त्र 1/1/5/15-16। **29.** याज्ञवल्य स्मृति 1/311। **30.** आपतम्ब धर्मसूत्र 2/10/26/4, 6-7। **31.** गौतम धर्मसूत्र 2/1/46-47। **32.** मनुस्मृति 7/114। **33.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/10/26/2-5। **34.** State and government in ancient India pp.95-96 & 130-135. **35.** Hindu Polity, P. 17. **36.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/5/10/15। **37.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1/10/25/15। **38.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1/10/25/13। **39.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/10/26/9। **40.** श्रीधायन धर्मसूत्र 1/10/18/1। **41.** गौतम धर्मसूत्र 2/1/24। **42.** मनुस्मृति 7/130। **43.** बौधायन धर्मसूत्र 1/10/18/13-15। **44.** मनुस्मृति 7/129। **45.** मनुस्मृति 7/111। **46.** मनुस्मृति 7/127 **47.** बौधायन धर्मसूत्र 1/10/18/16। **48.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/6/14/5। **49.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/10/26/10-17 **50.** मनुस्मृति 7/14। **51.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/5/11/3। **52.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/5/11/2। **53.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/10/26/19। **54.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/10/26/20। **55.** मनुस्मृति 8/352। **56.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/11/28/2-3। **57.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/10/27/14। **58.** मनुस्मृति 8/271। **59.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/10/27/15। **60.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/10/27/16-17। **61.** बौधायन धर्मसूत्र 1/10/18/17। **62.** बौधायन धर्मसूत्र 1/10/18/18। **63.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/11/28/1। **64.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/11/28/7। **65.** मनुस्मृति 8/232। **66.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/11/28/12। **67.** बौधायन धर्मसूत्र 1/10/11/1-2। **68.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/11/28/14। **69.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/11/28/11, 13। **70.** आपस्तम्ब धर्मसूत्र 3/5/11/4। **71.** महाभारत, अनुशासनपर्व, पृ. 6/38। **72.** याज्ञवल्क्य स्मृति 3/359। **73.** याज्ञवल्क्य स्मृति 3/31, 305, 306

असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
भारती कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
मो. - 9212735983

●

प्रकृति जीवन का स्त्रोत और उसका आधार है, प्रकृति और पर्यावरण की रक्षा मानव जीवन की अनिवार्यता है।

दूसरों की मदद करते हुए यदि दिल में खुशी हो, तो वही सेवा है बाकी सब दिखावा है।

पौराणिक ग्रन्थों में वृक्षसंरक्षण तथा वृक्षों का महत्व

संतोष कुमार पाण्डेय

पौराणिक ग्रन्थों में वृक्षों को प्रकृति द्वारा निःशुल्क प्रदत्त बहुमूल्य निधि बताया गया है। इनके बिना जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। वृक्ष मनुष्य के परम हितैषी, निःस्वार्थ सहायक तथा अभिन्न मित्र हैं। न सिर्फ मनुष्य बल्कि अनेक पशु-पक्षी भी अपने जीवन के लिए इन वृक्षों पर आश्रित हैं। पौराणिक ग्रन्थों के रचनाकारों की दृष्टि दूरदर्शी थी। वे इन वृक्षों के तात्कालिक तथा दीर्घकालिक महत्व से भली-भाँति परिचित थे। इसी कारण उन्होंने वृक्षों को दैवीय बताया तथा पीपल, बरगद, नीम तुलसी जैसे वृक्षों को देवी-देवताओं का निवासगृह बताया ताकि लोग आधिकाधिक पुण्य प्राप्ति, मनोकामना की पूर्ति अथवा मोक्ष प्राप्ति की इच्छा से इन वृक्षों की सेवा करें। वैज्ञानिक दृष्टि से भी ये वृक्ष कीटाणुनाशक तथा ऑक्सीजन के मुख्य उत्सर्जक माने गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वृक्षों की क्षति को रोकने के लिए ही उन्हें धर्म से सम्बद्ध कर दिया गया था। पौराणिक ग्रन्थों में वृक्षारोपण से होने वाले लाभों का विस्तृत उल्लेख है, किस वृक्ष से किस प्रकार की औषधि निर्मित की जा सकती है तथा उस औषधि का किन रोगों के उपचार में प्रयोग किया जा सकता है, इत्यादि का वर्णन है। प्रकृति के सन्दर्भ में पौराणिक ऋषि-मुनियों का दृष्टिकोण व्यावहारिक तथा महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ वैज्ञानिक भी था। अतः आधुनिक युग में भी मानव जीवन के कल्याण के लिए पौराणिक विचारों को अपना लेने की महती आवश्यकता है।

(**बीज शब्द--** पौराणिक ग्रन्थ, पुराण, देवी-देवता, वृक्ष, वृक्षारोपण, वृक्षसंरक्षण, औषधि, आधुनिक युग, अश्वत्थ वृक्ष, वट वृक्ष, नीम, तुलसी।)।

भारतीय संस्कृति में पुराणों का विशिष्ट स्थान है। इन्हें भारतीय संस्कृति का विश्वकोश माना जा सकता है। हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों में पुराणों की रचना एक विशिष्ट उद्देश्य को लेकर की गयी थी, इसके पूर्व में लिखित ग्रन्थों की भाषा अत्यधिक क्लिष्ट तथा जटिल थी। जन साधारण को इन्हें पढ़ने व समझने में अत्यधिक कठिनाई का अनुभव होता था। लोगों को इसी समस्या से मुक्ति दिलाने के लिए पुराणों को आम लोगों की भाषा में लिपिबद्ध किया गया ताकि इसे पढ़ने तथा समझने वाले लोगों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो सके तथा सभी लोग इनसे जुड़ सकें। समाज के धर्म से प्रेरित होने के कारण प्राचीन काल में जितने भी ग्रन्थों की रचना हुई, सभी धर्म से जुड़े रहे क्योंकि उस समय के विद्वानों के लिए सामान्य जनता से जुड़ने

का धर्म एक सशक्त माध्यम था। उस समय धर्म के द्वारा ही धार्मिक ग्रन्थों के माध्यम से अनेक प्रकार की जानकारी सामान्य जनता में प्रचारित-प्रसारित की जाती थी।

पुराणों का रचयिता लोमहषर्ण या उनके पुत्र उग्रश्रवा को माना जाता है। पुराणों का तिथि निर्धारण यद्यपि विवादित है फिर भी ऐसा माना जाता है कि इनकी रचना सामान्य रूप से तृतीय शताब्दी अथवा चतुर्थ शताब्दी के आस-पास हुई। पुराणों की संख्या 18 बताई गई है जिनके नाम मत्स्य, कूर्म, लिंग, स्कन्द, शिव, विष्णु, वामन, वाराह, ब्रह्मा, ब्रह्मवैवर्त, नारद, भागवत, पद्म भविष्य, गरुड़, अग्नि, मार्कण्डेय तथा ब्रह्माण्ड पुराण हैं। इन अष्टादश पुराणों को मात्र धार्मिक ग्रन्थ कहकर इनके अन्य पक्षों की उपेक्षा कर देना किसी भी दृष्टि से तर्कसंगत नहीं है। इनमें मानव अतीत के विविध पक्ष जीवित अवस्था में बिखरे पड़े हैं जिन्हें वैज्ञानिक तथा सारगर्भित ढंग से एकत्र कर प्रस्तुत करने की नितान्त आवश्यकता है। इन पुराणों से सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन से सम्बन्धित अनेक उपयोगी तथा ज्ञान वर्धक जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। पुराणों में अनेक ऐसे वर्णन मिलते हैं जो मनुष्य का प्रकृति से सामन्जस्य स्थापित करने में मददगार हो सकते हैं। इनमें अनेक ऐसे वर्णन तथा प्रसंग प्राप्त होते हैं जो वृक्षारोपण तथा वृक्षों के संरक्षण को प्रोत्साहित करते हैं। पुराणों में अनेक श्लोकों में प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप से वृक्षों के महत्व से सम्बन्धित वर्णन प्राप्त होते हैं। इनमें बताया गया है कि किस वृक्ष में कौन से देवता निवास करते हैं, उन वृक्षों का धार्मिक तथा आध्यात्मिक महत्व क्या है, किस वृक्ष की सेवा से कौन सा पुण्य मिलता है, किस वृक्ष से कौन सी औषधि प्राप्त होती है तथा उस औषधि का किस रोग के उपचार में प्रयोग होता है, किन वृक्षों को घर के समीप स्थापित करना चाहिए इत्यादि से सम्बन्धित विस्तृत व ज्ञानवर्धक जानकारी दी गयी है।

पद्म पुराण में ऋषि पुलस्त्य तथा भीष्म के संवाद के प्रसंग में अश्वत्थ (पीपल) तथा अशोक वृक्ष के रोपण का लाभ वर्णित है।[1] इसके अनुसार पीपल वृक्ष को लगाने वाला व्यक्ति धनी होता है तथा अशोक का वृक्ष दुःखों का नाश करता है। पुराणों में अनेक स्थानों पर वृक्षारोपण के महत्व को प्रदर्शित करते हुए कहा गया कि वृक्ष लगाने तथा उसकी देखभाल करने वाले मनुष्य को यज्ञ करने के बराबर पुण्य प्राप्त होता है। क्षारि वृक्ष का रोपण करने वाले की उम्र में वृद्धि होती है। दाड़िम वृक्ष को लगाने वाले व्यक्ति को पत्नी की प्राप्ति होती है।

अंकोल वृक्ष के रोपण से कुल में वृद्धि होती है। पीपल वृक्ष समस्त प्रकार के रोगों का नाश करता है। जम्बू वृक्ष का रोपण करने वाले व्यक्ति को कन्यादान के बराबर पुण्य मिलता है। निम्ब वृक्ष के रोपण से सूर्यदेव प्रसन्न रहते हैं। खादिर वृक्ष के रोपण से सभी रोगों से मुक्ति मिलती है। पलाश वृक्ष के रोपण से ब्रह्मा की प्राप्ति होती है। इस समय का समाज इस तथ्य से भली-भाँति परिचित था कि वृक्ष न सिर्फ मनुष्य के लिए बल्कि इस पृथ्वी पर निवास करने वाले अनेक जीव-जन्तुओं के लिए भी आवश्यक हैं। इसी कारण वृक्षों को दैवीय मानकर उन्होंने न सिर्फ इसकी पूजा की बल्कि अधिक से अधिक वृक्षारोपण तथा पुण्य प्राप्ति की कामना से उनका संरक्षण भी किया।

प्राचीन युग में विविध प्रकार के वृक्ष तथा उनके पुष्प, फल, पत्ते इत्यादि का प्रयोग धार्मिक उत्सवों में किया जाता था। वर्तमान समय में भी इन वृक्षों तथा उनके पुष्प, फल, पत्तों का प्रयोग धार्मिक समारोहों में किया जाता है। पुराणों में अधिकांश वृक्षों को देवी-देवताओं का निवासगृह बताया गया है ताकि धार्मिक महत्व के कारण लोग इन वृक्षों को पवित्र मानकर उनका संरक्षण करें। पुराणों में निम्नलिखित वृक्षों को विभिन्न देवी-देवताओं का निवास स्थान बताया गया है[1]:-

अशोक	-	देवराज इन्द्र, भगवान विष्णु, सूर्य, बुद्ध।
अश्वत्थ (पीपल)	-	वनदुर्गा, लक्ष्मी, विष्णु।
बरगद (वट वृक्ष)	-	ब्रह्मा, विष्णु, महेश, यक्षिणी, कुबेर, लक्ष्मी, पंचानन, काल।
आम	-	प्रजापति, विष्णु, लक्ष्मी, गोवर्द्धन।
कदम्ब	-	भगवान कृष्ण।
तुलसी	-	लक्ष्मी, जगन्नाथ, राम, कृष्ण, विष्णु।
रूद्राक्ष	-	विष्णु, रूद्र, सूर्य, गणेश, दुर्गा।
धात्री (आँवला)	-	केशव, लक्ष्मी, ब्रह्मा।
श्री वृक्ष	-	ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश, सूर्य, लक्ष्मी, दुर्गा।
पूग (सुपारी)	-	प्रजापति, विष्णु।

पीपल वृक्ष में कई प्रकार के देवी-देवताओं का निवास माना जाता है। इस वृक्ष की पूजा करने से सभी देवताओं की पूजा स्वतः ही हो जाती है। यह वृक्ष भगवान श्री कृष्ण की विभूतियों में से एक है।[2] भविष्य पुराण के अनुसार इस वृक्ष के चारों तरफ दस हाथ तक का क्षेत्र पवित्र है, जहाँ तक इसकी छाया पहुँचती है अथवा इसके संसर्ग से प्रवाहित जल पहुँचता है, वह क्षेत्र गंगा के समान पवित्र है।[3] इस वृक्ष को क्षति पहुँचाने वाला पाप का भागीदार होता है। यह वृक्ष शुद्ध वायु प्रदान करने के साथ-साथ पर्यावरण प्रदूषण भी कम करता है। इस वृक्ष के मूल में भगवान विष्णु, शाखाओं में नारायण, पत्तों में श्री हरि तथा इसके फलों में अच्युत निवास करते हैं। यह वृक्ष विष्णु सदृश है। इसका आश्रय मनुष्य के पापों का नाशक होने के साथ-साथ उसकी समस्त मनोकामना पूर्ण करता है।[4] इसी प्रकार आँवला वृक्ष भी अत्यधिक पवित्र माना जाता है। इसका फल भगवान वासुदेव को अति प्रिय है। इस फल के खाने से उम्र में वृद्धि होती है। इसका रस पीने से धर्म का संचय होता है। इसके साथ स्नान करने से दरिद्रता दूर होती है, धन तथा ऐश्वर्य में वृद्धि होती है। जिस स्थान पर यह आंवला वृक्ष रहता है वहाँ पर ब्रह्मा, विष्णु तथा लक्ष्मी का स्वभाविक रूप से निवास रहता है। इसका सेवन करने वाला मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुधाम प्राप्त करता है।[5] आम का वृक्ष प्रत्येक काल में लोकप्रिय रहा है, यह आम का फल प्रदान करने के साथ-साथ लकड़ी भी प्रदान करता है। धार्मिक मान्यता के अनुसार इस वृक्ष को जल देने से पितरगण प्रसन्न होते हैं।[6]

सभी प्रकार के पौधों में तुलसी वृक्ष को सर्वाधिक श्रेष्ठ माना जाता है। इसका पत्र, पुष्प, फल, मूल, शाखा, छाल, तना तथा मृत्तिका इत्यादि पवित्र हैं।

पत्रं पुष्पं फलं मूलं शाखा त्वक् स्कन्धसंज्ञितम्।
तुलसी संभवं् सर्वं पावनं मृत्तिकादिम्।।[7]

पद्म पुराण के सृष्टि खण्ड के अनुसार जिस व्यक्ति के घर में तुलसी का पौधा होता है, वह घर तीर्थ के समान है। वहाँ मृत्यु के देवता यमराज नहीं आते हैं। जो व्यक्ति तुलसीमंजरी से भगवान श्री हरि की पूजा करता है, उसे फिर पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता है।

तुलसीकाननं चौव गृहे यस्यावतिष्ठते।
तदगृहंतीर्थभूतं हि नायांन्ति यमकिंकराः ।।[8]

ब्रहमवैवर्त पुराण के अनुसार तुलसी के पौधे में जड़ से लेकर उसकी छाया तक में समस्त देवी देवता व तीर्थ निवास करते हैं।

तुलसी तरूमूले च पुण्यदेशे सुपुण्यदे।
अधिष्ठानं तु तीर्थानां सर्वेशां च भविष्यति।।[9]

पद्म पुराण के पातालखण्ड में तुलसी वृक्ष की प्रशंसा करते हुए कहा गया कि-- जो दर्शन करने पर सारे पापसमुदाय का नाश कर देती है, स्पर्श करने पर शरीर को पवित्र बनाती है, प्रणाम करने पर रोगों का नाश करती है, जल से सींचने पर यमराज को भी भय पहुँचाती है, रोपित करने पर भगवान श्री कृष्ण के समीप ले जाती है तथा भगवान के चरणों में चढ़ाने पर मोक्ष प्रदान करती है, उस तुलसी देवी को नमस्कार है-

या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी स्पृष्टा वपुष्पावनी,
रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सिक्तान्तकत्रासिनी।

प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता, न्यस्ता तच्चरणे विमुक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नमः।।[10]

तुलसी का वृक्ष धार्मिक व आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वाधिक महत्व का है, वहीं वैज्ञानिक दृष्टि से भी यह कीटाणुनाशक है। यह अपने आस-पास के वातावरण को स्वच्छ करती है, साथ ही साथ अनेक प्रकार की बीमारियों को नष्ट करती हुई पर्यावरण प्रदूषण भी कम करती है।

हिन्दू धर्म में रुद्राक्ष को अत्यधिक पवित्र माना जाता है। शिवपुराण के अनुसार इसके स्पर्श करने/दर्शन करने मात्र से चारों पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) की प्राप्ति होती है, व्यक्ति के समस्त पाप नष्ट होते हैं तथा उसे मनवांछित फल प्राप्त होता है।[11] उपर्युक्त सभी वर्णनों से ऐसा प्रतीत होता है कि धर्म से प्रेरित पौराणिक समाज इन वृक्षों के तात्कालिक एवं दीर्घकालिक महत्व से अच्छी तरह से परिचित था। इसके पीछे एक कारण यह भी रहा होगा कि लोग देवी-देवताओं का निवास स्थान होने के कारण इन कीटाणुनाशक तथा स्वच्छ आक्सीजन उत्सर्जक वृक्षों के समीप अधिक समय व्यतीत करेंगे जिससे उनकी समस्त बीमारियाँ स्वतः ही दूर हो जाएंगी तथा वे निरोग होकर दीर्घायु बन सकेंगे। पौराणिक ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार के वृक्षों के रोपण के विभिन्न परिणाम बताए गए हैं -

वट- मोक्ष प्रदान करता है। **आम-** समस्त मनोकामना पूर्ण करता है। **पलाश-** स्वर्ग व ब्रह्मतेज प्रदान करता है। **अशोक-** दुःखों का नाश करता है। **पीपल-** रोगों का नाशक है तथा धन प्रदान करता है। **जम्बू-** धन प्रदान करता है। **बंजूल-**बल तथा बुद्धि प्रदान करता है। **कदम्ब-** लक्ष्मी की प्राप्ति कराता है। **शमी व खदिर-** आरोग्य प्राप्ति। **वकुल-** पापों से मुक्ति प्रदान करता है। **तेन्दु-** कुल में वृद्धि। **दाड़िम-** स्त्री सुख प्रदान करता है। **प्लक्ष-** ज्ञान प्रदान करता है। **सुपारी-**सिद्धि प्रदान करता है। **नारियल-**बहु पत्नी प्रदान करता है। **वेत्र-** चोर-डाकुओं से रक्षा करता है। **अर्जुन व मधूक-** अन्न प्राप्ति। **चन्दन-** पुण्य प्रदान करता है।[12]

पौराणिक ऋषि-मुनि इस बात से भलीभाँति परिचित थे कि वृक्षों का विनाश होने से पर्यावरण प्रदूषण में वृद्धि होती है। इससे समाज में अनेक प्रकार के रोगों का प्रसार होता है। यदि हम इन वृक्षों के रख रखाव पर ध्यान दें, अधिक से अधिक वृक्षारोपण करें तो इन वृक्षों की सहायता से आवश्यक औषधियाँ प्राप्त कर सकते हैं तथा समाज में व्याप्त अनेक प्रकार के रोगों को नष्ट कर सकते हैं। इसके साथ-साथ इन वृक्षों से हमें खाद्य सामग्रियाँ, जलाने के लिए लकड़ी, पशुओं के लिए चारा भी प्राप्त होता है इसलिए वृक्षारोपण तथा वृक्षों का संरक्षण अति आवश्यक है। पुराणों में निम्नलिखित ऐसे वृक्षों का वर्णन मिलता है जिनकी सहायता से रोगों/बीमारियों पर विजय प्राप्त की जा सकती है--[13]

काली मिर्च, आमलक, पिप्पली, शोभांजन, आशीतितिल, शुष्ठ इत्यादि- **नेत्र रोग।** हरीतकी, घोषाफल, दूर्वा, अलक्तक, दाड़िम इत्यादि- **नासिका रोग।** गिलोय, हरिद्रा, शीर पर्पट, कपटकारि, नागरूला, धन्यक, चन्दन, देवदार, निम्ब, मुस्तक, पटौय, हर्र बहेड़ा, आमलक इत्यादि- **ज्वर/बुखार।** पुष्कर, नागर, नागरूला, गिलोय इत्यादि- श्वांस सम्बन्धी रोग/**खांसी।** ताम्बुल, धन्याक, इलायची, कुष्ठ, मुस्तक, जाती इत्यादि- **मुख सम्बन्धी रोग।** बीजपूरक, भृंगराज, हर्र बहेड़ा, शतपुष्पा, आमलक, देवदास- **केश/बाल।** नागेश्वर, शतपुष्मा, देवदारू, मालती, पुष्प, अर्क, वचा, हिन्गु **कुष्ठ** इत्यादि- कर्ण/**सिर रोग।** हरिद्रा, निम्ब, पिप्पल, मरीच, अभया, शुष्ठी, विडंगमद्र, मुस्त इत्यादि-- **अजीर्ण रोग।** हरिताल, गुजा, स्नुही, रक्तचन्दक, ककजंघा, केशर, हिंगु, हरितकी इत्यादि-- **दन्त रोग।** मरीच, काकजंघा, मुरत, यष्टी इत्यादि-- **अनिद्रा रोग।**

भविष्य पुराण में वृक्ष के धार्मिक महत्व को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि विधि पूर्वक

वृक्षारोपण करने वाले व्यक्ति को स्वर्ग (मोक्ष) की प्राप्ति होती है तथा वृक्षारोपणकर्ता के तीन जन्मों के पाप धुल जाते हैं। वृक्षारोपण करने वाला व्यक्ति ब्रहारूप एवं एक हजार वृक्षों का रोपण करने वाला श्री विष्णु का रूप बन जाता है। इसी प्रकार विष्णु पुराण में वृक्ष के महत्व को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि जो मनुष्य दुर्गम स्थानों पर वृक्षारोपण करता है, वह अपने अतीत, वर्तमान तथा भविष्य की कई पीढ़ियों का उद्धार कर देता है--

अतीतानागतान् सर्वान् पितृवंशास्तु तारयेत्।
कान्तारे वृक्षरोपी यस्तस्माद् वृक्षांस्तु रोपयेत।।[14]

प्राचीन धर्मग्रन्थों में वृक्षारोपण के महत्व को बताते हुए कहा गया कि वृक्षारोपण करने वाले व्यक्ति की कीर्ति इस लोक में तो विस्तारित होती ही है, साथ ही साथ उसे परलोक में भी शुभफल की प्राप्ति होती है। शिव पुराण के अनुसार वृक्ष, वृक्षारोपण करने वाले के पुत्र होते हैं इसी कारण उसे अक्षयलोक की प्राप्ति होती है।[15] मत्स्य पुराण में एक वृक्ष का रोपण दस पुत्रों के समान बताया गया-

दशकूप समावापी, दशवापीसमोहृदः।
दशहृदसमः पुत्रो, दशपुत्रोसमो द्रुमः।।[16]

अग्नि पुराण के अनुसार वृक्ष, उद्यान तथा उपवन को लगाने वाला व्यक्ति इस लोक में सुखपूर्वक निवास करता है।[17] पौराणिक समाज में वृक्षारोपण करना अत्यधिक पुण्य व सम्मान का कार्य था। इस समय वृक्षारोपण करने का कार्य उत्सव के रूप में अत्यधिक धूम धाम से मनाया जाता था। इस समय वृक्षोत्सव को 4 प्रमुख उत्सवों (महोत्सव, समाजोत्सव, देवोत्सव, वृक्षोत्सव) में से एक माना जाता था।[18] पौराणिक मान्यता के अनुसार शास्त्रीय विधि से वृक्षारोपण का उत्सव करने वाले व्यक्ति की समस्त मनोकामना पूर्ण हो जाती है-

अनेन विधिना यस्तु कुर्याद् वृक्षोत्सव बुधः।
सर्वान् कामानवारनोति फलं चानन्त्रमष्नुते ।।[19]

वाराह पुराण में वृक्षारोपण के आध्यात्मिक महत्व को स्वीकार करते हुए कहा गया कि-- एक अश्वत्थ (पीपल), एक पिचुमन्द्र (नीम), एक वट (बरगद), दो दाड़िम, दो नारंगी तथा पाँच आम वृक्षों का रोपण करने वाला व्यक्ति कभी नर्क में नहीं जाता है। अर्थात उसे स्वर्ग के दर्शन होते हैं-

अश्वत्थमक पिचुमन्दमेंक न्याग्रोधमेंक दश पुष्पजातीः। द्धे द्धे दाडिममातुलुंगे पंचाम्ररोपी नरकं न याति।।[20]

स्कन्द पुराण के एक श्लोक में वृक्षों के धार्मिक महत्व को स्वीकार करते हुए कहा गया कि--

अश्वत्थमेकम् पिचुमन्दमेकम् न्यग्रोधमेकम् दश चिञ्चिणीकान्।

कपित्थबिल्वाऽऽमलकत्रयञ्च पञ्चाऽऽम्रमुप्त्वा नरकन्न पश्येत्।। अर्थात् अश्वत्थ (पीपल), पिचुमन्द (नीम), न्यग्रोध (वट वृक्ष), चिंचिणी (इमली), कपित्थ (कैथा), बिल्व (बेल), आमलक (आंवला), आम्र (आम), जैसे वृक्षों का जो भी रोपण करता है उसे कभी नर्क के दर्शन नहीं होते हैं।

इस प्रकार पुराणों में अनेक स्थानों पर वृक्षों की उपयोगिता तथा महत्व से सम्बन्धित वर्णन प्राप्त होते हैं। आधुनिक युग में समस्त विश्व वृक्षों की अंधाधुंध कटाई के कारण वायु प्रदूषण जैसी गंभीर समस्या से जूझ रहा है। राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, क्षेत्रीय स्तर पर इस विकट समस्या से निपटने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रयास किए जा रहे हैं, अत्यधिक श्रम, धन तथा समय का व्यय करने के बाद भी अपेक्षित परिणाम नहीं मिल पा रहे हैं। इस स्थिति में यदि हम पौराणिक ग्रन्थों में सांकेतिक रूप से विभिन्न मंत्रों के माध्यम से बताए गए वृक्ष संरक्षण सम्बन्धी उपायों को अपना लें तो पुनः धरती को हरा-भरा बनाया जा सकता है तथा वृक्षों को दीर्घायु प्रदान कर मानव जीवन को भी सुखमय बनाया जा सकता है, साथ ही साथ वृक्षों की अंधाधुंध कटाई तथा वायु प्रदूषण में निरन्तर वृद्धि की समस्या से भी छुटकारा पाया जा सकता है।

निष्कर्ष :- पौराणिक ग्रन्थों में धर्म पर आधारित

वृक्षारोपण, वृक्ष संरक्षण तथा वृक्षों के महत्व से सम्बन्धित विस्तृत उपयोगी व ज्ञानवर्धक वर्णन प्राप्त होते हैं। आधुनिक युग में वृक्षों की रक्षा के लिए कई प्रकार के प्रयास किए जा रहे हैं, वृक्षों को अनावश्यक काटने वाले दण्डित किए जा रहे हैं। आज आवश्यकता है समाज में निवास करने वाले सभी लोगों को पौराणिक ग्रन्थों में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से बताए गए उपायों का अनुकरण करने के साथ-साथ व्यक्तिगत रूप से अधिक से अधिक वृक्षारोपण तथा वृक्षसंरक्षण के लिए दृढ संकल्प लेने की, क्योंकि पौराणिक ग्रन्थों में केवल उपाय बताए गए हैं परन्तु जब तक उन उपायों पर अमल नहीं होगा, वृक्षारोपण वृक्ष संरक्षण नहीं होगा तब तक धरती को हरा भरा बनाए गए रखने की कल्पना पूर्ण रूप से साकार नहीं होगा।

कहा जा सकता है कि पौराणिक ग्रन्थों में संचित वृक्षारोपण, वृक्षसंरक्षण तथा वृक्षों के महत्व सम्बन्धी बहुउद्देशीय ज्ञान प्राचीन युग में तो उपयोगी था ही, साथ ही आज के आधुनिक एवं वैज्ञानिक युग में भी कुछ परिवर्तनों के साथ अति प्रासंगिक है।

सन्दर्भ

1. पद्म पुराण, सृष्टि खण्ड, 28/23--31। **2.** भागवत पुराण, 12/16/21। **3.** भविष्य पुराण, 10--11। **4.** अथर्ववेद, 5/4/3/। **5.** शर्मा, आचार्य श्री राम, पद्मपुराण (अनु.), संस्कृति संस्थान, बरेली, पृ.- 394-398। **6.** अग्निहोत्री, पी.डी., पातंजलि कालीन भारत, 1963, पृ.- 278। **7.** पद्म पुराण, 24/2। **8.** पद्म पुराण, सृष्टि खण्ड, पृ.-177। **9.** ब्रहमवैवर्तपुराण, प्रकृतिखण्ड, 21/38। **10.** पद्म पुराण, पातालखण्ड, 79/66। **11.** शिव पुराण, विद्येश्वर संहिता, 25/4-95। **12.** भविष्य पुराण, मध्यम पर्व, प्रथम भाग, अ. 10, 12। **13.** शर्मा, आचार्य श्री राम् गरूड़ पुराण, संस्कृति संस्थान बरेली, पृ. 29-65। **14.** शिव पुराण, उ. संहिता, 11/7। **15.** वही 12/18। **16.** मत्स्य पुराण, 154/512। **17.** अग्नि पुराण, 1/16। **18.** राय, एस.एन., पौराणिक धर्म एवं समाज, पंचनन्द पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1989, पृ.-32-33। **19.** मत्स्य पुराण, 59/16। **20.** वाराह पुराण 172/39।

शोध छात्र,
प्राचीन इतिहास पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय
जौनपुर (उ.प्र.)
मो.-9415311389

●

एकान्त में भगवाधारी धूनी रमाए बैठे थे। उनके सत्व की परीक्षा लेने एक व्यक्ति आया और बोला, 'बाबाजी! धूनी में कुछ आग है?' बाबा बोले, 'इसमें आग नहीं है।' व्यक्ति ने उन्हें उत्तेजित करने के लिए कहा, 'कुरेद कर देखिए शायद कुछ अग्नि हो।' बाबाजी ने भौहें तरेरते हुए कहा, 'मैं तुम्हें बतला चुका हूं कि इसमें अग्नि नहीं है।' बाबाजी की प्रामाणिकता जांचने की उत्कंठा से व्यक्ति ने कहा, 'महाराज! कुछ तो चिनगारियां हैं।' संत वेशधारी बोले, 'अपना रास्ता ले। धूनी में न तो अग्नि है और न चिंगारी।' लेकिन मुझे तो लपट उड़ती हुई दिखाई देती है, व्यक्ति बोला। वे क्रोध से व्यक्ति को मारने दौड़े। व्यक्ति और तेज दौड़ता हुआ बोला कि महाराज! अब तो पूरी तरह अग्नि भड़क चुकी है। इशारा संत के क्रोध की तरफ था।

संत को बोध आने पर पश्चाताप हुआ और उन्होंने विचार किया कि मात्र वेश बदलने से नहीं, स्वभाव परिवर्तन से व्यक्ति संत बनता है।

राजकीय संग्रहालय अलवर और उसकी कतिपय असाधारण कलाकृतियाँ

आस्था शर्मा

विविध प्रकार की वस्तुओं को सुरक्षित तथा संरक्षित कर, उन्हें सभी की जानकारी, अध्ययन, विवेचन और विश्लेषण के लिए सार्वजनिक रूप से व्यवस्थित करना और उन्हें एक ही स्थान पर संयोजित करना ही संग्रहालय के रूप में जाना जाता है। संग्रहालय का शाब्दिक अर्थ 'संग्रह के आलय या घर' से है। अंग्रेजी भाषा में इसे (Museum) कहा गया है। यह ग्रीक भाषा के शब्द 'म्यूसिऑन' से बना है, जो म्यूजेज[1] अर्थात् विविध वस्तुओं का संग्रह-स्थल होता था। 283 ई.पू. में सिकन्दरिया में टॉलमी के द्वारा एक म्यूजियम स्थापित किया गया था, जिसे प्रथम संग्रहालय के रूप में जाना जाता है।[2] संग्रहालय दर्शकों को आनंद देने तथा उनका मनोरंजन करने के अलावा उनके ज्ञान में वृद्धि भी करते हैं।[3] अपने दर्शकों को शिक्षित करने के लिए संग्रहालय अपने विविध प्रकाशन तैयार करते हैं, जो परिचयात्मक प्रकाशन बुकलेट, गाइड, लीफलेट, फोल्डर, पोस्टर, पुस्तिका, मोनोग्राफ, बुलेटिन तथा कैटलॉग आदि के रूप में होते हैं।[4] संग्रहालय हमारी सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित रखने और साझा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। संग्रहालयों में संग्रहित वस्तुओं पर किये जाने वाले शोध-कार्यों से ज्ञान-मीमांसा का विस्तार होता है। इस रूप में आज संग्रहालय शिक्षा का एक महत्वपूर्ण आयाम बन कर उभरे हैं। इसी के चलते 'म्यूजियोलोजी' एक अहम विधा के रूप में विकसित हो रही है। विगत कुछ वर्षों में भारत में संग्रहालयों अर्थात् म्यूजियम्स की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। भारत में आज लगभग 700 से भी अधिक संग्रहालय हैं।[5]

अलवर संग्रहालय : राजस्थान के प्रमुख संग्रहालयों में है जो राजस्थान के अलवर जिला मुख्यालय में स्थित है। अलवर के इस राजकीय संग्रहालय की स्थापना पूर्व अलवर राज्य के अंतिम शासक तेज सिंह के शासन काल में तत्कालीन प्रधानमंत्री मेजर सी. डब्ल्यू. एस. हॉर्वे ने नवंबर 1940 में की।[6] यह संग्रहालय सिटी पैलेस (राजभवन) की पाँचवीं मंजिल पर स्थित है। यह सांस्कृतिक व ऐतिहासिक दृष्टि से राजस्थान के महत्वपूर्ण संग्रहालयों में से एक माना जाता है।

अलवर संग्रहालय में प्रदर्शित अधिकांश वस्तुएं राज परिवार से प्राप्त हुई हैं।[7] अलवर की शिल्पकलाओं के संरक्षण में यहाँ के नरुका राजपूत शासकों ने बहुत योगदान दिया है। यद्यपि

अलवर में स्वदेशी कलाओं के फलने-फूलने के प्रामाणिक दस्तावेजी सबूतों की बुनियादी कमी है। महाराजा विनय सिंह, म. मंगल सिंह और म. जय सिंह आदि शासकों की रुचि की वजह से भारतीय कला के दुर्लभ और मूल्यवान नमूने खरीदे और एकत्र किए गए। इन राजाओं ने बहुत से कलाकारों को आश्रय प्रदान किया तथा बहुत लोगों को पुरुस्कृत करके प्रोत्साहित किया। वर्तमान में ये सभी कलाओं के नमूने अलवर संग्रहालय में रखे हुए हैं।[7]

संग्रहालय के प्रथम कक्ष में विभिन्न कलाओं, हस्त-कौशल, नरुका शासकों द्वारा उपयोग में लिए गए वस्त्र, वाद्य यंत्र, काष्ठकला, हाथी दांत की वस्तुएं साथ ही भवनों के आकर्षक मॉडल रखे हुए हैं। इन सभी वस्तुओं से अलवर शासकों की विलासिता एवं कलाप्रियता की झलक देखने को मिलती है। संग्रहालय के मध्य कक्ष में अलवर व मुगल शैली के चित्र तथा हस्तलिखित पांडुलिपियाँ जो कि मुख्यतः उर्दू व फारसी भाषा में हैं, को प्रदर्शित किया गया है। यहाँ अलवर चित्रशैली में विभिन्न चित्रकारों द्वारा बनाए गए चित्र तथा हस्तलिखित पांडुलिपियाँ रखी गई हैं। चित्र में मुख्यतः बारहमासा, राजकुमारी के चित्र, त्यौहारों व उत्सवों के चित्र प्रमुख हैं। अलवर के मुख्य चित्रकार बलदेव मिश्र, मूलचंद, रामप्रसाद, जमनालाल आदि प्रमुख थे।[8] यहाँ जयदेव के गीत-गोविंद काव्य की हस्तलिखित प्रति रखी है जिसमें अलवर शैली के 35 चित्र हैं।

चित्रमय कुरान अरबी भाषा में लिखी हुई रखी है, साथ ही महाभारत की पांडुलिपि भी है, जिसमें अलवर शैली के 61 चित्र बने हुए हैं। अलवर की चित्रकला व ग्रंथ चित्रण परंपरा में रावराजा विनयसिंह, रावराजा बलवंत सिंह तथा विरजा शिवदान सिंह का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा। यहाँ पर संकलित चित्रों व सचित्र ग्रंथों में मुगल तथा राजस्थानी शैली का एक अनोखा समन्वय दृष्टिगोचर होता है, जिसके माध्यम से एक मिश्रित शैली का प्रभाव अलवर चित्रांकन में दिखाई देता है। संग्रहालय के तृतीय कक्ष में अस्त्र-शस्त्र व युद्ध में प्रयुक्त होने वाली सामग्रियाँ रखी हैं तथा नरुका शासकों का राजसिंहासन भी इस कक्ष में प्रदर्शित किया गया है। ये अस्त्र-शस्त्र अलवर के शौर्य व यहाँ के शासकों के युद्ध कौशल को प्रदर्शित करते हैं। संग्रहालय में लगभग 5816 तलवारें, ढालें, बंदूकें, कटार, तोप आदि संग्रहित हैं।[9] अलवर के संस्थापक रावराजा प्रताप सिंह तथा बख्तावर सिंह कुशल योद्धा थे, उनके दरबार में कुशल तलवारसाज आश्रय पाते थे। अलवर का शिलहखाना अपने अद्भुत अस्त्र-शस्त्रों के लिए विख्यात रहा है। अलवर में माचेड़ी, तिजारा, राजगढ़ आदि अस्त्र-शस्त्र बनाने के मुख्य केंद्र थे।[10] माचेड़ी के कलाकार बंदूकें बनाने में सिद्धहस्त थे, यहाँ की तोड़दार बंदूकें व नवदुर्गा बंदूकों ने उनको दूर-दूर तक प्रसिद्धि दिलाई थी। तिजारा की तलवारें बहुत प्रसिद्ध रही हैं। विनयसिंह व जयसिंह ने ना सिर्फ स्थानीय कलाकारों को प्रोत्साहित किया अपितु बाहरी सौदागरों से भी अस्त्र-शस्त्र खरीदकर अलवर के शस्त्रागार को सुसमृद्ध बनाया। ये सभी अस्त्र-शस्त्र वर्तमान में अलवर के राजकीय संग्रहालय की शोभा बढ़ा रहे हैं। संग्रहालय में एक पुस्तकालय भी है जिसमें हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू व फारसी में रचित लगभग 1000 ग्रंथ हैं।[11]

संग्रहालय की असाधारण कलाकृतियाँ

एक म्यान में दो तलवार : एक सुप्रसिद्ध कहावत है की एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती हैं, और यह उक्ति सही भी है। परंतु अलवर के कलाकारों ने इस उक्ति को भी गलत साबित करके एक ऐसी कलाकृति तैयार की जिसमें एक ही म्यान में एक ही समय में दो तलवार रखी जाती हैं। यह अजूबा अलवर प्रांत के कलाकार शेख वशारि अहमद ने किया था, जो कि अपने आपमें एक नायाब कलाकृति है। यह कार्य अलवर के शासक जयसिंह के आदेश पर किया गया तथा जयसिंह ने शेख वशारि को इस अनूठे कार्य के

लिए पुरुस्कृत भी किया।[12] वर्तमान में यह इस राजकीय संग्रहालय की शोभा बढ़ा रही है तथा आने वाले दर्शकों को अचंभित कर देती है।

गुलिस्तां : शेख सादी ने गुलिस्तां लिखकर मध्य एशिया में प्रसिद्धि प्राप्त की, जब मुस्लिम शासकों के साथ उनकी यह कृति भारत आई तब उनकी ख्याति भारत में भी फैली। अलवर संग्रहालय के सूचीपत्र से पता चलता है कि रावराजा विनयसिंह ने गुलिस्तां की प्रति तैयार करने की आज्ञा दी थी।[13] 287 पृष्ठों की इस पांडुलिपि में 17 रंगीन कलात्मक चित्र हैं। इसके हर पृष्ठ को तैयार करने में 15 दिन का समय लगता था। यह हस्तलिखित ग्रंथ एक लाख रुपये की लागत से 1856 में 12 वर्ष में तैयार हुआ था।[14] इस ग्रंथ की 3 प्रतियां तैयार की गई थी। इनमें से एक प्रति महाराजा ने स्वयं के पास रखी, दूसरी संग्रहालय में रखी तथा तीसरी प्रति के बारे में यह माना जाता है कि रावराजा जयसिंह ने उसे अपने मित्र पटियाला के महाराजा को भेंट में दी थी। इस ग्रंथ के सुलेखन का कार्य अलवर के दरबारी लेखक आगा मिर्जा देहलवी ने किया। इस ग्रंथ में चित्रकारी का कार्य बलदेव व गुलाम अली ने किया तथा हाशिया-नक्काशी (ग्रंथ के किनारों को अलंकृत करना) का कार्य नत्थाशाह पंजाबी एवं कारी अब्दुल रहमान ने किया तथा इसकी जिल्दसाजी का कार्य भी कारी अब्दुल रहमान ने किया।[15] यह ग्रंथ कला के साथ-साथ विषय वस्तु की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है, इसके 8 अध्याय चरित्र निर्माण एवं सदाचार के नियमों पर बल देते हैं। इस कलात्मक ग्रंथ के 17 चित्रों को बलदेव तथा गुलाम अली ने तैयार किया था जो मुगल शैली से प्रभावित अलवर शैली के बहुत अच्छे उदाहरण हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ के शासकों को गुलिस्तां की प्रतियां बनवाने में विशिष्ट लगाव था, इसी कारण अलवर संग्रहालय में इस ग्रंथ की लगभग आधा दर्जन हस्तलिखित व चित्रित प्रतियां संकलित हैं। यहाँ एक बात और द्रष्टव्य है कि स्वयं विनयसिंह ने भी गुलिस्तां की एक प्रति के आठवें अध्याय का सुलेखन किया था, जिसमें 23 पृष्ठ हैं।[16]

रागमाला : भारतीय चित्रांकन में संगीत को भी प्रधान स्थान प्राप्त है। इस चित्रांकन द्वारा भारतीय संगीत के स्वरों के प्रभाव व संवेगों को दर्शाया गया है, जिसे रागमाला या राग-रागिनी चित्रमाला के नाम से जाना जाता है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है---रागों की माला। रागमाला में भारतीय शास्त्रीय संगीत की 6 राग एवं 30 रागनियों को चित्रों के द्वारा दर्शाया गया है। ऐसा माना जाता है कि यह तिजारा के शासक रावराजा बलवंत सिंह के समय बनकर तैयार हुई थी जब अलवर में विनय सिंह का शासन था। कला की दृष्टि से यह रागमाला अलवर शैली के रंग संयोजन व तकनीक की दृष्टि से एक उत्तम कार्य मानी जाती है। इस रागमाला का चित्रण सालिगराम ने किया जो बख्तावर सिंह के समय जयपुर से अलवर आए थे 1836 में। जीवन का चक्र प्रकृति के साथ चलता रहता है जिसमें प्रत्येक दिन, ऋतु, वर्ष अलग होता है। इन अलग ऋतुओं का आनंद प्राप्त करने के लिए संगीत में विभिन्न रागों की रचना की गई। इन रागों को ऋतु के अनुसार सही समय पर ही गाया जाता है, क्योंकि प्रत्येक राग प्रकृति में परिवर्तन को दर्शाता है तथा यदि समय पर इन्हें गाया जाए तो ये अपने अनुकूल वातावरण तैयार करते हैं। ऋतुओं को हिन्दू पंचांग के अनुसार 6 भागों में बाँटा गया है और प्रत्येक ऋतु के लिए एक विशेष राग है। शरद में (भैरव प्रातः 4 से 8 बजे तक), बसंत में हिंडोला (प्रातः 8 से 12 बजे तक), वर्षा में मेघ (दोपहर 12 से सायं 4 बजे तक), हेमन्त में श्री (सायं 4 से रात 8 बजे तक), ग्रीष्म में दीपक (रात 8 बजे से 12 बजे तक), शिशिर में मालकोष (रात 12 से 4 बजे तक)। इनकी 30 रागनियों को गाया जाता है जो स्त्री रूप में होने के कारण स्वभाव से कोमल हैं। चित्रकारों द्वारा इन राग-रागनियों का चित्रण मानव रूप में प्राकृतिक सुंदरता के साथ समन्वय करके किया गया है। अलवर के

कलाकारों ने रागमाला के चित्रों में प्रतीकों का निर्धारण करते समय भिन्न-भिन्न रागों के लिए पशु-पक्षियों का भी चित्रण किया है तथा उन्हीं के अनुकूल वातावरण के दृश्य भी चित्रित किये हैं। राग-रागिनियों से संबंधित अनेक चित्र अलवर संग्रहालय में संग्रहित हैं जो यहाँ की शोभा बढ़ा रहे हैं।

वाद्य यंत्र : अलवर संग्रहालय में बहुत से वाद्य यंत्र रखे हुए हैं। जैसे तबला, दिलरुबा, सारंगी, पखावज, ढप, वीणा, पत्थर की बनी सितार आदि। ये वाद्य-यंत्र रावराजा जयसिंह के काल के हैं। ढोलक वादक जान मोहम्मद ने जयसिंह के सुझाव पर ढ़ोलक व तबले पर चमड़े की जगह कपड़े का उपयोग किया, इन कपड़े की पुड़ी वाले वाद्य यंत्रों से भी चमड़े वाले वाद्य यंत्र की तरह ही स्वर निकलते थे। इस नवीन प्रयोग का कारण यह था कि मंदिर में चमड़ा युक्त वाद्य यंत्रों का प्रयोग महाराजा को नागवार था, इसलिए उन्होंने जान मुहम्मद को यह प्रयोग करने का आदेश दिया, जिसमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई।[17] महाराजा के समय में प्रयुक्त होने वाले ये नायाब वाद्ययंत्र (तबला, ढ़ोलक) आज भी राजकीय संग्रहालय की शोभा बढ़ा रहे हैं।

ढाल : अलवर के शासकों द्वारा विभिन्न प्रकार की ढालों का प्रयोग होता था, वर्तमान में ये अलवर संग्रहालय में संग्रहित हैं। ये सामान्य ढाल नहीं हैं, इन पर स्वर्ण व चांदी के तारों से बहुत सुंदर नक्काशी की गई है, जिसे कोफ्तगीरी कहते हैं। यहाँ प्रदर्शित एक ढाल मगरमच्छ की खाल से बनी है। ढाल के ऊपरी भाग पर त्वचा का कुछ भाग उभरा हुआ दिखाई देता है।[18] ये ढाल वजन में धातु की ढाल से हल्की होती थी इसलिए उपयोग करने में आसानी होती थी। इसी प्रकार एक ढाल गैंडे की खाल से बनी है।[19] तथा धातु की बनी ढाल भी बहुत ही सुसज्जित हैं, ढाल सिपार-ए-शिकारगाह लोहे से बनी हुई है, जिस पर पशु-पक्षियों का चित्रण हुआ है।

जिरह-बख्तर : धातुओं की छोटी-छोटी गोलाकार कड़ियों को एकदूसरे में फंसाकर जो परिधान (कमीज) बनाया जाता था, वह जिरह-बख्तर कहलाता है। यद्यपि इसे बनाने में समय, श्रम तथा धन की बहुत आवश्यकता होती थी, तथापि पर्याप्त लचीलेपन के साथ योद्धा के शरीर के प्रत्येक हिस्से को प्रहार से बचाने में सक्षम होने के कारण यह बेहद लोकप्रिय था। घुड़सवार व पैदल सैनिक के लिए जिरह-बख्तर भी अलग-अलग तरह के होते थे। आवश्यकतानुसार यह आधी अथवा पूरी आस्तीन का बनाया जाता था। अलवर संग्रहालय में दो जिरह-बख्तर उल्लेखनीय हैं, प्रथम सवाई प्रताप सिंह के समय का, जिसकी हर कड़ी पर 'नसुरमलिल्लह फतहुन करीब अज अहद' लिखा हुआ है, इसका अर्थ है-- 'अल्लाह की मदद से फतेह करीब है।' यद्यपि पुस्तकों में यह लिखा है कि यह जिरह-बख्तर मुहम्मद गौरी का है,[20] परंतु संग्रहालय प्रदर्शनी में इसे प्रताप सिंह के समय का बताया गया है।[21] इस पर लिखे लेख से यह जरूर प्रतीत होता है कि यह किसी मुस्लिम शासक का रहा होगा, संभवतः मुहम्मद गौरी का हो जो प्रताप सिंह के समय अलवर राज्य में लाया गया होगा। इसी तरह मराठा सरदार यशवंत राव होल्कर का जिरह-बख्तर है जो बख्तावर सिंह से उसके हारने के पश्चात यह अलवर के राजकीय शिलहखाना में रखा गया, जो कि वर्तमान में संग्रहालय की शोभा बढ़ा रहा है।

माही-मरातिब : माही-मरातिब एक सोने का पानी चढ़ा हुआ तांबे का मछली मानक था जिसका उपयोग मुगल साम्राज्य में सर्वोच्च सम्मान के प्रतीक के रूप में किया जाता था। इसकी स्थापना शाहजहाँ द्वारा लगभग 1632 में की गई थी और यह केवल मुगल सम्राट के सबसे महत्वपूर्ण और वफादार जागीरदारों को प्रदान किया जाता था। यह बहुत बड़ा सम्मान था और इसे प्राप्त करने वालों को मुगल साम्राज्य में शक्तिशाली और सम्मानित व्यक्तियों में से एक माना जाता था। मुगल बादशाह शाह आलम ने

1774 ईस्वी में अलवर के संस्थापक रावराजा प्रताप सिंह को इसे प्रदान किया।[22] वर्तमान में यह राजकीय संग्रहालय अलवर में अस्त्र-शस्त्र के कक्ष में प्रदर्शित किया गया है। इसका मुख मछली के समान है तथा यह एक लकड़ी के आधार पर टिका हुआ है।

विभिन्न मॉडल : यहाँ एक दक्षिण भारतीय शैली के मंदिर का प्रतिरूप है, इसकी विशेषता यह है कि इसे गेहूं के तने को पीसकर बनाया गया है।[23] यह मंदिर वास्तुकला का नायाब नमूना है। दूसरा प्रतिरूप इन्द्रविमान का है, जिसे 4 हाथियों द्वारा खींचा जा रहा है। यह अलवर शासकों द्वारा दशहरे के अवसर पर बाजार में जुलूस के दौरान सवारी के रूप में प्रयोग लिया जाता था।[24] दशहरे का एक छायाचित्र अलवर संग्रहालय में लगा हुआ भी है, जिसमें जुलाई, 1877 के मेले में सामान्यजन के बीच इन्द्रविमान में राजा नजर आ रहा है।[25] इसका अलंकरण देखते ही बनता है, देखने वाला मंत्रमुग्ध हो जाता है, यदि प्रतिरूप इतना भव्य है तो वास्तविक में यह कितना विशाल व अलंकृत रहा होगा, दर्शक यह सोचने पर मजबूर हो जाते हैं।

राजकीय चिह्न : संग्रहालय में अलवर का राजकीय चिह्न एक कपड़े पर बना हुआ रखा है, इस चिह्न के बीच में एक ढाल है, जिसमें बीच में एक कटार बनी हुई है तथा किनारों पर अलंकरण किया गया है। इसमें ऊपर की तरफ अलवर का शाही मुकुट बना हुआ है तथा दो पचरंगे ध्वज बने हुए हैं एवं बांये भाग पर एक बारहसिंगा और दांयें भाग पर एक बाघ है। इस पर अलवर राज्य का आदर्श वाक्य भी लिखा है-- 'आत्मानम सततम विधि' जिसका अर्थ है, हमेशा अपने आप को जानें। उल्लेखनीय है कि सर्वप्रथम शिवदान सिंह जी को राज्य-चिह्न प्रदान किया गया था तथा महाराजा मंगल सिंह ने तत्कालीन भारत सरकार से राजचिह्न में कुछ बदलाव करने के लिए अनुरोध किया था तब 1877 ईस्वी में रानी विक्टोरिया ने महाराजा मंगलसिंह बहादुर को अलवर का नया राजकीय चिह्न भेंट किया जो वर्तमान में यह अलवर में शोभायमान है।[26]

चांदी की टेबल : संग्रहालय में आकर्षण का एक केंद्र लकड़ी की बनी तथा चांदी के आवरण से युक्त टेबल है। इस टेबल के निचले भाग में एक ऐसा यंत्र है, जिसकी प्रक्रिया से मेज के ऊपरी भाग में बनी हुई नालियों में मछलियों के जल में तैरने का आभास होता है। यह अलवर के स्थानीय निवासी नंदकिशोर ने बनाई थी। इसके पायों पर चाँदी से बहुत सुंदर नक्काशाी की गई है, जिसे देख कर दर्शक मंत्रमुग्ध हो जाते हैं।[27]

साइकिल : यह साइकिल एक सामान्य साइकिल नहीं है, अपितु रावराजा जयसिंह ने इसे इंग्लैंड से मँगवाया था, तथा इसमें गियर व ब्रेक की तकनीक काम करती थी।[28] प्राचीन समय में भी अलवर महाराजा तकनीक से परिचित थे।

पशु-पक्षी : अलवर के संग्रहालय के एक अनुभाग में पशु-पक्षी रखे हुए हैं, जिनमें एक भालू जिसका नाम मोती (इसके शराब पीने की कहानी बहुत प्रसिद्ध है) था, एक बाघ तथा एक तेंदुआ भी है, साथ ही बहुत सारे स्कॉटिश पक्षियों के जोड़े भी रखे हुए हैं।[29] ये सभी इसलिए महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये सभी मृत पशु-पक्षी है जिनके अंदर कुछ भरा गया है तथा इनके बाहरी आवरण पर एक प्रकार के रसायन से लेप किया गया है, जिसकी वजह से ये अभी तक भी मूल अवस्था में लगते हैं तथा तनिक भी खराब नहीं हुए हैं।

सिंहासन : अलवर संग्रहालय में नरुका शासकों का सिंहासन रखा हुआ है, यह सिंहासन इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके ऊपर लगी हुई छतरी चीन की है, जो की 1900 ईस्वी में अलवर के सिपाहियों द्वारा चीन के विरुद्ध जीत के उपलक्ष्य में अंग्रेजों द्वारा प्रदान की गई थी।

अलवर संग्रहालय की कलाकृतियाँ अपने वैभवपूर्ण अतीत को सँजोए हैं तथा ये अलवर की

स्थानीय संस्कृति तथा तत्कालीन समाज में प्रचलित कलाओं के बारे में भी लोगों को शिक्षित कर रहा है। कोफ्तगीरी का कार्य वर्तमान में लुप्तप्राय है, परंतु अलवर संग्रहालय ने कोफ्तगीरी की कलाकृतियों को सँजोए रखा है, साथ ही यहाँ प्राप्त सचित्र हस्तलिखित पांडुलिपियाँ तत्कालीन समय की चित्रकला का नायाब उदाहरण पेश करती हैं। अलवर संग्रहालय में संरक्षित असाधारण कलाकृतियाँ अलवर के सांस्कृतिक इतिहास को दर्शाती हैं। ये सभी कलाकृतियाँ तत्कालीन समय में प्रचलित तकनीकों, विभिन्न कलाकारों को दिये जाने वाले प्रोत्साहन को दिखाती हैं।[30] अस्त्र-शस्त्र भी संग्रहालय में हैं और ये तत्कालीन समय की युद्ध तकनीकी को जानने समझाने का महत्वपूर्ण स्रोत हैं। ये अधिकांश स्थानीय लोगों द्वारा बनाए गए हैं, इनमें भी सबसे महत्वपूर्ण बात ये है कि इन अस्त्र-शस्त्रों में भी कोफ्तगीरी व हाथीदांत का बहुत ही सुंदर कार्य किया गया है, जो तत्कालीन समय के शासकों की युद्धप्रियता के साथ कलाप्रियता को भी दर्शाता है। वर्तमान में ज्ञात संदर्भों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अलवर के सभी शासकों ने शिलहखाना की गुणवत्ता पर ध्यान दिया, साथ ही अन्य कलाओं जैसे-- चित्रकला, हस्तकला, वास्तुशिल्प व अन्य कलाओं को भी प्रोत्साहित किया।

संदर्भ

1. प्रसाद राजेन्द्र, 2012, संग्रहालय का शिक्षा में योगदान, प्रकाशित-- आर्कियोलोजी, म्यूजियोलोजी एंड कंजर्वेशन : ए रिव्यू, पृ. 179, जयपुर। **2.** वही, पृ. 180। **3.** अग्रवाल, उषा 1985, म्यूजियम इन इंडिया-- ए ब्रीफ डायरेक्ट्री, दिल्ली। **4.** अग्रवाल, ओ. पी. 1973, डाक्यूमेन्टेशन इन म्यूजियम, म्यूजियम ऐसोसिएशन ऑफ इंडिया, दिल्ली। **5.** जंगिड़, राजकुमार, 2012, समाज के परिदृश्य में संग्रहालय की भूमिका, आर्कियोलोजी, म्यूजियोलोजी एंड कजर्वेशनः ए रिव्यू, पृ.147 जयपुर। **6.** इंडियन म्यूजियम रिव्यू 1957-58, मिनिस्ट्री ऑफ साइंटिफिक रिसर्च एड कल्चरल अफेयर्स, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, पृ. 30। **7.** साक्षात्कार - वीरेंद्र यादव, वरिष्ठ सहायक, राजकीय संग्रहालय अलवर, 31-08-2023। **8.** गहलोत, जगदीश सिंह राजपूताने का इतिहास, भाग तीन पृ. 241। **9.** मत्स्य दर्पण, स्मारिका, जिला प्रशासन अलवर एवं पर्यटन विभाग राजस्थान, लेख-- बी. एल. मौर्य (संग्रहालय) अध्यक्ष, अलवर। **10.** गहलोत, जगदीश सिंह. राजपूताने का इतिहास, भाग तीन, पृ. 245। **11.** गहलोत, जगदीश सिंह. राजपूताने का इतिहास, भाग तीन, पृ. 239। **12.** बंधांक 9, ग्रंथांक 1, पृ. 7, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर। **13.** चक्रवर्ती, पी. लाल, कैटलॉग एण्ड गाइड टू गवर्नमेंट म्यूजियम, अलवर 97। **14.** वही, पृ. 97। **15.** वही, पृ. 97। **16.** वही, पृ. 100। **17.** चौधरी, प्रताप सिंह, राजस्थान संगीत और संगीतकार, राजस्थानी ग्रंथगार, जोधपुर : 97। **18.** एक्सेसन नं. (बी-18/नं.1), राजकीय संग्रहालय अलवर। **19.** एक्सेसन न. (बी-18/नं.2), राजकीय संग्रहालय अलवर। **20.** विनय पत्रिका, अलवर अंक 1969, पृ. 134। नरुका, पृथ्वीसिंह (2022), अलवर का इतिहास, शिप्रा कम्प्यूटर्स, अलवर, पृ. 313। **21.** स्व- अवलोकन द्वारा, दिनांक 31-09-2023। **22.** चक्रवर्ती, पी. लाल. कैटलॉग एण्ड गाइड टू गवर्नमेंट म्यूजियम अलवर पृ. 40। **23.** वही पृ. 39। **24.** वही पृ. 39। **25.** स्व- अवलोकन द्वारा, दिनांक 31-09-2023। **26.** चक्रवर्ती, पी. लाल. कैटलॉग एण्ड गाइड टू गवर्नमेंट म्यूजियम, अलवर पृ. 43। **27.** वही. पृ. 47। **28.** वही. पृ. 43। **29.** वही, पृ. 41, 42। **30.** विनय पत्रिका, अलवर अंक 1969।

शोधार्थी (निर्देशन-डॉ. शिल्पी गुप्ता)
इतिहास व संस्कृति विभाग
वनस्थली विद्यापीठ- 304022
मो. : 7340186302
ई-मेल : astha2022bu@gmail.com

●

केशव कृत रसिकप्रिया के सन्दर्भ में कांगड़ा चित्र-शैली में नायिका भेद

मंजू गौतम

भारतीय चित्रकला की मध्ययुगीन चित्रशैलियों में पहाड़ी चित्रकला के अन्तर्गत विकसित कांगड़ा चित्रशैली का महत्वपूर्ण स्थान है। जम्मू से टिहरी गढ़वाल और पठानकोट से कुल्लू तक फैला हुआ समस्त पहाड़ी प्रदेश कांगड़ा चित्रशैली का जन्मदाता है। महाराजा संसार चन्द्र (1775-1823 ई.) के शासनकाल में कांगड़ा शैली की सर्वोच्च उन्नति हुई। कांगड़ा चित्रकला के कलाकारों ने अपने विषय के रूप में मध्यकालीन रीतिकाव्यों **केशवदास रचित 'रसिक प्रिया', 'कविप्रिया', 'बारहमासा', बिहारीकृत 'बिहारी सतसई', जयदेव कृत 'गीतगोविन्द'** में वर्णित नायिका-भेद को मुख्य रूप से चित्रित किया। नायिका-भेद का उत्स शृंगार को माना गया। कवियों ने शृंगार में आलम्बन के रूप नायिका-भेद का वर्णन किया है। केशव ने नव रसों का "नायक" शृंगार रस को माना जिसे उन्होंने अपनी काव्यकृति रसिक प्रिया में बताया है जो इस प्रकार है---

'नवहू रस को भाव बहु तिनके भिन्न विचार।
सबको केशवदास हरि नायक है शृंगार"।।

रसिकप्रिया में केशव ने शृंगार के दो भेद-संयोग और वियोग किये हैं। इसमें राधा-कृष्ण को नायक-नायिका मानकर शृंगार के आलम्बन के रूप में कवियों ने अंकित किया। सर्वप्रथम संस्कृत साहित्य में नायक-नायिका का स्वरूप, कामशास्त्र (नाट्य शास्त्र व काव्य शास्त्र में उल्लिखित मिलता है इसमें वात्स्यायन का कामसूत्र, कक्कोक का रतिरहस्य, भरत का नाट्यशास्त्र, धनंजय का दशरूपक, रुद्रट का काव्यालंकार भानुदत्त की रसमंजरी आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी में सबसे अधिक नायिका भेद विषय पर आधारित ग्रन्थ रीतिकाल में रचित हुये जिन पर कलाकारों ने चित्र-शृंखलाओं का निर्माण किया। केशवदास कृत रसिक प्रिया व कविप्रिया पर आधारित ढ़ेरों चित्र कांगड़ा के कलाकारों ने बनाये। रीतिकाल के महाकवि केशवदास (1555-1617 ई.) ओरछा के राजा रामसिंह के दरबार के कविरत्न रहे। इन्होंने हिन्दी व संस्कृत में कई काव्य ग्रन्थ लिखे जिनमें से **रसिक प्रिया (1591), कविप्रिया (1601)** शृंगारिक काव्यों को अतुलनीय रचना माना गया। केशवदास ने शृंगार निरूपण के लिये नायिका-भेद की रचना की। शृंगार के पक्षों संयोग व वियोग में नायक-नायिकाओं की विविध

मनः स्थितियों का शाब्दिक चित्रण केशव ने बखूबी किया। संयोग व वियोग के अतिरिक्त भी दो अन्य भेद प्रच्छन्न व प्रकाश किये जिनको रसिक प्रिया में इस प्रकार उल्लेखित किया---

सुभ संयोग वियोग पुनि है सिंगार की जाति।
पुनि प्रच्छन्न प्रकास करि दोऊ द्वै वै भाँति।।

'**प्रच्छन्न**' संयोग अथवा वियोग वह होता है जिसके विषय में केवल नायक-नायिका ही जानते हैं तथा '**प्रकाश**' संयोग व वियोग के सम्बन्ध में सभी व्यक्ति जानते हैं। केशवदास ने रसिक प्रिया व कविप्रिया में स्त्री से सम्बन्धित 16 शृंगार में 16 अंलकरणों व प्रसाधनों का जो वर्णन किया, कांगड़ा के चित्रकारों ने उन्हें ध्यान में रखकर नायिकाओं के सौन्दर्यपूर्ण चित्र चित्रित किये। केशव ने जाति सामाजिक बन्धन या कर्म, अवस्था तथा गुण के आधार पर नायिकाओं के भेद किये जिनकी संख्या इन्होंने 360 तक बतायी है। इस विभाजन का आधार नारी की शारीरिक प्राकृतिक विशेषताएं हैं जिनमें कुछ जन्मजात और कुछ अर्जित की हुई हैं।

केशवदास कृत रसिक प्रिया का अष्ट नायिका - भेद इस प्रकार है--

1. **स्वाधीनपतिका नायिका :-** "स्वाधीन-पतिका" नायिका वह कहलाती है जिसका पति (नायक) उसके गुणों से मुग्ध होकर सदा उसके साथ रहे।

"केशव जाके गुण बंध्यो, सदा रहै पति संग।
स्वाधिनपतिका तासु को वरणत प्रेम-प्रसंग"।। (र.प्रि.पृ. 6- 9.4)।

2. **खंडिता नायिका :--** "खण्डिता" नायिका वह होती है जिसका प्रिय (रात में) आने को कहकर न आये और प्रातः घर आकर अनेक प्रकार की बातें बनाये।

"आवन कहि आवै नहीं आवै प्रीतम प्रातः।
ताके घर सो खण्डिता, कहै सु बहुविध बात"।। (र.प्रि.पृ. 7 - 9.16)।

3. **विप्रलब्धा नायिका** :- "विप्रलब्धा नायिका" वह है जिसका प्रिय दूती को संकेत पर स्थान नायिका को लाने के लिये भेजे, परन्तु आप न आये और नायिका उसके नहीं आने पर दुखी हो।

"दूती सो संकेत वादि लैन पठाई आप।
लब्धप्रिय सौ जानिये, अन आये संताप"।। (र.प्रि.पृ. 7- 9.22)।

4. **पोषितपतिका नायिका :-** "पोषितपतिका" नायिका वह है जिसका प्रिय लौटने की नियत अवधि देकर किसी कारणवश बाहर चला जाये और दुर्भाग्यवश पति के न आने पर वह चिन्तारत हो।

"जाकौ प्रीतम दै अवधि, गयों कौन हूँ काज।
ता को प्रोषितप्रेयसी, काहि वर्णत कविराज"।। (र.प्रि.पृ. 7- 6.19)।

5. **वासकसज्जा नायिका :-** "वासकसज्जा" वह नायिका है जो समूचे शृंगार किये प्रिय के आगमन की आशा में गृहद्वार की ओर देखती रहती है।

"वासकसज्जा होइ सो, कहि केशव सविलास।
चितै रहै गृह द्वार त्यों, प्रिय आवन की आस"।। (र.प्रि.पृ. 7- 9.10)।

6. **अभिसारिका नायिकाः-** "अभिसारिका" नायिका वह है जो काम के वशीभूत हो प्रिय से स्वयं जाकर मिलती है।

"हित तै कै मदमदन तै, प्रिय सों मिले जु जाइ।
सो कहिये अभिसारिका, वरणी त्रिविध बनाइ"।। (र.प्रि.पृ. 7- 9.25)।

7. **अभिसंधिता नायिकाः-** "अभिसंधिता नायिका" वह है जो मान कर मनाने वाले प्रिय का अपमान करती है, पर बाद में दुगनी दुखी होती है तथा रूठकर जाते प्रिय की मनुहार करती है।

"मान मनावत हूँ करै, मानद को अपमान।
दूनो दुःख ता बिन लहै, अभिसंधिता बखान"।। (र.प्रि.पृ. 7- 6.13)।

8. **उत्कंठिता नायिकाः-** "उत्कंठिता" (उत्तका) नायिका वह है जिसका प्रियतम किसी कारणवश घर

नहीं आ पाता और वह प्रियतम की सोच में विचार मग्न उसके आने को लेकर उत्कंठित है।

"कौन हूँ हेतु न आइयो, प्रीतम जाके धाम।
ताको शोचति शोच हिय, केशव उत्का बाम"।।

इसके अतिरिक्त भी रसिकप्रिया में अन्य भेद मिलते हैं जो इस प्रकार है-- कर्मानुसार दो भेद

1. स्वकीया, 2. परकीया।

आयु तथा अनुभव के आधार पर स्वकीया नायिका का भेद--

1. मुग्धा नायिका,
2. मध्या नायिका,
3. प्रौढ़ा नायिका।

इसके अलावा मानिनी नायिका आदि का विवरण मिलता है। इन नायिकाओं का चित्रण भी हमें एम.एस. रंधावा की पुस्तक 'कांगड़ा पेटिंग ऑन लव' में मिलता है।

नारी सौंदर्य का चित्रण संसार भर के चित्रकारों, कवियों, मूर्तिकारों का प्रिय विषय रहा। नारी अपने सौन्दर्य व आकर्षण के रूप में शिल्प में शालभंजिकाओं के रूप में तथा काव्य व कला में नायिकाओं के रूप में चित्रित की गई। नायिका-भेद नारी के विभिन्न भाव, लावण्य तथा आवेगों का प्रतिरूप ही है।

कांगड़ा कलाकारों ने 'गीत-गोविन्द' के अतिरिक्त बिहारी की 'सतसई' तथा केशवदास की 'रसिक प्रिया' को अपने चित्रण में सबसे अधिक महत्व दिया और इन सभी ने नायिकाओं के चित्रों को बहुत ज्यादा अंकित किया। केशव की रसिक प्रिया पर आधारित अनेक चित्र कांगड़ा कला में मिलते हैं जिनमें से कुछ चित्रों का विवरण निम्नलिखित है--

1. उत्कंठिता नायिका

यह चित्र 1775-1780 ई. के मध्य का है जो कि वर्तमान समय में ब्रिटिश म्यूजियम लंदन में संग्रहित है। इसे उत्तका नायिका और उत्कंठिता नायिका भी कहीं-कहीं कहा गया। केशव ने इसमें राधा को नायिका के रूप में अंकित किया और कृष्ण का इंतजार करते हुये दिखाया। केशवदास ने इसे इस प्रकार अभिव्यक्त किया है।

किधौ गृह काज कै न छूटत सखा समाज
किधौ कहू आज व्रत-बासर विभात है, दीनों तै न सोध
किधौ काहू सा भयो विरोध, उपज्यो प्रबोध
किधौ उर अवदात है, सुख में न देह
किधौ मोही ने कपट नेह
किधौ मेरी प्रीति भी प्रतिति लेत के सोदास
अजहू न आये मन सुधौ भौनी बात।

विरह के कारण राधा अमावस्या की रात्रि की चन्द्ररेखा के समान हो गई। वह सोच रही है कि घनश्याम को घर पर कौन सा काम आ गया जिसकी वजह से वे न आ सके। आज व्रत के दिन का आरम्भ होते ही किसी से कहीं विवाद तो नहीं हो गया अथवा वैराग्य तो नहीं ले लिया या फिर देर से लौटने की वजह से अस्वस्थ तो नहीं हो गये हैं या मुझसे दिखावे का स्नेह करते हैं, क्या कारण है जो घनश्याम अब तक नहीं आये।

कवि ने राधा का उत्तका नायिका के रूप में जो शब्द चित्र अंकित किया वह कांगड़ा के इस चित्र से काफी समानता रखता है। चित्र में नायिका रात के समय दूर वन में पत्तों की शय्या बनाकर उस पर बैठी अपने प्रिय का इतंजार करते हुये दिखायी गयी है। प्रकृति में इतनी सुन्दरता है फिर भी नायिका के चेहरे पर संशय के भाव आ-जा रहे हैं। वह चिंतित सी नजर आ रही। नायिका के बगल में हिरन अपनी चंचलता दिखा रहा है, फूलों से पेड़ लदे हुये हैं, चांदनी रात के साथ प्रकृति का पूर्ण सौंदर्य छाया है पर नायिका नायक के न आने के कारण व्यथित है। कलाकार ने उसे एक हाथ की उंगली को गाल पर रखे हुये गहन सोच में चित्रित किया है। सम्पूर्ण चित्र कवि की कल्पना को सार्थक कर रहा है।

2. अभिसारिका नायिका :

यह चित्र 1830 ई. के मध्य का है। वर्तमान समय में यह श्रीमति सुमति मुखर्जी संग्रह मुम्बई में संग्रहित है। केशवदास ने अभिसारिका नायिका को इस प्रकार वर्णित किया है--

हित तै कै मदमदन तै, प्रिय सो मिले जु जाइ।
सो कहिये अभिसारिका वरणी विविध बनाइ।।

केशव की अभिसारिका नायिका प्रिय से मिलने के लिये न समय का न लोगों की किसी की परवाह करती बस प्रिय के प्रेम में बंधी उससे रात के समय भी चली जाती है। अभिसारिका नायिका के इस चित्र में कवि के कहे शब्दों को कलाकार ने अपने रंग व कल्पना से आकर्षक रूप में चित्रित किया है। रात के अंधकार की भयावहता चित्रित करने के लिये बिजली का चमकना, टिमाटिमाते तारों का प्रकाश चित्रित किया गया है। रास्ते में जहरीले सांप को नायिका का रास्ते रोके दिखाया गया पर नायिका अपने प्रिय से मिलने की जल्दी में उसे देखती ही नहीं। सम्पूर्ण शृंगार कर नीले रंग की चुनरी ओढ़ कर जा रही है जिससे उसे रात के अंधेरे में कोई देख न सके। उसे न तो ऊबड़ खाबड़ रास्तों की परवाह है न जहरीले सांपों का और न ही घनघोर रात व वर्षा का, वह प्रेम में दीवानी तेज गति से बढ़ रही है। गति को दिखाने के लिये कलाकार ने उसके कपड़ों को लयात्मक रेखाओं के द्वारा हवा के झोंके से उड़ते हुये बनाया है जिससे गति का अनुभव हो रहा है। चेहरे पर चमक दिखाई है जो अंधेरे में भी अलग से नजर आ रही है जो कि उसके प्रेमाभिमान को दर्शा रही है।

केशव ने अभिसारिका नायिका के कई भेद किये, जिन पर चित्रण कार्य भी हुआ है जो इस प्रकार हैं-

कृष्णाभिसारिका, शुक्लाभिसारिका, गर्वाभि-सारिका, प्रेमाभिसारिका, कामाभिसारिका, परकीया अभिसारिका, सामान्याभिसारिका

3. विप्रलब्धा नायिका :

यह चित्र 1700-1800 ई. के मध्य का है। अभी यह प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम मुम्बई में संग्रहित है। केशव ने विप्रलब्धा नायिका के लक्षण इस प्रकार बताये हैं--

''दूती सो संकेत वादि लैन पठाई आप।
लब्धप्रिय सौ जानिये अन आये संताप।।"

अर्थात जिसका प्रिय दूती के द्वारा संकेत-स्थान बताकर भी नायिका के पहुँचने पर स्वयं वहां नहीं पहुंचता तो नायिका दुखी हो जाती है।

कवित्त : इस चित्र के कलाकार पर इसका प्रभाव नजर आता है। उसने नायिका को जंगल में पेड़ के नीचे अकेले खड़े चित्रित किया है तथा वातावरण को सुरम्य बनाने के लिये पेड़ों को फूल पत्तियों से भरा बनाया है, जमीन पर पत्तों को चित्रित किया है जिससे आभास होता है कि नायिका बहुत समय से प्रिय का इंतजार कर रही थी पर जब उसका प्रिय नहीं आया तो दुःखित होकर क्रोध में वह अपने आभूषणों को उतार कर फेंक रही है। चेहरे पर क्रोध को कलाकार ने बड़ी शालीनता से चित्रित किया है, उसकी भौहों को ऊँचा बनाया जिससे उसका क्रोधित होना स्पष्ट होता है। कुछ आभूषणों को उतारते हुये तथा कुछ जमीन पर फैले हैं। इतना शृंगारिक वातावरण होने पर भी, नायिका के हृदय में विरहाग्नि के कारण उसे सब कुछ व्यर्थ प्रतीत हो रहा है।

4. प्रौढ़ा नायिका :

यह चित्र 1825 ई. के मध्य का है। वर्तमान में यह राजा ध्रुवदेव चन्द्र संग्रह में संग्रहित है। केशव के अनुसार यह नायिका बड़ी अनुभवी है जो अपने पति के साथ मन, कर्म, वचन के साथ सुखमय जीवन व्यतीत करती है। इसे कवित्त में इस प्रकार वर्णित किया है--

लपटानी अति प्रेम सौं दै उर उरज उतंग।
घरी एक लो छूटेहू पर, रही लगी सी ढंग।।

इस चित्र पर एकदम सटीक ये पंक्तियां बैठती हैं। इस चित्र में रात्रि का चित्रण किया गया जिसमें ढेर सारे तारों के मध्य चांद को पूरा न दिखाकर कर

अमावस से पूर्व का आधा चित्रित किया है जो रात का परिचायक है। घर का दृश्य है जिसमें नायिका नायक के साथ सुखपूर्वक सो रही है। सोते समय नायिका के चेहरे पर सन्तुष्टि व खुशी के भाव का चित्रण कलाकार ने बारीकी से किया है।

5. स्वाधीनपतिका नायिका :

यह चित्र 1825 ई. के मध्य बना है। यह चित्र एम.एस. रंधावा की किताब **"कांगड़ा पेंटिंग आन लव"** में है। स्वाधीन पतिका नायिका के लिये केशव लिखते हैं--

केशव जाके गुण बंध्यो सदा रहै पति संग।
स्वाधीनपति का तासु को वरणत प्रेम प्रसंग ।।

राधा अपने विशाल नेत्रों, विशाल भाल, गौरवर्ण, नीलवसन की फरिया, पीठ पर झूलती वेणी से कृष्ण के हृदय पर ऐसा प्रभाव डालती है कि कृष्ण देखते ही रीझ जाते हैं। राधा नायिका जो उनसे कह रही है वे वह काम मंत्रमुग्ध से करते जा रहे हैं। महाकवि केशव ने इसमें प्रेमपूर्ण कवित्त को नयी अभिव्यक्ति दी है।

इसे कांगड़ा शैली के कलाकार ने भावपूर्ण चित्रित किया है। इस चित्र में राधा स्वयं ऊंचे आसन पर बैठी है और श्रीकृष्ण नीचे बैठकर राधा के पैरों में महावर लगाते हुये चित्रित किये गये हैं। श्रीकृष्ण तल्लीनता के साथ राधा के पैरों पर महावर लगा रहे हैं उनका ध्यान यहीं पर केन्द्रित है। राधा मंत्रमुग्ध उन्हें देखे जा रही है। पीछे खड़ी स्त्री के चेहरे पर उलाहने के भाव दर्शाये गये हैं। खिड़की के बाहर प्रकृति का चित्रण किया गया है जिसमें हरा-भरा वातावरण व फूलों का अंकन चित्रकार ने किया है जो नायक-नायिका के पूर्ण प्रेम को दर्शा रहा है। ऐसा अभास होता है कि चित्रकार ने बड़ी ही सूक्ष्मता व गहन अध्ययन कर इस चित्र का चित्रण किया है।

रसिक प्रिया पर आधारित अधिकतर चित्र कृष्ण-लीला से सम्बन्धित हैं। प्रिय से मिलने जाती नायिका का सुन्दर चित्रण व विविध परिस्थितियों में कृष्ण-राधा का नायक-नायिका रूप चित्रण ने कांगड़ा कला को ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बना दिया है। ये चित्र काव्य व कला के समन्वय को दर्शाते हैं। केशव के इस काव्य आधारित समस्त लघुचित्र इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं जो आज पूरे विश्वभर के संग्रहालयों में संग्रहित हैं। केशव द्वारा वर्णित प्राकृतिक सुषमा का सुरम्य वर्णन, वातावरण में आलौकिता, मनोभावों की विविधता, नारी की कमनीयता और उसका लावण्य युक्त वर्णन इनके काव्य की प्रमुख विशेषता रही।

केशव और अन्य कवियों द्वारा खींचे गये शब्द-चित्रों में उदात्त तथा इंद्रियात्मक सौंदर्य जैसी विशेषताओं के साथ नारी सौंदर्य का अधिकाधिक वर्णन हुआ जिसे कलाकार ने दर्शाने हेतु भावों के साथ आकर्षण, आभूषणों, वस्त्रों, काजल, सिन्दूर, कुमकुम, महावर का प्रयोग बेहद सलीके से अपनी तूलिका व रंगों के माध्यम से किया। वांग्मय में नारी सौंदर्य के लिये जितने भी उपमान बताये गये जैसे चन्द्र जैसा चेहरा, कमान जैसी भौहें, खंजन जैसे नेत्र, शुकनासा, कम्बुग्रीवा, कमलनाल समान सुकोमल भुजायें आदि इनका प्रयोग कलाकार ने नायिकाओं के चित्रों को चित्रित करते समय किया। डॉ. रमानाथ ने अपनी पुस्तक में इसका समर्थन करते हुये लिखा-- यह विलक्षण बात है कि कलाकारों ने काव्य की अदृश्य कला के सिद्धांतों को चित्रकला द्वारा मूर्तिमान कर प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। कांगड़ा की चित्रकला में चित्रित इन नारी आकृतियों का सौंदर्य दैहिक ही नहीं वरन् आत्मिक भी है। क्योंकि इन नायक-नायिकाओं के माध्यम से कलाकार ने राधा-कृष्ण के अलौकिक प्रेम को दर्शाया है। चित्रकारों ने नारी मनोभावों का सूक्ष्म विश्लेषण किया तभी तो ये चित्र इतनी सजीवता लिये हुये हैं इसके साथ ही कलाकारों ने कांगड़ा घाटी के सम्पूर्ण सौंदर्य को अपने चित्रों में समेट लिया।

आदर्श बनर्जी का कथन है, "कला अपने वातावरण की उपज होती है जलवायु, पशु-पक्षी,

धरती, धर्म, दर्शन, पदार्थ, साहित्य, राजनीतिक, आर्थिक परिस्थितियाँ सभी लोगों के कलात्मक आवेगों का पहरावा बनने में योगदान देते हैं।"

यहां के चित्रों में इन सभी तत्वों ने भरपूर योगदान दिया। प्रेम और शृंगार संयोग व वियोग की परिस्थितियों में उभरते उतरते नारी सौंदर्य का अंकन इस चित्र शैली का मुख्य बिन्दु है। उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि कांगड़ा चित्रकला में जो नायिका का चित्रण हुआ वह इस शैली की उपलब्धि बनी। चाहे रेखाओं का प्रवाह हो अथवा रंगों का संयोजन, लायात्मकता अथवा संतुलन, आकृति अंकन हो या वास्तु और प्रकृति का चित्रण इन सभी में कांगड़ा चित्रकला की अपनी देन है, उसकी अपनी विशिष्टता है।

सहायक स्रोत :

1. रीति कवियों की मौलिक देन, डॉ. किशोरी लाल (1971) साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद। **2.** कामसूत्रम्, (जयमला टीका सहित), श्री देवदत्त शास्त्री वि. सं. 2064 चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी। **3.** गीतगोविन्द पहाडी लघु चित्रों में, डॉ. प्रेमांकर द्विवेदी 1988 कला प्रकाशन, वाराणसी। **4.** केशवदास : जीवनी कला और कृतित्व, किरण चन्द्र शर्मा, भारतीय साहित्य मंदिर लाल-बाग लखनऊ। **5.** बिहारी अनुशीलन सरोज गुप्ता 2001 ईशा ज्ञानदीप रोहणी दिल्ली। **6.** बिहारी सतसई (आलोचना एवं व्याख्या) डॉ. नेमीचन्द्र जैन 1968 रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर। **7.** पहाड़ी चित्रकला का अनुशीलन, डॉ. सरोज रानी 2012 कला प्रकाशन, वाराणसी। **8.** पहाड़ी चित्रकला, किशोरी लाल वैद्य, 1969, नेशनल पब्लिशिंग, हाउस 2/35, अन्सारी रोड़, दरियागंज दिल्ली। **9.** भारतीय चित्रकला, वाचस्पति गौरोला, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान वाराणसी। **10.** Randhawa, M.S. (1962), Kangra Painting on love, New Delhi: National Museum.

- शोधार्थी
(निर्देशिका - डॉ. सरोज रानी)
चित्रकला विभाग, दृश्यकला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी (उ.प्र.)

●

एक व्यक्ति का इकलौता पुत्र बीमार पड़ गया। सभी तरह के उपचार के पश्चात भी उसे नहीं बचाया जा सका। पिता पर वज्रपात हो गया। व्यथा के आंसू रुकते नहीं थे। संसार की विरक्ति ने उसे एकान्तवासी बना दिया। एक दिन बच्चे का स्मरण कर वह देर तक रोता रहा और उसकी आँख लग गई। स्वप्न में वह देवलोक जा पहुंचा। उसने देखा कि छोटे बच्चों का लम्बा जुलूस निकल रहा है। सब बच्चों के हाथ में जलती हुई मोमबत्तियां हैं। उसी पंक्ति में उसे अपना लाडला दिख गया। वह उससे लिपटकर खूब रोया। धैर्य धारण करने पर उसने बच्चे से पूछा - तुम्हारे सभी मित्रों की मोमबत्तियां जल रही हैं। तुम्हारी क्यों बुझ गई? बच्चा बोला, पापा! आप मुझे याद करके रोते हैं अतः आपके आंसुओं से मेरी मोमबत्ती बुझ जाती है।

व्यक्ति की नींद खुलने पर उसने बच्चे के लिए रोने की अपेक्षा उसकी स्मृति में दान-पुण्य देना तथा अनाथ बच्चों का जीवन सुखमय बनाने का प्रयास किया।

सूर-साहित्य में प्रकृति एवं संस्कृति की झलक

डॉ. अजय कुमार पटनायक

भारतीय संस्कृति के अन्यतम महानायक कृष्ण की लीला-भूमि प्रकृति परिवेष्ठित ब्रज-भूमि थी, जबकि राजपुत्र होने के नाते उनके लिए ऐशोआराम की कोई कमी न थी। ब्रज प्रदेश के चरागाह, लता-कुंज, गोवर्द्धन पर्वत, यमुना का कछार और कदम्ब के पेड़ से लेकर ब्रज के कण-कण के साथ कृष्ण का लगाव देखकर आसपास के आम लोग भी उनसे जुड़ गये थे। अपने आराध्य की प्रिय वन-भूमि तथा उनसे जुड़े स्थल भक्तों के लिए किसी वैकुण्ठ से कम नहीं हैं। कवि भक्त सूरदास तो इसे गोलोक-धाम के रूप में देखते हैं। इन नित्य-लीला स्थलियों में प्रविष्ठ होने पर विभु-कृपा प्राप्त होगी, इसी दृष्टि से पुष्टिमार्ग की स्थापना हुई थी। सूर के गुरु बल्लभाचार्य द्वारा गोवर्द्धन में श्रीनाथजी के मन्दिर की प्रतिष्ठा करने पर इस प्रदेश के अपरूप लौकिक सौन्दर्य के साथ अक्षय आध्यात्मिक सौन्दर्य भी शिखर छूने लगा। तमाम कृष्णभक्त कवियों ने कृष्ण के लीला-धाम के प्राकृतिक सौन्दर्य से सरावोर होकर गीत गाये, सूर उनमें सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। इस पर प्रख्यात आलोचक रामरतन भटनागर का कहना है कि "कृष्ण का विकास जैसे ब्रज की प्रकृति में होता है, उसी प्रकार सूर-साहित्य का विकास भी ब्रज-प्रकृति की छाया में ही होता है। ब्रज की प्रकृति ने उन्हें केवल उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं के लिए ही सामग्री नहीं दी, वह उनके काव्य के केन्द्र में प्रतिष्ठित हुई है।"

(सूर-साहित्य की भूमिका, पृ. -211)

सूर को ब्रज-भूमि से इतना प्रेम है कि उस भूमि के समक्ष उन्हें संसार के समस्त सुख तुच्छ प्रतीत होते हैं। कृष्ण की लीला-भूमि के सामने उन्हें स्वर्ग की सुख-सम्पदा तक असार प्रतीत होती है। यहाँ के वंशीवट, यमुना, वन-भूमि, लता-कुंजों में झूलना, राधा और गोपियों के संग कृष्ण का विहार, संयोग-शृंगार के साथ-साथ वियोग का सुख अन्यत्र कहाँ मिलेगा? ब्रज की प्रकृति ने कभी भी सूर-काव्य का दामन नहीं छोड़ा, वह बाल-वर्णन से लेकर शृंगार-वर्णन तक अनुकूल रही है।

राधा-कृष्ण के प्रथम-मिलन के अवसर पर प्रकृति उद्दीपन की भूमिका पूरी तरह निभाती रही है। आकाश में घटाओं के घिरने, चपला दामिनी के चमकने, पवन के झकोरे लेने जैसे दृश्य प्रेमी-युगल को रोमांचित कर देते हैं। शरद ऋतु की छटा के साथ रास-लीला के समय प्रकृति सहायक बनकर पूरे वैभव के साथ प्रकट हो जाती है। वृन्दावन पुष्पमय हो जाता है,

पेड़ फलों से लद जाते हैं, यमुना-पुलिन रमणीय हो उठते हैं और त्रिविध समीर बहने के कारण चारों ओर का वातावरण आनन्दमय हो उठता है। वसन्त ऋतु में प्राकृतिक शोभा अपने चरम तक पहुँच जाती है। कोयल कूकने लगती हैं, पलाशों से वन लाल हो रहे हैं, कमल और वृक्ष-लताओं पर भौंरे मण्डरा रहे हैं। ग्वालबालों के साथ मिलकर कृष्ण गोपियों के संग फाग खेलते हैं। प्रकृति और उसके प्रांगण में विहार करने वाले युगल किशोर अपनी सुध-बुध खोकर परस्पर एक हो गये हैं। प्रकृति के साथ ऐसे तादात्म्य को सूरदास ने कई स्थलों पर दिखाया है।

राधा-कृष्ण संयोग काल में जिस वातावरण में एक-दूसरे के साथ एकाकार होकर स्वर्गिक सुख का अनुभव करते हैं, वियोग-काल में वही वातावरण उन्हें काट खाने को दौड़ता है। प्रकृति का वह मधुर उद्दीपक वातावरण श्रीकृष्ण के बिना राधा को अब कितना दाहक लगता है। 'सबै ऋतु औरहि लागत अहि' कहकर गोपियाँ इस बात की व्यंजना करती हैं कि अब ऋतुओं में वह आकर्षण नहीं रहा जो कृष्ण के ब्रज में उपस्थित रहते समय था। बादलों को घुमड़ते देखकर उन्हें कामदेव के मस्त हाथियों के बन्धन तोड़कर उच्छृंखल होने का भ्रम होता है, चाँदनी सर्पिणी सदृश लगती है और मोर शत्रु जान पड़ते हैं। यहाँ तक कि गोपियाँ अपनी व्यथा के कारण प्रकृति की प्रफुल्लता को न सह पाने के कारण मधुवन को कोसती हैं-"मधुवन तुम कत रहत हरे, विरह-विधुर श्याम सुन्दर के, ठाढ़े क्यों न जरे?"

संयोग और वियोग की भावनाओं के चित्रण में प्रकृति की पृष्ठभूमि संवेदनशील सुहृद के रूप में प्रदर्शित है। मानों प्रकृति स्वयं कृष्ण के विरह में व्यथित रहती है। जिस दिन से कृष्ण ब्रज छोड़ गये हैं, उस दिन से मोरों ने वर्षा ऋतु तक में नाचना छोड़ दिया, मृग वंशी-स्वर नहीं सुनते और वृन्दावन हरा-भरा नहीं रहता। यमुना काली पड़ गई है और सन्निपातग्रस्त स्त्री की तरह हो गई है। सूरदास के शब्दों में गोपियाँ कहती हैं -- "सूरदास प्रभु जोई जमुन गति, सो गति भई हमारी।" आमतौर पर प्रकृति से उपमानों को लाकर अपनी-अपनी मनोवृत्ति के अनुसार थोड़ा-बहुत परिवर्तन के साथ कवि लोग उसे अपनाते हैं। सूर ने अपने ढंग से उसे अपनाया, जो एक अभिनव रूप में अभिव्यंजित है। समस्त उपमानों को हेय ठहराते वे कह रहे हैं-

"उपमा नैन न एक गही,
कविजन कहत-कहत चली आये,
सुधि करि-करि काहू न कही..."

इस पद में उन्होंने भ्रमर-गीत के प्रसंग में गोपियों के नेत्रों को चकोर, भ्रमर, मृग और खंजन की उपमाओं को इस आधार पर व्यर्थ ठहराया है कि कृष्ण के मुखचन्द्र के अभाव में जीना चकोर के लिए सम्भव नहीं, मुख कमल-कोष से दूर होकर भ्रमर नहीं रह सकता, व्याध रूपी उद्धव को देख मृग ठहर नहीं सकता और खंजन भी अपनी चंचलता छोड़ सकता है। नेत्रों के उल्टे व्यापार को देखकर सभी उपमान व्यर्थ हैं। हाँ, वे बराबर सजल रहते हैं, इसलिए मीन एक ऐसा उपमान है जिसकी सार्थकता स्वीकारी जा सकती है। इस प्रकार कृष्ण के घुंघराले बाल इसलिए भ्रमर हैं कि उन्होंने मालती लता जैसी गोपियों को बहका लिया और नीरस करके छोड़ दिया, मुख इसलिए चन्द्रमा है कि कुमुदिनी रूपी गोपियों का रस पीकर उन्हें पाले से मरने को छोड़ दिया और शरीर घनश्याम इसलिए है कि चातक जैसी गोपियाँ उनका नाम रटते-रटते मर गईं, पर उनके मुख में प्रेम के स्वाति जल की एक बूँद भी न गई।

सूर के वैराग्य के पदों में प्रकृति का रहस्यमय रूप झलकता है। निर्गुण पंथी संतों की परम्परा से प्रभावित होकर सूरदास ने आत्मा अथवा जीव को चकवी, भ्रमरी और सुवा के रूप में संबोधित कर प्रभु के चरणों में लीन होने की बात कही है।

चाहे शृंगार और वात्सल्य का चित्रण हो चाहे भक्ति और वैराग्य का, सूर के लिए प्रकृति अत्यन्त निकट

की वस्तु है। बिना उसके उनकी कोई भावना व्यक्त नहीं हो सकती। साथ ही प्रकृति के कोमल और कठोर, दोनों प्रकार के चित्रण में सूर का स्वातन्त्र्य परिलक्षित होता है। उदाहरण के लिए, यशोदा द्वारा कृष्ण को जगाते समय प्रभात का दृश्य कितना मनोहारी है --

"जागिये ब्रजराज कुंवर, कमल-कुसुम फूले।
कुमुदवृन्द सकुचित भये, भृंग लता भूले
धमतर खग शेर सुनहु, बोलत वन राई।
राँभति गो खरिकनि में, बछरा हित धाई ।...."

इसी प्रकार प्रकृति के इस कठोर रूप का वर्णन भी गिरिधरण-लीला में दर्शनीय है --

"घटा घन घोर घहरात, अररात, दरपात थरपात ब्रज लोग डरै।

तड़ित-आघात तरपात, उतपात सुनि नार-नर सकुचि तन-प्राण अरपैं।"

चौदहवीं सदी से लेकर सोलहवीं सदी तक वन प्रदेश में कृष्ण-भक्ति की जो अभिनव धारा प्रवाहित हुई, उसने न केवल इस प्रदेश की बोली को उन्नत, मधुर भाव-व्यंजक एवं साहित्यिक रूप प्रदान किया, बल्कि यहाँ की संस्कृति को भी विदेशी प्रभाव से सुरक्षित कर एक रमणीय ढाँचे में ढाला। 'ब्रज' के नाम से नामित यहाँ की बोली के जरिए ब्रज की संस्कृति का विस्तार दूर-दूर तक हो गया और उसकी सरसता एवं भाव-प्रणवता ने यहाँ की जनता को, लोक समुदाय को अत्यधिक प्रभावित किया।

ब्रज संस्कृति के प्रसार में महाप्रभु बल्लभाचार्य, उनके वंशजों तथा शिष्यों का विशेष योगदान है। शिष्यों में अष्टछाप के आठ कवियों में महात्मा सूरदास अग्रगण्य हैं। बालकृष्ण वात्सल्य से लेकर मनमोहन की महान लीलाओं के वर्णन के बीच तत्कालीन जन-जीवन मुखरित हो उठा है। ब्रज-प्रदेश में प्रचलित सभी संस्कार, सामाजिक व्यवस्था एवं मनोविनोद के साधन तक सूर-साहित्य में मौजूद हैं। डा. हरवंशलाल शर्मा तो यहाँ तक कहते हैं कि "ब्रज-प्रान्त की सामाजिक परिस्थितियों का जितना विस्तृत वर्णन हमें सूर के काव्य में मिलता है, उतना किसी भी इतिहास-ग्रंथ में नहीं मिलता। इस दृष्टि से भी सूर के साहित्य का बड़ा महत्व है।" (सूर और उनका साहित्य, पृ. ३८९)। सूरसागर में वर्णित ब्रज-प्रदेश की संस्कृति ने ऐसा जादू कर दिया कि यवन संस्कृति में रसखान, रहीम, ताज जैसे कवि-कवियित्री भी आर्य संस्कृति के नायक कृष्ण के प्रति आकृष्ट हुए तथा ब्रज-संस्कृति का गुणगान करने लगे।

संस्कारों से ही व्यक्तित्व का निर्माण होता है और उनसे एक-एक व्यक्तित्व की निर्मिति समग्र समाज को संस्कृत बना देती है। अतः जाहिर है कि संस्कृति के विकास में संस्कारों का महत्वपूर्ण योगदान है। सूरदास ने इन संस्कारों का बहुत ही सूक्ष्म तथा स्वाभाविक वर्णन किया है।

आर्य संस्कृति में पुत्र का जन्म पुण्य का परिणाम समझा जाता है। उसके लिए लोग कितने ही व्रत, उपासना, याग-यज्ञ करते देखे जाते हैं, इसलिए पुत्र की उत्पत्ति के बाद उसके मुख-दर्शन को माँ-बाप ही नहीं, आस-पड़ोस के लोग भी तरस जाते हैं। तभी तो कृष्ण के जन्म पर यशोदा नन्द से कहती हैं -- *"आवहु कान्त देव परसन भये, पुत्र भयौ, मुख देख्यौ धाई।"* इसे सुनकर नन्द तो दौड़े हुए आते ही हैं। पर 'नन्द-अहीर-सूर' के रूप में जब *'गोकुल प्रगट भये हरि राई,'* तो अहीर समाज का हर्ष से नाच उठना लाजिमी था। तत्कालीन ब्रज समाज विशेष व्यवस्थित, सुसंगठित तथा मर्यादासम्पन्न था। अहीरों में पारम्परिक स्नेह-सौहार्द था। ऊँच-नीच या छोटे-बड़े का कोई भेद-भाव नहीं था। पर हाँ, परम्परा के अनुसार गाँव के सम्पन्न तथा शक्तिशाली व्यक्ति को लोग अपना अधिकारी मानकर उनका सम्मान करते थे और बदले में वे भी गाँववालों की देखरेख में कोई कसर नहीं छोड़ते थे। ऐसे ही 'महर' के घर पुत्र पैदा होने पर लोग खुशी से फूले नहीं समाते --

"ब्रज भयो महर कैं पुत, जब यह बात सुनी।
सुनि आनन्द सब लोक, गोकुल गनक गुनी।।"

कृष्ण जन्म के समय स्त्रियाँ बधावा लेकर जाती हैं। स्वर्ण-निर्मित थाल में दूब, दधि और रोचना रखा है। सखियाँ मंगल-गान करती हैं, नाल छेदन होता है और द्वार दुंदुभि बजती है। सूर ने इस अवसर पर बाजों का बजना, बन्दनवारें बाँधना, हल्दी-दही मिलाकर छिड़कना, वेद-ध्वनि का होना, ग्रह लग्न नक्षत्र आदि का विचार करके मुहूर्त शोधना, नांदी मुख श्राद्ध, पितृ-पूजा, गुरु और ब्राह्मणों को वस्त्र पहनाना, गोकुल-निवासियों का भेंट ले-लेकर नन्द के द्वार पर आना, द्वार पर स्वस्तिक बनाकर सात सींकें चिपकाना, ब्रज-बन्धुओं का अक्षत, रोरी, दूब और फलों से भरे हुए थाल लेकर पुत्र-दर्शन के लिए आना, उत्सव मनाया जाना, विप्र-मागध-सूत आदि का आशीर्वाद देना, ढाढ़ी-ढाढिनि का नाचना, दान लेने के लिए झगड़ना, यशोदा-नन्द द्वारा उनकी पहिरावनी कराना तथा हार, कंकण और मोतियों से भरे थाल दान में देना आदि कई प्रथाओं का विस्तार से वर्णन किया है। (सूर सागर, छन्द 29 से 34)

इसके बाद कृष्ण के छठी कर्म का वर्णन है। मालिन के बन्दनवार बाँधने और भृत्यों में कपड़े बाँटे जाने के बीच विश्वकर्मा पालना बनाकर लाता है और उसमें सुलाकर कृष्ण को महावर लगाया जाता है। जाति-जाति की पहिरावनी करके पुत्र को काजल व रोरी लगाकर छठी कर्म सम्पन्न होता है। स्त्रियाँ सोहर गाती हैं। जात-कर्म के उपरान्त नामकरणोत्सव होता है। इस समय विप्र, चारण, बन्दीजनों का नन्द के घर आकर दुर्बा-हर्दी बाँधना तथा गर्ग द्वारा जन्मपत्री बनाकर लक्षणादि का निरूपण करना आदि रस्मों का निर्वाह किया जाता है। फिर कृष्ण जब छः महीने के हो जाते हैं, प्रथानुसार उनका अन्नप्रासन संस्कार सम्पन्न होता है। स्त्रियों के मंगल-गान के मध्य बच्चे को उबटन लगाकर नहलाया जाता है और नव वस्त्राभूषणों से सजाया जाता है। फिर उन्हें गोद में लेकर नन्द द्वारा कनक थाल में लाई गई घृत-मधु मिश्रित खीर में से तनीक-सी लेकर कृष्ण का मुख जुठराया जाता है। इस संस्कार के पश्चात् निमन्त्रित व्यक्तियों के प्रीति-भोज में शामिल होने का वर्णन भी उत्साहोद्दीपक है। इसके उपरान्त कृष्ण के वर्षगांठ और कर्ण छेदन का भी सूर ने विस्तार से वर्णन किया है। वर्षगांठ के अवसर पर कृष्ण को उबटन लगाकर नहलाया जाता है। आंगन का लीपना, चौक पूरना, गाना बजाना, बन्दनवार बाँधना, अक्षत-दूब बाँधना और मंगलगान आदि होता है। कर्ण छेदन के समय कंचन के दो दुरों (बालियों) से कर्ण छेदना कराने के बारे में सूर लिखते हैं --

''कान्ह कुंवर को कनछेदनों हैं, हाथ सुहारी भेली गुर की।

विधि विहंसत, हरि हँसत हरि ऐहि यशुमति के धुकधुकी उर की।।''

यशोदा के हृदय में धुकधुकी हो रही है। माता का हृदय सूर ने बड़े निकट से देखा। इस समय के बालकों के वस्त्र, आभूषण आदि कैसे होते थे, उस पर भी सूर ने प्रकाश डाला है। कृष्ण की पीत झगुली, सिर पर कुलही, मणि जटित व्याघ्र-नख से संयुक्त कण्ठश्री, किंकिणी, बाहु-भूषण आदि का धारण करना वर्णित है। वर्षगांठ और कर्ण छेदन दोनों ही अवसरों पर वेद-पाठ, दही-हल्दी छिड़कना, शुभ मनाना, अन्न-वस्त्रों का दान देना तथा विविध व्यंजनों से पुर-परिजनों का सत्कार करना आदि सामाजिक रीति-रिवाजों के अन्तर्गत था। आज भी ये संस्कार लगभग इसी रूप में उत्तर भारत में प्रचलित हैं तथा ब्राह्मणों से विधिवत् सम्पन्न कराये जाते हैं। अतः स्पष्ट है कि प्रचलित सामाजिक संस्कार आदि का सूरदास को सूक्ष्म ज्ञान था और उस सन्दर्भ में उन्होंने मर्यादा का निर्वाह भी कुशलता के साथ किया है। द्विजपुत्र न होने के कारण शास्त्रीय परम्परा के अनुसार, कृष्ण का यज्ञोपवीत संस्कार गोकुल में नहीं हो सकता था। अतः जब वे मथुरा गये तो वहाँ गर्ग मुनि ने 'हरि-हलधर' दोनों का जनेऊ कराकर उन्हें गायत्री मन्त्र की दीक्षा दी।

कृष्ण का विवाह-संस्कार रास-लीला के अन्तर्गत आता है। यद्यपि राधा और कृष्ण का यह विवाह शास्त्र सम्मत नहीं है, तथापि निमन्त्रण, मण्डप, मंगल-गान, गालियाँ देना आदि लगभग सभी प्रचलित परम्पराओं का पालन हुआ। गन्धर्व रीति से कृष्ण का विवाह कुंज-मण्डप में होता है और यमुना तट पर निर्मित वेदी पर भावरें होती हैं। मोर मुकुट का मौर बनाया जाता है। मुरली ध्वनि द्वारा गोपियाँ निमन्त्रित होकर आती हैं और मंगल-गान करती हैं। कृष्ण की माता को लक्ष्य करके गालियाँ भी गाती हैं। इस अवसर पर कंकण खोलने की परिहासमयी प्रथा का पालन होता है। लेकिन कृष्ण-रुक्मिणी के विवाह को सूर ने बड़ी शान-शौकत तथा राजसी ठाठ-बाट से सम्पन्न कराया है। साथ ही शिव-पार्वती और राम-सीता के विवाह-वर्णन के माध्यम से सूरदास ने तत्कालीन वैवाहिक रीति-रिवाजों, वेश-भूषा और शास्त्र-सम्मत कर्मकाण्डीय अनुष्ठानों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

ब्रज की संस्कृति में पूजा-पार्वण, तीर्थ-व्रत, स्नान आदि का भी महत्व है। गोपियों के सम्बन्ध में सूरदास ने गौरी-पूजा, शिव-पूजा, सूर्य-पूजा, इन्द्र-पूजा, गोवर्द्धन-पूजा, शालिग्राम-पूजा, व्रत रखना आदि का विशद वर्णन किया है। कृष्ण की कुशल-कामना कर नन्द और यशोदा कुलदेव और इन्द्र की पूजा करते हैं। यमुना-स्नान एक धार्मिक कृत्य समझा जाता था। नन्द द्वारा शालिग्राम-पूजन और एकादशी का व्रत पालन भी तत्कालीन धार्मिक आचारों का परिचय प्रदान कराते हैं। सूर ने केवल ब्रजभूमि के विभिन्न संस्कारों, प्रथाओं, विश्वासों और वेशभूषा का वर्णन किया है, बल्कि प्रचलित विविध पर्व-त्योहारों का भी सविस्तार से वर्णन करते हुए तत्कालीन सांस्कृतिक वैभव का परिचय दिया है। अन्नकूटोत्सव, दधिकांधा उत्सव, गोवर्द्धन पूजा, फाग, फूलडोल आदि ब्रज के विशेष उत्सव हैं। श्रीनाथ मन्दिर में अनुष्ठित इन तमाम त्योहारों से सम्बद्ध होने के कारण सूरदास को इनका अच्छा ज्ञान था। ये उत्सव आज भी ब्रज प्रदेश में बड़े हर्ष और उल्लास के साथ मनाये जाते हैं।

अन्नकूटोत्सव में गोवर्द्धन पूजा में गिरिराज की पूजा की जाती है। इसमें षट्रसव्यंजन और पकवानों का बड़ा महत्व होता है। दधिकांधा उत्सव आज भी कृष्ण-जन्म के अवसर पर अनुष्ठित होता है। सामाजिक त्योहारों में फाग या होली एक ऐसा पर्व है जिसे समस्त ब्रजवासी चाहे वह पुरुष हो या नारी, बच्चा हो या बूढ़ा, सभी आनन्द और उत्साह पूर्वक मनाते हैं। यही कारण है कि सूर-साहित्य में अन्य त्योहारों की तुलना में फाग सम्बन्धी पद अधिक संख्या में पाये जाते हैं। तत्कालीन समाज में स्त्री-पुरुष सभी बड़ी ही स्वच्छन्दता के साथ होली खेलते हुए एक-दूसरे पर रंग, गुलाल, अबीर, चन्दन, चोवा, अरगजा आदि डालते थे। ढोल, मृदंग, झांझ, पखावज, डफ, बीन, झालर आदि के वादन से वातावरण गूँज उठता है। स्वयं सूर के ही स्वर में सुनें --

"इत श्रीराधा उत श्री गिरिधर, इत गोपी उत ग्वाल।
खेलत फागु रसिक ब्रज-बनिता, सुन्दर स्याम तमाल।।
चोवा, चन्दन, अबीर, कुमकुम छिरकत भर पिचकारी।
उड़त गुलाल, अबिर, जोति रवि दिसि दीपक ऊँजियारी।।
ताल, मृदंग, बीन, बाँसुरी डफ गावत गीत सुहाए।
रसिक गुपाल नबल ब्रज बनिता निकसि चौहदें आए।।
झूम झूम झूमक सब गावतिं बोलतिं मधुर बानी।
देतिं परस्पर गारि मुदित मन, तरुनी बाल सयानी।।"

(सूर सागर, पृ.- 3472)

होली के बाद फूलडोलोत्सव की तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं। सन्ध्या समय लोग एक निर्दिष्ट स्थान पर मिलते थे, एक पुष्पमय परिवेश में एक-दूसरे झूमते थे। इसके अलावा तत्कालीन समाज में अक्षय तृतीया, रथयात्रा, जन्माष्टमी, राधाष्टमी, रक्षा बन्धन, दशहरा, दीपावली आदि ढेर सारे पर्व-त्योहारों का प्रचलन था। ये सभी त्योहार सामूहिक रूप से मनाये जाते थे। कृष्णजन्म से लेकर गोचारण तक अनेक प्रसंगों में, राक्षसों की मृत्यु के बाद हर्ष मनाने में,

कालीय दमन लीला, दावानल पान लीला, गिरिधर लीला, रासलीला, पनघट लीला, दान लीला, वसन्त लीला, धनुष भंग आदि लीलाओं में सामूहिक संगठन की ओर संकेत किया गया है। कहने का तात्पर्य है कि यह समाज जाति और उपजातियों में विभाजित होते हुए भी संगठन में आबद्ध था। समाज के आर्थिक स्तर का जहाँ तक प्रश्न है, लोग अच्छी तरह खा-पी सकते थे और अपने दैनन्दिन जीवन की साधरण-सी आवश्यकताएँ पूरी कर सकते थे। घी, दूध, दही, मक्खन आदि का आधिक्य था और ग्वालिनें इन्हें बेचने जाया करती थीं। अतः नन्द के पास दो लाख गायें होना, सहस्र मथानी चलना, मणि खांचत कनकमय आंगन का होना, झूलन के प्रसंग में कनक-स्तम्भ, मणि जटित पटुलि तथा कनक मन्दिर आदि असली वस्तु स्थिति नहीं है, बल्कि कृष्ण प्रेमाधिक्य के कारण अभिव्यक्त अतिशयोक्ति ही है। विशिष्ट आलोचक डा. हरगुलाल के अनुसार, "बार-बार बहुमूल्य रत्न, हीरा, प्रवाल, पुखराज तथा कनक आदि का नाम लेना उनकी प्रचुरता का द्योतक न होकर उनके अभाव का अभिव्यंजक हैं।"

(सूर-सागर में लोक-जीवन, पृ. -155)।

तत्कालीन समाज की नैतिक मान्यता का जहाँ तक प्रश्न है, लोकादर्श और लोक-मर्यादा पर बल दिया जाता था। "भक्ति के परिप्रेक्ष्य में सूर की गोपियाँ कुल की मर्यादा का उल्लंघन अवश्य करती हैं पर सामान्यतया कवि ने लौकिक जीवन में नारी के लिए लोक-लाज, 'कुलकानि' एवं आर्यधर्म का निभाना आवश्यक माना है।"

(डा. गोविन्दराम शर्मा 'सूर की काव्य-साधना', पृ.-316)

पारिवारिक जीवन में पातिव्रत धर्म का बड़ा महत्व था। नवयौवना सुन्दरी का रात में घर से निकलना तथा पराई स्त्री को वन में घेरना-- दोनों ही लोक-मर्यादा के प्रतिकूल समझा जाता था। इसके अतिरिक्त अतिथि-परायणता, पारिवारिक सद्भाव, सत्त्वगुण की प्रधानता तथा खानपान में आम आदमी की सात्त्विक प्रवृत्ति भी लक्षणीय है।

समाज में पर्व-त्योहारों की प्रधानता होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति शृंगार और वेशभूषा पर अधिक ध्यान देता था। सूर-साहित्य में स्त्री शृंगार, पुरुष शृंगार, बाल शृंगार और साधुओं का शृंगार, केश-कलाप आदि का जगह-जगह पर बड़ा रोचक वर्णन हुआ है। ब्रज रमणियों को शरीर के अनुकूल रंग-विरंगे वस्त्र पहनने, मेंहदी रचाने, फूलों से वेणी सजाने, माँग भरने तथा चन्दन, कुंकुम, केसर आदि के लेप से अंग प्रसाधन करने का बड़ा शौक था। आभूषणों में नुपूर, पायल, करधनी, अंगूठी, चूड़ियाँ, कंकण, बेसरि, कर्णफूल, हार, शीलफूल आदि का प्रचलन था। स्त्रियों की भांति पुरुष भी रंगीन कपड़े एवं विविध आभूषण पहनना पसन्द करते थे। कटि में मेखला, हाथों में कड़े और उंगलियों में अंगूठी पहनने का प्रचलन था।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संसार से विरक्त तथा कृष्णभक्ति में लीन होकर भी सूरदास की दृष्टि समाज से विमुख नहीं रही। उनके आत्मपरक गीति-काव्यों में तत्कालीन समाज और संस्कृति अनायास ही मुखरित हो उठे हैं, आलोचक डा. गोविन्दराम शर्मा ने ठीक ही कहा है कि "सूर ने अपने आप में पूर्ण एवं समृद्ध समाज का चित्रण 'सूर-सागर' में किया है। इस समाज ने धर्म-प्रवण होकर भी भौतिक सुख-साधनों की उपेक्षा नहीं की है। यह एक ऐसा समाज है जिसके जीवन में सांसारिकता और आध्यात्मिकता, भोग और वैराग्य का सुन्दर समन्वय हुआ है। वृन्दावन विहारी कृष्ण की बालकेलियों और युवावस्था की प्रेम-क्रीड़ाओं के बीच यह समाज सुन्दर, स्वस्थ, सम्पन्न एवं आकर्षक रूप को लिये हुए है।"

(सूर की काव्य-साधना, पृ. 317)।

(सेवानिवृत्त प्रोफेसर- हिन्दी, रेवेंशा वि.वि. कटक), तपोवनम्, 1032/2402 प्रगति नगर, यूनिट-8, भुवनेश्वर - 751003
मो. - 9437577001

●

हिन्दी नाट्य-सृजन परम्परा में प्रसाद और उनका स्कन्दगुप्त

डॉ. शुभ्रा उपाध्याय

हिन्दी में नाट्य साहित्य का आरंभ आधुनिक काल से होता है। किन्तु इसके पूर्व संस्कृत और प्राकृत में नाट्य साहित्य की एक अत्यंत समृद्ध परम्परा रही है। भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में नाटकों की उत्पत्ति से संबंधित एक रोचक कथा का उल्लेख किया है जिसके अनुसार देवताओं के आग्रह पर ब्रह्मा ने चारों वेदों में से चार तत्व-- ऋग्वेद से कथा, युजुर्वेद से अभिनय, सामवेद से संगीत और अथर्ववेद से रस लेकर 'पंचम वेद' रूपी नाटकों की सुष्टि की, इसी से इसे नाट्य वेद या पंचम वेद भी कहते हैं। तदन्तर महादेव के परामर्श से इसमें अन्य सुकुमार वृत्तियों का भी समावेश किया गया। नाटक, काव्य और गद्य का वह अनूठा रूप है जिसका सम्पूर्ण रसास्वादन सिर्फ पढ़कर नहीं किया जा सकता, इसका पूरा आनन्द हमें तभी मिलता है जब यह देखा और सुना जाता है। नाटकों में मंचीयता और अभिनेयता, ये दो महत्वपूर्ण तत्व हैं। नाटकों का सृजन शुद्ध मनोरंजन के उद्देश्य से कभी नहीं हुआ। यह मानव जीवन के सुप्त भावों को जगाने, उन्हें शक्ति सम्पन्न करने, उनकी चेतना और विवेक सम्मति को जागृत करने, सर्वसाधारण को उद्‌बुद्ध करने वाली एक सशक्त साहित्यिक विधा है।

हिन्दी में इस सशक्त साहित्यिक विधा का शुभारंभ हम भारतेंदु युग से स्वीकार करते हैं। डॉ. नगेन्द्र ने अपनी पुस्तक हिन्दी साहित्य का इतिहास में स्पष्ट किया है कि इसके पूर्व जिन हिन्दी नाट्य कृतियों -- यथा प्राणचन्द चौहान कृत 'रामायण महानाटक' (1610), लछिराम कृत 'करुणाभरणं' (1657), 'नेवाज कृत शकुंतला' (1680), रघुराज नागर कृत 'सभासार' (1700), उदय कृत 'राम करुणाकर' एवं 'हनुमान नाटक' (1840) का उल्लेख मिलता है, वे वस्तुतः नाटक नहीं हैं, पद्यात्मक प्रबंध हैं। इसी दौरान लगभग 1700 ई. में लिखा गया महाराज विश्वनाथ सिंह द्वारा 'आनंद रघुनंदन' ही एकमात्र ऐसी कृति है जिसमें नाटक के शास्त्रीय नियमों का प्रयोग दिखाई देता है। बावजूद अनेक दोषों के इसे कई विद्वान हिन्दी का प्रथम नाटक स्वीकार करते हैं। इसके अतिरिक्त 1853 में अमानत कृत 'इन्दर सभा' और भारतेंद के पिता श्री गोपाल चन्द्र गिरिधर दास कृत 'नहुष' (1857) को भी प्रथम नाटक के रूप में मानने को लेकर विवाद है। इस क्रम में 1868 में शीतला प्रसाद त्रिपाठी द्वारा रचित 'जानकी मंगल' नाटक उल्लेखनीय है जो काफी हद तक अभिनय के लिए ही लिखा गया था। यह नाटक नाट्य गुणों से सम्पन्न और बाकायदा परिमार्जित खड़ी बोली में लिखा गया। इसकी पृष्ठभूमि में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा प्रवर्तित काशी में रामलीला की अपार लोकप्रियता थी। गोस्वामी जी ने लीला नाटकों की जो एक सुदृढ़ परंपरा की नींव रखी, 'जानकी मंगल' नाटक उसका ही श्रेष्ठ प्रतिफलन है। इसकी विषय वस्तु रामचरित मानस पर आधारित रामकथा में

राम-जानकी विवाह का प्रसंग ही है। इसमें स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अभिनय किया था।

'जानकी मंगल' नाटक के प्रकाशन वर्ष तक अर्थात 1868 में भारतेंदु स्वयं अपनी अद्भुत सर्जनशीलता के साथ नाट्य जगत में उदित हो चुके थे। उनका प्रथम नाटक (बांग्ला से अनुदित ही सही) 'विधानसुन्दर' प्रकाशित हो चुका था। हम जानते ही हैं कि अपने छोटे से जीवनकाल में ही बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न भारतेंदु ने अपने तमाम अन्य साहित्यिक कर्मों के साथ 17 नाटकों का सर्जन कर हिन्दी नाटकों की एक स्वस्थ, सुन्दर और दीर्घजीवी परम्परा का शिलान्यास किया। पौराणिक, ऐतिहासिक, रोमानी, सामयिक आदि सभी प्रकार के नाटकों की रचना उन्होंने की। आचार्य शुक्ल ने भारतेंदु के नाटकों के विस्तृत विषयफलक को प्रशंसनीय दृष्टि से रेखांकित किया है। अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में एक जगह वे लिखते हैं, 'भारतेंदु के नाटकों में सबसे पहले ध्यान इस बात पर जाता है कि उन्होंने विषय वस्तु जीवन के कई क्षेत्रों से ली है। 'चंद्रावली' में प्रेम का आदर्श, 'नीलदेव' में ऐतिहासिकता, 'भारत-दुर्दशा' देशदशा पर, 'विषान्य विष मौषधम्' में देसी रजवाड़ों की कुचक्रपूर्ण स्थिति, 'प्रेम वियोगिनी' में पाखंड भरा धार्मिक और सामाजिक जीवन, 'अंधेर नगरी', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' में हास्य व्यंग्य पूर्ण शैली में धार्मिक पाखण्ड खण्डन और सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार आदि। भारतेंदुकालीन नाटकों को समग्रतः हम डॉ. नगेन्द्र की दृष्टि से देखें तो -- 'नाटकों की रचना का मूल उद्देश्य मनोरंजन के साथ ही साथ जनमानस को जाग्रत करना और उसमें आत्मविश्वास उत्पन्न करना था। फलस्वरूप इनमें सत्य, न्याय, त्याग, उदारता आदि मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था उत्पन्न करने, प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम जगाने, अनुकरणीय पौराणिक एवं ऐतिहासिक चरित्रों के प्रति समाज को आकृष्ट करने और नवीनता की आंधी में समाज को सुरक्षित रखते हुए उसका सुधार एवं परिष्कार करने पर अधिक बल दिया गया है। शास्त्रीय दृष्टि से भारतेंदुकालीन नाटक संस्कृत नाट्यशास्त्र की मर्यादा की रक्षा करते हुए, युग और परिस्थिति के अनुसार उसमें थोड़ी छूट लेकर लिखे गए हैं। साथ ही पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के प्रभाव से भी वे अछूते नहीं हैं। पाश्चात्य ट्रेजेडी की पद्धित पर दुःखान्त नाटक लिखने की परम्परा का श्रीगणेश स्वयं भारतेंदु ने ही किया था।' इस समय तक पारसी थियेटर के नाटकों का बोलबाला शुरू हो गया था। मुख्य रूप से व्यावसायिक मानसिकता के कारण ये थियेटर उच्च आदर्शों और परिष्कृत रूचिशीलता से विहीन थे। भारतेंदु के बाद लगभग 25 वर्षों तक का समय नाट्य साहित्य सृजन के लिए, संख्या की दृष्टि से भरपूर होते हुए भी महत्व की दृष्टि से अत्यंत नगण्य रहा। हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस कालावधि को हम द्विवेदी युग के नाम से रेखांकित करते हैं। भारतेंदु और प्रसाद के बीच के युग की ऐतिहासिक उपलब्धियों के गौरव के अनुकूल, बालकृष्ण भट्ट को छोड़कर एक भी नाटककार का सृजन उल्लेखनीय नहीं है।

नाटक के क्षेत्र में प्रसाद के आगमन ने नाट्य साहित्य को नई साहित्यिक बुलंदियों तक पहुंचाया। विषयवस्तु की सीमा रेखा को सुदूर अतीत के गलियारों तक ले जाने की सार्थक कोशिश की किन्तु ध्यान देने की बात यह है कि प्रसाद के ऐतिहासिक प्रसंगों पर लिखे नाटक हमें हमारे आज की समस्याओं से जूझने में एक प्रकाश स्तम्भ की तरह मदद करते हैं। सामान्य दृष्टि से 'छायावाद' नाम के साथ ही हम साहित्य जगत को 'काव्य समृद्धियों' के रूप में अनुमानित करने के आदी हैं किन्तु प्रसाद - प्रेमचन्द और इनके समकालीन साहित्यकारों की उपस्थिति ने इस युग के गद्य साहित्य को पूर्ववर्ती युगों की तुलना में बहुत अधिक विकासशील और समृद्ध बनाया। जैसे उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में हम बेहिचक इस युग को 'प्रेमचन्द युग' सम्बोधित करते हैं, वैसे ही निर्विवाद रूप से नाटकों के क्षेत्र में इसे 'प्रसाद युग' की संज्ञा दी जानी चाहिए।

जयशंकर प्रसाद का जन्म भारतेंदु जी की मृत्यु के लगभग तीन वर्ष पश्चात काशी के एक सुविख्यात घराने में हुआ। प्रसाद का बालपन काशी में भारतेंदु की यशगाथा के सुवासित वातावरण में बीता अतः भारतेंदु जैसे व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ना बिल्कुल स्वाभाविक था। प्रसाद ने भारतेंदु के नाटकों को

अपना आदर्श माना। 'हिन्दी नाटक उद्‌भव और विकास' पुस्तक में डॉ. दशरथ ओझा ने प्रसाद को मिले इस साहित्यिक परिवेश और विरासत पर विस्तृत बात की है। वे लिखते हैं, 'इस युग में विविध भाषाओं के नाटकों का अनुवाद करके हिन्दी नाट्‌य साहित्य में शक्ति का संचार किया जा रहा था। शेक्सपियर के नाटकों से हिन्दी नाटकों में भावुकता का संचार हो रहा था। अन्तर्द्वन्द्व और क्लाइमेक्स को रस -- प्रतिपादन से अधिक महत्व मिल रहा था। द्विजेन्द्रलाल के नाटकों के द्वारा शेक्सपियर का प्रभाव हिन्दी पर गहरा पड़ रहा था। अतुकांत पद्य में विरचित द्विजेन्द्रलाल राय के नाट्‌य-काव्य एक नई शैली लेकर आए थे। भावोन्माद और करुणा को प्रमुख स्थान दिया जा रहा था। इस प्रकार प्रसाद जी के सम्मुख एक ओर तो नवयुग प्रवर्तक भारतेन्दु जी, प्राचीनता के प्रतिनिधि के रूप में खड़े थे और दूसरी ओर पश्चिमी नाटकों की अभिनय कला अपनी नवीन मोहिनी शक्ति का जादू उन पर डाल रही थी। ऐसे संधिकाल में प्रसाद जी ने साहित्य सृजन का कार्य प्रारम्भ किया। प्रसाद जी ने समन्वयात्मक शैली का अनुगमन किया। उन्होंने भारतीय रस विधान और पाश्चात्य शील वैचित्र्य के समन्वय का पथ अपनाया।"

जयशंकर प्रसाद ने कुल तेरह नाटकों का सृजन किया है उनका पहला नाटक है 'सज्जन' जो महाभारत के कथानक पर आधारित हैं (वन में पाण्डव हैं, दुर्योधन चित्रसेन द्वारा बंदी होता है, युधिष्ठिर उसकी प्राणरक्षा करते हैं)। दूसरा 'प्रायश्चित' नाटक है (जिसमें जयचन्द की मृत्यु-कथा है)। प्रायश्चित से पहले ही प्रसाद 'कल्याणी परिणय' का सृजन करते हैं (इसकी कथा चन्द्रगुप्त के जीवन पर आधारित है। हम कह सकते हैं कि उनका 'चन्द्रगुप्त' नाटक 'कल्याणी परिणय' का ही सुन्दर, सुगठित और विकसित रूप है।) 'करुणामय' नामक गीति नाट्य का सृजन करते हैं। इसमें अयोध्यापति हरिश्चन्द्र और उनके पुत्र रोहिताश्व की कथा है। तत्पश्चात प्रसाद का 'राजश्री' नाटक लिखा जाता है। यहां पर जान लेना आवश्यक है कि 'राजश्री' नाटक की रचना सर्वप्रथम 1915 में हुई थी। प्रसाद जी ने इसे दुबारा लिखा था और फिर कुछ नये दृश्यों एवं पात्रों की साज सज्जा के साथ यह दुबारा 1937 में प्रकाशित हुआ। प्रसाद जी स्वयं 'राजश्री' को ही अपना प्रथम ऐतिहासिक नाटक स्वीकार करते हैं। (देखें -- हिन्दी नाटक, उद्‌भव विकास, डॉ. दशरथ ओझा, पृ. 182)। इस नाटक के केन्द्र में भी गुप्त साम्राज्य और हूणों की कथा है। प्रसाद जी के नाटकों को देखने से एक बात स्पष्ट होती है कि 'राजश्री' तक वे अपने लिए ठीकठाक मार्ग की तलाश में थे अथवा समकालीन परिदृश्य में अपने लिए मार्ग का निर्माण कर रहे थे, जो 'राजश्री' तक आते-आते लगभग स्पष्ट हो गया था। क्योंकि इसके बाद के जो भी नाटक प्रसाद जी ने लिखे हैं, वे उच्च कोटि के और उनकी दृष्टि एवं उद्देश्य को सफलतापूर्वक वहन करने वाले हैं। 1921 में प्रसाद जी ने 'विशाख' का सृजन किया। 'अजातशत्रु' 1922 में लिखा गया। 'कामना' नाटक की रचना 1924-25 के दौरान हुई जबकि इसका प्रकाशन 1927 में हुआ था। 'जनमेजय का नागयज्ञ' 1926। 'स्कन्दगुप्त' 1928 और 'एक घूंट' 1930 में प्रकाशित हुआ। 1931 में 'चन्द्रगुप्त' नाटक और 1933 में 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक का प्रकाशन हुआ।

प्रसाद के उपरोक्त विपुल नाट्‌य साहित्य में उनकी सात प्रमुख कृतियां ऐतिहासिक नाटक के रूप में मान्य हैं। वे सात रचनाएं हैं-- विशाख, अजातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, राजश्री, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी। हिन्दी साहित्य में प्रसाद ऐतिहासिक नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इनके नाटकों का विशाल फलक पौराणिक युग (जनमेजय का नागयज्ञ) से लेकर हर्षवर्द्धन युग (राजश्री) तक फैला हुआ है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में कहें तो -- "शायद ही हिन्दी के किसी अन्य लेखक ने भारतीय संस्कृति, समृद्धि, शक्ति और औदात्य का ऐसा भास्वरचित्र प्रस्तुत किया हो। इन नाटकों में जो चरित्र उभरे हैं, वे शील, शक्ति और औदात्य के प्राणवन्त विग्रह हैं। इतिहास के प्रसिद्ध पात्रों में नया जीवन भर दिया गया है। गौतम बुद्ध, चाणक्य, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, राज्यश्री, ध्रुवस्वामिनी आदि ऐतिहासिक पात्र हैं, पर प्रसाद के नाटकों में इनका जो रूप उभरा

है, वह केवल इतिहास की उपलब्धि नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त प्रसाद ने इतने विविध प्रकार के पात्रों की सृष्टि की है कि उनके माध्यम से पूरा ही परिदृश्य सजीव होकर हमारे सामने उपस्थित हो गया है।" (हिन्दी सा. का इति. 566) इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि प्रसाद अपने नाटकों के माध्यम से केवल मात्र भारतीय संस्कृति की गौरव गाथा गाते चलते हैं। शायद इसी को लक्ष्य करके उनके नाटकों के सन्दर्भ में किसी के द्वारा 'गड़े मुर्दे उखाड़ने' की बात कही गयी थी किन्तु हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐतिहासिक नाटककार के समक्ष इतिहास और वर्तमान, दोनों के ही सन्दर्भों से जुड़े रहने और इसकी सत्यता को, विश्वसनीयता को, बनाए रखने की दुहरी कठिनाई रहती है। यह प्रश्न उठ ही सकता है कि किसी भी प्रबुद्ध साहित्यकार को बार बार इतिहास में जाने की आवश्यकता क्यों पड़ती है? यह प्रश्न प्रसाद के नाटकों के सन्दर्भ में बार-बार उठाया भी जाता रहा है और उसके कई तरह के समाधान भी प्रस्तुत किये जाते रहे हैं। कभी इसे प्रसाद की 'रोमानी कवि दृष्टि' (हि.सा. का इति., नगेन्द्र, 566) तो कभी सांस्कृतिक बोध/अस्मिता बोध से जोड़ा जाता रहा है। बहरहाल ऐतिहासिक नाटककार के रूप में प्रसाद स्वयं में अद्वितीय हैं। उनकी यह अद्वितीयता उनकी चेतना सम्पन्न ऐतिहासिक दृष्टि में ही निहित है।

वस्तुतः अपने आप में इतिहास व्यतीत हुए कालखण्ड के सिवा कुछ नहीं होता। परंतु इतिहास को महत्वपूर्ण बनाता है वह स्थान (अर्थात वर्तमान) जहां से वह इतिहास देखा जाता है और वह दृष्टि (रचनाकार की) जो उसे देखती है। 'स्कन्दगुप्त' का प्रारम्भ ही इस बात को समझने में आपकी मदद करता है। प्रसाद जी स्कन्द से कहलवाते हैं कि- 'अधिकार सुख कितना मादक और सारहीन है! अपने को नियामक और कर्ता मानने की बलवती स्पृहा उससे बेगार करवाती है। उत्सवों में परिचारक और अस्त्रों में ढाल से भी अधिकारलोलुप मनुष्य क्या अच्छे हैं? ऊंह! जो कुछ हो, हम तो साम्राज्य के एक सैनिक हैं।' स्कन्दगुप्त नाटक का यही वह महत्वपूर्ण बिन्दु है, जहां से स्कन्दगुप्त को देखा गया है और इसी बिन्दु से उसे रचा गया है। प्रसाद जी ने अद्‌भुत सर्जना की है, एक ओर गहन अवसाद और दूसरी ओर स्वर्णिम गुप्त साम्राज्य की सुरक्षा हेतु अद्‌भुत पराक्रम और वीरता से हूण आततायियों से भयंकर युद्ध!!

कलात्मक उत्कर्ष की दृष्टि से प्रसाद के तीन नाटक श्रेष्ठ माने जाते हैं स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी। वस्तु विन्यास, काव्यात्मकता, प्रवृति निवृत्ति, चरित्र चित्रण, देश प्रेम, अन्तर्द्वन्द्व, संघर्ष आदि की दृष्टि से निस्संदेह प्रसाद के इन तीनों नाटकों में भी 'स्कन्दगुप्त'सर्वश्रेष्ठ स्थान का अधिकारी है। यदि संघर्ष, तनाव, अन्तर्द्वन्द्र नाटक का प्राण तत्व होता है तो स्कन्दगुप्त की प्राणवत्ता सर्वोपरि है। चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी इसी सोपान पर चढ़ते अवश्य हैं किन्तु कसावट और द्वन्द्र की गहनता में स्कन्द गुप्त कई सोपान ऊपर है। हम जानते हैं कि 'स्कन्द' नाटक की कथावस्तु समृद्धि और ऐश्वर्य के शिखर पर आसीन गुप्त साम्राज्य के आंगन के उसी कोने से ली गयी है, है, जहां आन्तरिक कलह, पारिवारिक संघर्ष और विदेशी आक्रमणों के फलस्वरूप उसके भावी दाय के लक्षण प्रकट होने लगे थे। इस विषय और रचना शिल्प, दोनों ही दृष्टियों से यह प्रसाद का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। भारतीय और पाश्चात्य नाटक पद्धतियों की इतनी सुन्दर और गुंफित बुनावट उनके अन्य किसी नाटक में नहीं दिखती। आचार्य शुक्ल भी 'स्कन्दगुप्त' को ही प्रसाद के नाटकों में सर्वश्रेष्ठ मानते हैं (देखें : हि. सा. का इति. - आचार्य शुक्ल, पृ-39)।

'स्कन्दगुप्त' नाटक का प्रकाशन 1928 में हुआ। भारतीय जीवन के इतिहास में यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण कालखण्ड है। राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक संघर्षों और उथल पुथल से भरा समय है। भारतीय इतिहास के इस कालखण्ड की सभी विशेषताओं से हम अच्छी तरह वाकिफ हैं, इन्हें यहां दुहराने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे समय में बैठकर प्रसाद सुदूर अतीत के 275 ई. से 540 ई. तक फैले गुप्तकाल के एक स्वर्णिम अध्याय को अपनी नाट्य रचना की विषयवस्तु बनाते हैं। गुप्तकाल अतीत भारत के उत्कर्ष का मध्याह्न काल है जब आर्य सभ्यता संस्कृति का झंडा समस्त एशिया तक में लहरा

रहा था। उसी गुप्तवंश का उज्ज्वल नक्षत्र 'स्कन्दगुप्त' नाटक का नायक है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक पांच अंकों में विभाजित लगभग 31 दृश्यों वाला, 130 पृष्ठों का नाटक है। इस नाटक में 25 प्रमुख पात्र हैं जिनमें 17 पात्र पुरुष और 8 पात्र स्त्री हैं। इन 25 पात्रों के अतिरिक्त भी कई ऐसे पात्र हैं जो संवादों में सक्रिय न होते हुए भी दृश्यों में सक्रिय हैं। इनमें युद्धरत सैनिक, प्रहरी, महाप्रतिहार, दंडनायक आदि गिने जा सकते हैं।

पांच अंकों और 25 पात्रों के माध्यम से बुनी गई 'स्कन्दगुप्त' नाटक की मूल कथा को यदि हम संक्षेप में बताना चाहें तो कुमारगुप्त की हत्या, स्कन्दगुप्त की विमाता (कुमारगुप्त की दूसरी पत्नी अनन्त देवी) के द्वारा अपने सहयोगियों के साथ मिलकर पुरगुप्त (कुमारगुप्त के छोटे पुत्र) को राजसिंहासन देने की चेष्टा, स्कन्दगुप्त और उनकी माता देवकी की भी हत्या का षड्यंत्र, स्कन्दगुप्त द्वारा हूणों को देश की सीमा से बाहर खदेड़ना, मालव और मगध की सुरक्षा, मालव कुमारी देवसेना के प्रति प्रणय भाव, देवसेना का त्याग, स्कन्दगुप्त की विरक्ति और पुरगुप्त को राजसिंहासन सौंपना, यही स्कन्दगुप्त नाटक की मूलकथा है। इस पूरी कथा को प्रसाद जी ने ऐतिहासिक तथ्यों, इतिहास ग्रन्थों, शिलालेखों आदि की प्रामाणिकता, अपने अनुमान और कल्पनाशीलता से बुना है। अर्थात प्रसाद जी के इस नाटक को वस्तु विन्यास की दृष्टि से तीन स्तरों पर देखा जा सकता है- इतिहास पर आश्रित, अनुमान के द्वारा रचने की पद्धति और शुद्ध कल्पना के आधार पर। नाटक के नारी पात्र प्रायः सभी कल्पनाश्रित ही हैं। यह प्रसाद की प्रतिभा का कमाल ही है कि तीनों स्तर एक दूसरे से द्वन्द्वात्मक संबंधों से जुड़े हुए हैं। इतिहास की अंगुली पकड़कर, अनुमान की सीढ़ियां चढ़ते हुए प्रसाद अपनी कल्पना शक्ति से स्कन्दगुप्त के नितांत व्यक्तिगत जीवन के गह्वर में भी झांक आते हैं, न सिर्फ झांक आते हैं अपितु ऐसा प्रकाशित बिम्ब सृजित करते हैं कि पाठक भी समानुभूति के स्तर पर 'स्कन्दगुप्त' को समझने में समर्थ हो पाता है। प्रसाद की कल्पना ने स्कन्दगुप्त नाटक की संवेदनात्मकता को अपनी आभा से और भी घनत्व प्रदान किया है।

भारतीय नाट्य पद्धति के अनुसार इस नाटक में *कार्यावस्था* जिसमें प्रारंभ और प्रयत्न तथा अंग्रेजी शैली के अनुसार (जिसे प्रारंभ और विकास कहते हैं) अर्थपद्धति तथा संधियों की तीसरे अंक की समाप्ति तक *प्राप्तावस्था* स्थापित हो जानी चाहिए। प्रसाद ने यहां पर भारतीय पद्धति की जगह पाश्चात्य शैली के क्लाइमेक्स या चरम सीमा का अनुसरण किया है। इसी के फलस्वरूप हम देखते हैं कि यहां पर स्कन्दगुप्त कष्ट, विरोध और अनिष्ट की पराकाष्ठा तक पहुंच जाता है। भारतीय नाट्य पद्धति के अनुसार चौथे अंक में *फलप्राप्ति* को सुदृढ़ निश्चय की ओर बढ़ जाना चाहिए, किन्तु नाटक में इस अंक तक प्रसाद ने स्कन्दगुप्त को एकाकी निस्सहाय रूप में ही चित्रित किया है। उसकी समस्त शक्तियां ढिलमिल हैं, विश्रृंखल पड़ी हैं, जबकि उसके विरोधी संघदल विदेशी हूणों से अभिसंधि करके गुप्त साम्राज्य की जड़ें हिला देने को कटिबद्ध हैं। यद्यपि यहां अनन्तदेवी और विजया में परस्पर मनोमालिन्य की स्थिति समाप्त हो जाती है, फलतः विरोधी दल की शक्ति के क्षीण होने का संकेत मिलने लगता है और इस प्रकार भारतीय पद्धति अनुसार *नियताप्ति* का भी प्रच्छन्न प्रतिपादन दिखाई देता है। बावजूद इसके पाश्चात्य शैली की *नियति*, नियताप्ति की अपेक्षा अधिक स्पष्ट दृष्टिगोचर है।

नाटक के पंचम और अंतिम अंक में स्कन्दगुप्त के विरोध की समस्त शक्तियां छिन्न भिन्न हो जाती हैं। भारत का अन्तर्विद्रोह और बाह्य विद्रोह, दोनों ही शांत हो जाते हैं। हूण आक्रमणकारी बंदी खिंगिल मुक्त कर दिया जाता है, और वह सिन्धु नदी के इस ओर न आने की प्रतिज्ञा करता है। गुप्त साम्राज्य सुरक्षित हो जाता है। हूण युद्ध के नायक त्यागवीर स्कन्दगुम, पुरगुप्त को रक्त का तिलक लगाकर युद्ध में ही सम्राट घोषित करते हैं। भारतीय नाट्य पद्धित के अनुसार *'फलप्राप्ति'* को अत्यंत प्रभावोत्पादक ढंग से चित्रित किया गया है। इस प्रकार वस्तु विन्यास की दृष्टि से 'स्कन्दगुप्त' नाटक में जयशंकर प्रसाद ने भारतीय और पाश्चात्य नाट्य कलाओं का सुन्दर समन्वय स्थापित किया है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक की लोकप्रियता और महत्ता का यह भी एक बड़ा कारण है। अब 'स्कन्दगुप्त' नाटक की लोकप्रियता और महत्ता का ये भी एक बड़ा कारण है।

खुदीराम बोस कॉलेज, 71/2ए, बिधान सरणी,
कोलकाता-700006, मो.-9830094793

'अन्या से अनन्या' : एक हिस्से की सच्चाई

डॉ. अमरसिंह वधान

यह कहना सही है कि प्रभा खेतान हिन्दी साहित्य में अपने नारीवादी लेखन के कारण ही जानी और पहचानी जाती हैं। उन्होंने समाज में जो सच देखा, भोगा उसी को साहित्य के जरिए समाज के सामने प्रस्तुत किया। आश्चर्य नहीं कि उन्होंने समाज के उस कटु सत्य को उजागर किया है, जिसका सामना करने की हिम्मत कम ही लोगों में होती है अपने प्रेमी और समाज की परंपराओं, रूढ़ियों और कुरीतियों के खिलाफ लड़ने के लिए स्त्री-समाज को एक नई दिशा प्रदान की। उन्होंने स्वयं अपने जीवन में दकियानूसी समाज की परंपराओं को पीछे छोड़ते हुए बाहरी औद्योगिक दुनिया में अपना वर्चस्व स्थापित किया। निरंतर संघर्ष करते हुए विपरीत परिस्थितियों को भी अनुकूल बनाकर सामाजिक स्तर पर अपनी प्रतिभा और शक्ति को प्रमाणित करते हुए एक अलग स्वतंत्र जगह बनाई।

यह जानना रुचिकर है कि वर्ष 2007 में प्रकाशित प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' कई विस्तृत अर्थों और व्यापक धरातलों को अपने भीतर समाहित किए हुए है। इस आत्मकथा की विशेषता यह है कि लेखिका अपने प्रेमी डॉक्टर सर्राफ या अन्य लोगों को दोषी न ठहराकर स्वयं अपनी नियति को समझने, जानने की कोशिश करती है। उन्होंने साहस और ईमानदारी को आत्मकथा लेखन का आधार बनाया है। यह मार्मिक कृति लेखिका के निजी जीवन का आख्यान मात्र नहीं, बल्कि समूची स्त्री जाति को यह संदेश भी है कि प्रेम जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। लेकिन उससे भी आवश्यक है, कठिन परिश्रम द्वारा स्वयं को साधकर अपने पैरों की जमीन को तैयार करना ताकि जिंदगी का बोझ नारी अपने कंधों पर उठा सके। प्रभा खेतान लिखती हैं, "हम औरतें प्रेम को जितना गंभीरता से लेती हैं, उतनी ही गंभीरता से यदि अपना कमा लेतीं तो अच्छा रहता। जितने आँसू डॉक्टर साहब के लिए गिरते हैं, उससे कम पसीना भी यदि बहा सकूँ तो पूरी दुनिया जीत लूँगी।[1]" आत्मकथाकार का यह कथन एक तरफ उनके भीतरी रचनाकार को जगाता है और दूसरी तरफ अन्दर के संवेदनशील मनुष्य की इंसानियत के पक्ष को उजागर करता है।

डॉ. रोहिणी अग्रवाल के शब्दों का समर्थन करते हुए कहें तो 'अन्या से अनन्या' का पहला पाठ हताशा की पीड़ा और आक्रोश दोनों को एक साथ गहराता है। लेकिन दूसरा पाठ अपने को सहेजकर उठने, जूझने और परिस्थिति की कर्ता बनने की अदम्य मानवीय जिद से लबरेज हो युगीन इतिहास को रचने का ऊर्जस्वी बोध देता है। यह अतिक्रमण की पलायनवादी मुद्रा नहीं वैचारिक क्रांति की सक्रिय भूमिका है। यही इस रचना की केन्द्रीय

शक्ति है।[2] कहने की आवश्यकता नहीं कि यह आत्मकथा गहन-गंभीर विषयों के साथ उन्मुक्त आकाश तक फैलती नारी जिंदगी है। परिवार के अंदर-बाहर हिंसा, लूट और दमन से बचने के लिए मध्यवर्गी स्त्री घरेलू गुलामी स्वीकारती है। लेकिन संयुक्त परिवारों में भी उत्पीड़न कम नहीं। आत्मकथा में नफीसा नामक लड़की को घर की चारदीवारी मौत के मुँह तक पहुँचा देती है। प्रभा खेतान ने उसकी हालत के बारे में लिखा है, "नफीसा भूखी रहती थी, उसका भाई आलमगीर सारे पैसे दारू की भट्ठी में झोंक आता। इधर भाई तो उधर सास, एक ही घर में रहते हुए बेचारी नफीसा पैसे-पैसे के लिए मोहताज रही, बस दम तोड़ दिया उसने।"[3]

यह कहना महत्वपूर्ण है कि आत्म-सम्मान की कमी मुख्यतः संयुक्त परिवार की अशिक्षित स्त्रियों का स्थायी भाव है, जिसमें प्रभा खेतान की माँ भी शामिल है। माँ सारा दिन बच्चों को डाँटती रहती है, अपनी किस्मत को कोसती है। इधर बिना विवाह किए प्रभा खेतान और डॉक्टर सर्राफ का प्रेम आजीवन रहा। गौर करने की बात यह है कि लेखिका परंपरागत विवाह संस्था के नियमों को नहीं अपनाती है, यह जानते हुए भी कि उसका प्रेमी विवाहित पुरुष है। जब तक डॉक्टर सर्राफ की मृत्यु नहीं हो जाती, वह अपने प्रेम संबंध को बखूभी निभाती है। आजीवन शादी भी नहीं करती है। वैसे लेखिका के प्रेम प्रसंग में सुख-दुःख दोनों का मिश्रण है। उनके जीवन में डॉक्टर सर्राफ के साथ सुखद पल आए तो वह दौर भी आया जब प्रभा खेतान को स्वयं अपने से ही नफरत होने लगती है। कभी उन्हें अपने उद्योग धन्धे, पढ़ाई-लिखाई, स्वतंत्र अस्तित्व पर गर्व होता है तो दूसरे ही पल विवाह संस्था अपने ऊपर हावी होती दिखाई देती है। वह हर जगह स्वयं को अपमानित महसूस करती है। डॉक्टर सर्राफ भी कभी प्रभा खेतान को डाँटते हैं तो अकेले में उनके सामने रोने भी लगते हैं, साथ न छोड़ने की फरियाद तक करते हैं।

विवाह संस्था के संदर्भ में प्रभा खेतान का मानना है, "मेरी राय में विवाह एक ओवररेटेड संस्था है। मैं इस संस्था को ज्यादा तरजीह देने से इनकार करती हूँ, फिर जो कुछ भी है, वह मेरे और डॉक्टर साहब के बीच है, बिल्कुल हमारा निजी कोना।"[4] सब कुछ होते हुए भी प्रभा खेतान के मन में शादी की दबी हुई ललक अवश्य थी ताकि वह रखैल शब्द से मुक्ति पा सके। उनके मन में बार-बार विचार आता है कि केवल पत्नी होने के कारण ही डॉक्टर सर्राफ की पत्नी सावित्री की सामाजिक हैसियत उनसे ज्यादा है। इस प्रश्न पर प्रभा खेतान स्वयं को कचोटती है। वह कहती है, "मैं क्या लगती थी डॉक्टर साहब की? मैं क्यों ऐसे उनके साथ चली आई? प्रियतमा, मिस्ट्रेस, शायद आधी पत्नी, पूरी पत्नी तो मैं कभी नहीं बन सकती, क्योंकि एक पत्नी पहले से ही मौजूद थी। इस रिश्ते को नाम नहीं दे पाऊँगी या फिर सीधे-सीधे उसे रखैल कहो ना।"[5]

यहाँ ध्यान दिलाना आवश्यक है कि प्रभा खेतान आजीवन प्रेमिका ही बनी रही, डॉक्टर सर्राफ के साथ अपने संबंधों की सफाई देते-देते वह थकान और पराजित महसूस करती है। उस समय उसकी शारीरिक-मानसिक हालत इतनी बिगड़ जाती है कि वह कह उठती है, "मुझे अपने आप से इतनी घृणा होती है कि मैं मर क्यों नहीं जाती। ऐसी स्थिति में डॉक्टर साहब समझाते हैं, आखिर तुम इतनी हिस्टिरिक क्यों हो जाती हो? क्या शादी ही सब कुछ है?"[6] लेखिका ने अपनी आत्मकथा में दाम्पत्येतर संबंध का विश्वसनीय वर्णन किया है। उनका लक्ष्य अपने चरित्र को दिखाना नहीं, बल्कि समाज में एक हिस्से की सच्चाई को सामने लाना है जिसकी आड़ में पुरुष व्यभिचार को बढ़ावा देता है। प्रभा खेतान संबंधों में सामाजिक मान्यताओं को अहमियत नहीं देती। वह डॉक्टर सर्राफ की अपेक्षा अपने पक्ष पर ज्यादा अडिग और ईमानदार है। वह उनके साथ अपने प्रेम संबंधों को अपराध नहीं मानती। यह आत्मघाती निर्णय उन्होंने स्वयं ही लिया था। वह अपनी और डॉक्टर सर्राफ की इच्छाओं को प्राथमिकता देती है।

आत्मकथाकार प्रभा खेतान अपनी कठिनाई को स्वीकारती हुई कहती हैं, "हमारा अपराध था कि हम प्यार करते थे, वैसे ही जैसे हजारों स्त्री-पुरुष करते हैं। लेकिन इन हजारों स्त्री-पुरुषों की शादी हो जाती है और यदि शादी नहीं होती तो वे अलग-अलग हो

जाते हैं। त्रासदी तो यह थी कि न हमारी शादी हो सकती थी और न हम अलग हो पा रहे थे। क्या इन सामाजिक मान्यताओं से पहले कोई समाज नहीं था? क्या उस समाज में स्त्री-पुरुष के विवाहेतर संबंध नहीं हुआ करते थे?"[7] डॉक्टर सर्राफ इस संबंध में दोहरी सुरक्षा अपना हुए हैं। वे न तो अपने बीवी-बच्चों को नाराज करते हैं और न ही अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा से समझौता करते हैं। उन्हें प्रभा खेतान का प्यार भी चाहिए और इज्जत भी। असल में, डॉक्टर सर्राफ भी सामंती पुरुष हैं, जो चाहते तो सब कुछ हैं, लेकिन जावाबदेही हमेशा प्रभा खेतान के कंधों पर रखते हैं। सार्वजनिक जगहों, कार्यक्रमों में प्रभा खेतान को आगे आकर अपने संबंधों के बारे में स्थिति को सँभालना पड़ता है। कहीं-कहीं वह अपने आप को डॉक्टर सर्राफ की पत्नी के प्रति दोषी भी समझती हैं। प्रभा खेतान जानती हैं कि स्त्री होना अपराध नहीं है, लेकिन संबंधों के निर्णायक क्षणों में नारीत्व की आँसू भरी नियति स्वीकार कर लेना बहुत बड़ा अपराध है। दिलचस्प है कि प्रभा खेतान ने सामाजिक मान्यताओं को नकारकर आजीवन अपने संबंधों को निभाया।

इसी दौरान एक दूसरा पुरुष भी प्रभा खेतान के जीवन में आया, किन्तु वह महज दैहिक आकर्षण था, जो कुछ ही दिनों में समाप्त हो जाता है। अमेरिका प्रवास के दौरान प्रभा खेतान मार्था की ओर से समलैंगिक संबंध बनाने के लिए की गई पहल को भी अस्वीकार कर देती है। एक भारतीय स्त्री होने के नाते उनका मन ऐसे संबंधों की इजाजत नहीं देता। मन के किसी गहरे कोने में सामाजिक मान्यताएँ भले ही दबाव बनाती हों, लेकिन वे समाज के झूठे पाखंडों तथा रीति रिवाजों के लिए स्वयं का अवमूल्यन नहीं करती। वह पत्नीत्व, स्त्रीत्व आदि को पितृसत्ता का मिथक मानते हुए यह बताती है कि पुरुष हमेशा कमजोर स्त्री से ही प्यार करता है तथा अपने से ज्यादा सबल स्त्री, पुरुष में चिढ़ पैदा करती है। प्रभा खेतान के संबंधों के संदर्भ में कहा जा सकता है कि सामर्थ्य स्त्री और पुरुष में अलग-अलग नहीं होती, जो हिम्मत करके जुटा ले, उसी की हो जाती है। प्रभा खेतान ने भारतीय कामकाजी महिला की उपलब्धि, मेहनत और अस्तित्व की लड़ाई को विदेशों तक पहुँचाया। समाज फिर भी उनको बुरी स्त्री समझता है। लेखिका बताना चाहती है कि स्त्री को आँसू और भावुकता में बहने की बजाय संघर्ष का रास्ता अपनाना पड़ेगा, तभी वह समाज में अपना एक अलग मुकाम हासिल कर सकती है।

प्रभा खेतान अपनी आत्मकथा में समाज में प्रचलित 'रखैल' का साँचा-ढाँचा तोड़ती है, क्योंकि वह डॉक्टर सर्राफ या किसी अन्य पर आश्रित नहीं है। वह दर्शन, उद्योग जगत, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र की समझ रखने वाली बोल्ड नारी है। यहाँ तक कि कई बार डॉक्टर सर्राफ भी उनके व्यक्तित्व के आगे बौने नजर आते हैं। इसे स्पष्ट करते हुए लेखिका इस आत्मकथा में कहती हैं, "कमरे की दीवार को घूरते हुए उन्होंने कहा, तुम्हारा प्यार मुझे छोटा बना देता है, मैं अपनी ही नजर में गिर जाता हूँ। आखिर मुझे अधिकार क्या है कि एक विवाहित पुरुष होते हुए अविवाहित लड़की की जिंदगी से खेलूँ।"[8] प्रभा खेतान अपनी अत्मकथा में अपने ठोस व्यक्तित्व का परिचय इस प्रकार देती है, "मैंने अपने आपको बचाया है, अपने मूल्यों को जीवन में संजोया है..... बार-बार टूटी हूँ.... पर कहीं तो चोट के निशान नहीं..... दुनिया के पैरों तले रौंदी गई, पर मैं मिट्टी के लोंदे में परिवर्तित नहीं हो पाई। इस उम्र में भी एक पूरी-की-पूरी औरत हूँ, जो जिंदगी को झेल नहीं रही बल्कि हँसते हुए जी रही हूँ, जिसे अपनी उपलब्धियों पर नाज है।"

यह भी लक्षणीय है कि प्रभा खेतान के व्यक्तित्व में ईमानदारी की झलक है। उन्होंने गाँव की मारवाड़ी संस्कृति से ऊपर उठकर विदेशों तक की यात्रा की। वहाँ से ब्यूटी थरैपी का कोर्स करके अपना अलग व्यवसाय स्थापित किया। प्रभा खेतान ने व्यापार जगत में (चमड़े का व्यवसाय) भी अपने बलबूते पर अर्थोपार्जन किया। रात-दिन मेहनत करके विदेशों में पैदल घूम-घूम कर अपने निजी अस्तित्व की नींव रखी। उन्होंने अपने व्यवसाय की देख-रेख, प्रबंधन, विदेश यात्रा आदि समस्त कार्य स्वयं संपन्न किए। वे अपनी आत्मकथा में लिखिती हैं, "औरत के लिए केवल प्यार ही काफी नहीं। व्यक्ति बनने के लिए उसे

और भी बहुत चाहिए। धन-मान, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सभी कुछ। जीवन शुरू करने के लिए उसे भी पुरुष के बराबर जमीन चाहिए।"[10] प्रभा खेतान अपने प्रेम संबंध को भी स्वतंत्र रूप से स्वीकार करके चुनौतियों के लिए तैयार रहती हैं। जब डॉक्टर सर्राफ उसको साधारण स्त्री समझकर केवल भोग की वस्तु समझते हैं तो वह उन्हें दो-टूक जवाब देती लिखती हैं, "उनके हाथ से कलम छीनकर मैंने दीवार पर दे मारा, डॉक्टर साहब, आप मुझे इस तरह खारिज नहीं कर सकते। मैं उन औरतों में नहीं जो अब तक आप के पास आती-जाती रहीं।"[11] यह कह दें तो मंतव्य अधिक स्पष्ट हो जाए कि रिश्ते जब बनते हैं तो परिवार बनता है, समाज बनता है, लेकिन जब वही संबंध दूरियों का कारण बनते हैं तो रिश्ते बोझ लगने लगते हैं और मन के किसी कोने में सारी उम्र बुझी हुई राख की तरह सुलगते रहते हैं।

प्रभा खेतान का अपनी माँ के साथ संबंध सामान्य माँ-बेटी का कभी नहीं रहा। माँ से ज्यादा दाई माँ करीब रही। अपनी बेटी के प्रेम प्रसंग का पता चलने पर माँ जो पलायनवादी सुझाव देती है, उसका पर्णन प्रभा खेतान 'अन्या से अनन्या' में इस प्रकार करती हैं- माँ कहती है, "बेटी वहीं रह जाना, यहाँ लौटने की जरूरत नहीं। कोई मन पसंद लड़का मिले तो उससे शादी भी कर लेना।"[12] प्रभा खेतान का अपनी माँ के संबंध में कहना है, "स्वभाव से अम्मा चिड़चिड़ी थी। वैसे अम्मा के क्रोध का शिकार सबसे अधिक मैं होती। मुझे लगता स्त्री होना मात्र अम्मा की नजर में पाप है, एक हीन स्थिति है, गुलामों का जत्था है जो बिना मालिक के जी नहीं पाएगा।"[13] जाहिर तौर पर प्रभा खेतान को अपनी माँ से कोई भावनात्मक सहयोग मिलने की बजाय निरंतर उपेक्षा और कुंठा ही मिली। नतीजतन प्रभा खेतान माँ से दूर होती चली गई। उन्होंने संघर्ष का रास्ता अपनाया और सामाजिक जीवन में स्वयं अपने दम पर प्रतिष्ठा एवं पहचान अर्जित की।

यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' एक संघर्षशील एवं परिश्रमी नारी की आत्मकथा है। लेखिका की त्रासदी उनके भावुक निर्णय में नहीं, बल्कि निर्णय लेने को बाध्य करती अमानवीय स्थितियों में निहित है, जिन्हें वैयक्तिक स्तर पर हर देश-काल की नारी अमूमन झेलती आई है। लेखिका में अदम्य साहस है जो जीवन में जीवनी शक्ति की स्फूर्ति भरकर उन्हें अपने और स्थितियों के आर-पार देखने का विवेक देता है। ऐसा साहस जो जीत की भावी रणनीति बनाता है और क्षितिज को समूचा बाँध लेने से कम किसी भी समझौते पर हस्ताक्षर नहीं करना चाहता। प्रभा खेतान दृढ़ विश्वास से लिखती हैं, "मैं अपने जीवन को आँसुओं में नहीं बहा सकती। क्या एक बूँद आँसू में स्त्री का सारा ब्रह्मांड समा जाए? किसलिए?"[14] यह माना जाना चाहिए कि 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा सामाजिक जीवन के संघर्ष क्षेत्र में प्रतिष्ठा एवं पहचान पाने के लिए किए गए स्त्री संघर्ष की महागाथा है। इस आत्मकथा में यह भी संदेशित है कि स्त्री की वास्तविक स्वतंत्रता उसकी मानसिक मुक्ति, संस्कारों से मुक्ति एवं रूढ़ छवियों के पारंपरिक संजाल से मुक्ति में ही है। बड़ा सच यह है कि 'अन्या से अनन्या' प्रभा खेतान के अपने जीवन रूपी महाकाव्य का सबसे उज्ज्वल सर्ग है।

संदर्भ

1. खेतान, प्रभा : अन्या से अनन्या, नई दिल्ली, राजमकल प्रकाशन, प्रा. लि. 2007, पृ. 15। **2.** बिष्ट, पंकज (सं.) : समयांतर, जिंदा रहने की जिद, अंक जून, 2006। **3.** खेतान, प्रभा : अन्या से अनन्या, नई दिल्ली, राजमकल प्रकाशन, प्रा. लि. 2007, पृ. 7। **4.** वही, पृ. 85। **5.** वही, पृ. 8। **6.** वही, पृ. 13। **7.** वही, पृ. 175-176। **8.** वही, पृ. 80। **9.** वही, पृ. 29। **10.** वही, पृ. 257। **11.** वही, पृ. 75। **12.** वही, पृ. 106। **13.** वही, पृ. 37। **14.** वही, पृ. 45।

(7-8 वर्ष पूर्व मैंने एक कार्यक्रम में संयोगवश एक सज्जन (जो घोषित रूप से साम्यवादी हैं) के सामने प्रभाजी और उनके लेखन का जिक्र कर दिया, उनके चेहरे पर घृणास्पद आक्रोश झलका और उन्होंने 'हूंह' कर थूक दिया। 'एक हिस्से की सच्चाई' में यह भी एक सच्चाई है। पुरुष और पुरुष प्रधान समाज के लिए स्त्री, अन्य बहुत सी चीजों के अलावा 'इज्जत' भी होती है। - संपादक)

निदेशक-उच्चतर शिक्षा एवं शोध केन्द्र

3150, सेक्टर 24-डी, चंडीगढ़ - 160023

मो. 9876301085

मन्नू भण्डारी की कहानियों में नारी-विमर्श

डॉ. गरिमा डिमरी

आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में मन्नू भण्डारी का अग्रणी स्थान है। मन्नू जी की कहानियों में नारी-जीवन के उन अन्तरंग अनुभवों को विशेष अभिव्यक्ति दी गई है जो उनके नितान्त अपने हैं तथा पुरुष कहानीकारों की रचनाओं में प्रायः नहीं मिलते। मन्नू भण्डारी ने अपनी रचनाओं में 'नारी जीवन' का सशक्त और यथार्थ चित्रण किया है। मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य में नारी की स्थिति उसके प्रेम के सम्बन्ध में दृष्टिकोण, दाम्पत्य जीवन, संयुक्त परिवार और कामकाजी जीवन के माध्यम से प्रदर्शित की गयी है। इनकी कहानियों में दाम्पत्य जीवन में आ रहे बदलावों का रूप देखने को मिलता है। दाम्पत्य जीवन का आधार विश्वास है। इसके अभाव में पति-पत्नी अभिशप्त रहते हैं। विधवा और परित्यक्ता नारियों की समस्याओं का आन्तरिक और बाह्य चित्रण किया गया है। इन्होंने अपने कथा साहित्य में पुरुष की अनिवार्यता को स्वीकार किया है। नारी सबकुछ होकर भी नारी है और नारी को एक साथी, एक सहारा, परिवार और बच्चे चाहिए। इसके अतिरिक्त नारी में विवाह के प्रति प्रतिरोध भी उनके कथा साहित्य में चित्रित हुआ है। इनके कथा साहित्य में समाज सापेक्षता, अन्याय-अत्याचार का विरोध, सार्थक मूल्यों की रक्षा का प्रयत्न दृष्टिगत होता है। मन्नू जी भारतीय संस्कृति की समर्थक हैं परन्तु नारी-शोषण का विरोध करती हैं।

1957 में प्रकाशित मन्नू भण्डारी के प्रथम कहानी संग्रह **'मैं हार गई'** की 'ईसा के घर इन्सान' कहानी में मन्नू जी ने धार्मिक कुप्रवृत्तियों की ओर संकेत किया है तथा धर्म के नाम पर होने वाले शोषण के विरुद्ध आवाज उठायी है। पहाड़ों के बीच घिरे हुए शहर में मिशनरी लड़कियों का कॉलेज है। इस कॉलेज में मदर, फादर, टीचर्स लड़कियाँ आदि रहते हैं। वहाँ सभी को नियम कानून के साथ रहना पड़ता था और किसी तरह की भूल के कारण सजा होती थी। कहा जाता है कि कभी-कभी ज्यादा सख्ती इंसान को विद्रोही बना देती है। इस कहानी में सिस्टर एंजिला का व्यवहार भी विद्रोही हो चुका था। वह कहती हैं कि मैं अपने रूप को इस चर्च की दीवारों के भीतर नष्ट नहीं होने दूंगी और वहाँ से भाग जाती है लेकिन पकड़ी जाती है।" वह पागलों जैसी हरकत करती है। इस कारण फादर के पास भेजी जाती है, फिर भी वह अपनी बातों पर अडिग रहती है और फादर के ढोंग का पर्दाफाश करती है। उसकी प्रेरणा से लूसी भी भाग जाती है। गिरजाघरों में पादरी, युवतियों के मानसिक संस्कारों के नाम पर अपनी काम तृप्ति कर जिह्वा बंद कर देते हैं और नारी वहाँ आँखें बन्द किए सब सहन करती

हैं लेकिन एंजिला इस अन्याय के प्रति विद्रोह करती है, धर्म की आड़ में रहकर नारी का शोषण करने वाले फादर का भांडा फोड़ देती है। वह नारी-शोषण के खिलाफ आवाज उठाती है और नारी की स्वतन्त्रता चाहती है।"[1] प्रस्तुत कहानी में लेखिका ने एंजिला के माध्यम से ईसाई मिशनरी संस्थानों में प्रचलित अनैतिक भ्रष्टाचार का पर्दाफाश किया है।

'गीत का चुम्बन' कहानी में लेखिका ने कनिका के माध्यम से संस्कार और आकांक्षा के द्वंद्व की कहानी का चित्रण किया है। कनिका एक सुशिक्षित और संस्कार-सम्पन्न युवती है और एक अच्छी गायिका भी है। अपनी मौसी के कहने पर कनिका माथुर साहब के यहाँ गाना-गाने पहुँचती है। उस समारोह में निखिल भी आता है, जो कि एक कवि है। कनिका उस समारोह में निखिल का लिखा गीत गाती है, जो निखिल को बहुत पसंद आता है। निखिल से परिचय होने के बाद कनिका रेडियो पर गाने लगती है और काफी नाम कमाती है। एक दिन दोनों आपस में स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध में चर्चा करते हैं। निखिल विवाह से पूर्व स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को जायज समझता है परन्तु कनिका का तर्क था कि हम भी बड़ी बातें कर लें किंतु व्यवहार में आगे नहीं बढ़ पाते। वह निखिल के इस मत को कोरा सिद्धांत मात्र मानती है। ऐसी अलग विचारधारा होने के बावजूद निखिल कनिका को बाँहों में डालकर चूम लेता है और कनिका निखिल को चाँटा मार देती है। निखिल जैसे युवक के सम्पर्क में आने के बाद वह यह सोचती रहती है कि 'क्या लड़के और लड़कियों की मित्रता का अंत इसके (सेक्स) अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता।'[2] निखिल कनिका को एक सप्ताह के बाद पत्र लिखकर माफी माँगता है। प्रस्तुत कहानी परम्पराओं और संस्कारों से जकड़ी नारी कनिका के प्रेम की कुंठा को चित्रित करती है। कनिका निखिल से प्रेम तो करती है परन्तु व्यक्त नहीं कर पाती। उन दोनें के प्रेम के मध्य कोई भी पारिवारिक या आर्थिक बाधायें नहीं होती अपितु कनिका के संस्कार ही इसके लिए जिम्मेदार होते हैं। इस मनोवैज्ञानिक कहानी में लेखिका ने कनिका के मानसिक अन्तर्द्वन्द को चित्रित किया है।

'जीती बाजी की हार' कहानी में मातृत्व के बिना नारी के अधूरेपन पर टिप्पणी की गई है। आशा, नलिनी और मुरला तीनों सखियाँ एक ही कॉलेज में पढ़ती हैं। आशा और नलिनी का विवाह हो जाता है परन्तु मुरला अपने सिद्धान्तों पर अडिग रहती है। वह एम.ए. में पूरी यूनिवर्सिटी में प्रथम स्थान प्राप्त करती है और अपना शोधकार्य आरम्भ करती है। वह अविवाहित रहना चाहती है और आशा से इस बात पर शर्त लगाती है कि मैं जीवन भर अविवाहित रहूँगी। आशा का मानना है कि "मुरला हो चाहे कोई, इतना जानती हूँ कि नारी को एक साथी चाहिए, एक सहारा चाहिए, परिवार चाहिए और बच्चे। उच्च से उच्च शिक्षा भी उसकी इस भावना को नहीं कुचल सकती।"[3] तो मुरला कहती है सहारा उसे चाहिए होता है जो स्वयं को अबला समझे, मैं सबला हूँ, मुझे किसी का सहारा नहीं चाहिए और बच्चों को तो मुरला उन्नति में बाधक समझती है। कुछ वर्षों पश्चात् दोनों सहेलियाँ मिलती हैं और आशा जीती बाजी की याद दिलाते हुए मुरला से इनाम माँगने के लिए कहती है, तब मुरला आशा की पाँच वर्षीय बेटी को माँगती है। इस प्रकार मुरला बाजी जीतकर भी हार जाती है। प्रस्तुत कहानी में लेखिका ने एक शिक्षित नारी की मनः स्थिति का चित्रण किया है और अन्त में नारी पर मातृत्व भावना की विजय दर्शाने में लेखिका सफल रही है।

'एक कमजोर लड़की की कहानी' मन्नू भण्डारी की संस्कारों से अक्रान्त आधुनिक नारी की विडम्बना का नाम है, इस कहानी की नायिका 'रूप' है। जब वह तीन साल की थी, तब उसकी माँ उसे छोड़कर चल बसी, जो लड़की पहले जिद्दी और हठीली थी, सौतेली माँ के आने से उसकी चंचलता, उल्लास और हौसले

हवा हो गये। कम उम्र में ही वह प्रौढ़ हो गयी। अपनी शिक्षा पूरी करने के लिये वह मामा के घर चली जाती है। वहाँ उसे ललित नाम के लड़के से प्रेम हो जाता है। रूप बोर्ड की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर लेती है, फिर कॉलेज ज्वाइन करने और विषय निर्धारित करने की तैयारी शुरू हो जाती है। ललित के साथ सलाह-मशविरा करके वह ललित के अनुरूप विषय लेती है। ललित पढ़ाई के लिए विदेश चला जाता है और रूप को जाते समय कहता है "देख मैं तुझे अपनी रूप सौंपकर जा रहा हूँ, इस विश्वास के साथ कि लौटूँगा तो मुझे इसी हालत में लौटा देगी। ऐसा न हो कि मैं लौटूँ और देखूँ कि तूने रूप को किसी और के घर का शृंगार बना दिया है। तू बड़ी कमजोर है, इसी से मन डरता है। बोल रूप, मेरी धरोहर को रख सकेगी न? रूप, तब ऐसी नौबत ही नहीं आयेगी, कहकर अश्रु नयनों से ललित को विदा कर देती है।"[4] ललित के विदेश जाने के बाद रूप का विवाह थोड़ी ज्यादा उम्र वाले वकील के साथ हो जाता है। रूप के पति सहृदयी थे तथा अपने कार्य में हमेशा व्यस्त रहते थे, इस कारण ललित के विदेश से लौटने के बाद रूप और ललित भागने की योजना बनाते हैं। रात को 1 बजे दोनों घर से निकलने को तैयार होते हैं तो इसी रात वकील साहब देर से आते हैं। रूप द्वारा देर से आने का कारण पूछने पर वे बताते हैं कि मेरे मित्र की पत्नी शिक्षित होते हुए भी किसी गैर मर्द के साथ भाग गयी। रूप को कहते हैं कि तुम कितनी अच्छी हो, यह सुनकर वह कमजोर पड़ जाती है और ललित के साथ भागने का प्रोग्राम रद्द कर देती है। प्रस्तुत कहानी में रूप, निर्णय लेने की क्षमता न होने से अनेक सुखों से वंचित होती है।

'सयानी बुआ' एक चरित्र प्रधान कहानी है। 'सयानी बुआ' बचपन से ही अनुशासनप्रिय है। उनके घर में काँच की चीजें भी 15 वर्षों तक जैसी की तैसी रहती हैं। पूरा परिवार बुआ के इस आतंक का शिकार है। बुआ के पति अपनी पुत्री अन्नू के बीमार होने से पहाड़ियों में रहने चले गये। एक महीने के पश्चात् उनके पति का पत्र आया और उसमें लिखी पहली पंक्ति पढ़कर बुआ रोने लगी। शायद कोई दुखद घटना घटित हो बिटिया! वास्तविक स्थिति से परिचित होते हुए बुआ रोते-रोते हँसती है और इस पत्र से उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है, क्योंकि अन्नू की बीमारी से ज्यादा उसका पति दो-प्यालों की चिन्ता करते थे। "कहानी का मूल उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों पर व्यंग्य और कटाक्ष करना रहा है, जो जड़ हों, रसमय जीवन को शुष्क बना देते हैं। सचमुच सयानी बुआ के माध्यम से लेखिका एक मानसिक अति पर प्रहार और मौन व्यंग्य करने में बेहद सफल रही है।"[5]

'अभिनेता' कहानी रिक्तता से टूटी संवरी और फिर से टूटी नारी की तस्वीर को उजागर करती है। कहानी का नायक दिलीप और नायिका रंजना हैं। दिलीप विवाहित होकर भी रंजना को अन्धकार में रखकर शादी के स्वप्न दिखाता है। वे दोनों रंगमंच के कलाकार हैं। दिलीप रंजना का आर्थिक शोषण भी करता है। एक दिन रंजना को मेज की दराज से बहुत सारे प्रेम-पत्र प्राप्त होते हैं। जिससे उसके सारे झूठों का पर्दाफाश हो जाता है कि दिलीप शादीशुदा है और एक बच्ची का पिता भी है। यह सब जानकर वह टूट जाती है क्योंकि वह दिलीप से बहुत प्यार करती है। वह दिलीप को पत्र लिखती है --"दिलीप मैं तो केवल रंगमंच पर ही अभिनय करती हूँ पर तुमहारा तो सारा जीवन ही अभिनय है। बड़े ऊँचे कलाकार और सधे हुए अभिनेता हो तुम, मेरे।"[6] रंजना के जीवन की यह त्रसादी ही है कि आरम्भ से लेकर अन्त तक एकाकीपन निराशा और व्यथा आदि प्रत्ययों ने उसे चलती-फिरती लाश बनाकर रख दिया है।

'दीवार, बच्चे और बरसात' कहानी में रानी बीबी ने परम्परागत स्त्री के पतिव्रत धर्म को तोड़कर समानाधिकार की दिशा में कदम उठाया है। रानी बीबी एक पढ़ी-लिखी युवती है जो एक अनमेल

व्यक्ति से ब्याही गई है। उसका पति उसके आधुनिक विचार और स्त्री पुरुष समानाधिकार की दिशा में उठने वाले कदमों को बर्दाश्त नहीं कर पाता। परिणामस्वरूप दोनों में हमेशा कहा-सुनी होने लगती है। "पड़ोस की भग्गो भाभी" जैसी परम्परागत पतिव्रतधर्म और पत्नीत्व के रंग में सराबोर दूसरी औरतें, रानी बीबी की न सिर्फ कटु आलोचना करके दम लेती, वरन् उससे भी आगे बढ़कर इस पढ़ाई निगोड़ी ने औरतों का धरम-करम तो सब डुबो दिया, के शब्दों में शिक्षा प्राप्त स्त्रियों की खुलेआम भर्त्सना करने लग जाती हैं।"[7]एक रात्रि को रानी देर से घर में पहुँचती है तो उसका पति उसे घर से निकाल देता है। रानी अपने सारे जेवर उतारकर वहीं घर में फेंकते हुए कहती है कि मैं किसी के आश्रय में नहीं रह सकती और खुद कमाकर खा सकती हूँ। प्रस्तुत कहानी की नायिका स्थापित मूल्य और नैतिकता को खुली चुनौती देने के साथ ही सदियों पुरानी पतिव्रता धर्म और पत्नीत्व की संकल्पना को तहस-नहस कर साहसिक कदम उठाती है।

'कील और कसक' कहानी यौन अतृप्ति के परिणाम की ओर संकेत करती है। कहानी की नायिका रानी का विवाह कुरूप कैलाश से हुआ था। शेखर, कैलाश के घर में पेइंग गेस्ट के रूप में रहता है। पति से अतृप्त होने के कारण नायिका परपुरुष शेखर की ओर आकृष्ट होती है परन्तु कुछ समय पश्चात् शेखर का विवाह हो जाता है। विवाह के बाद शेखर अपनी पत्नी के साथ रानी के कमरे के सामने बने कमरे में रहने लगता है। शेखर की पत्नी को लेकर रानी के मन में रह-रहकर कुछ कसक रहा था। रानी के मन में उठ रही कसक ने प्रतिहिंसा का रूप धारण कर लिया और वह हमेशा शेखर की पत्नी से लड़ाई-झगड़ा करने लगी। यह देखकर कैलाश ने वहाँ से जाने के लिये दूसरा घर ले लिया। कसकते मन से रानी भी अपने पति के साथ चली जाती है। जैसे ही रानी तांगे में बैठती है तो तांगे से निकली हुई कील रानी की ऊँगली में लग जाती है और खून निकलने लगता है। पुरानी स्मृतियाँ उसके मस्तक में आ जाती हैं और वह अपनी उँगली को दाँतों से दबा लेती है। कटी उँगली से हाथ में कसक तो होनी ही थी, पर यह कसक उसके समूचे तन-मन को घेर चुकी थी। कहानी के प्रारम्भ से अन्त तक रानी के तन-मन में एक प्रकार की कसक व्याप्त है। यह कसक पति के रूखे स्वभाव और शेखर द्वारा उसकी अतृप्त पड़ी इच्छाओं को तृप्त न कर देने की है। रानी की इस कसक की परिणति अन्त में कभी समाप्त न होने वाली निराशा, व्यथा और विसंगति में ही हो जाती है।

तीन निगाहों की एक तस्वीर : सन् 1958 में प्रकाशित 'तीन निगाहों की एक तस्वीर' मन्नू भण्डारी का दूसरा कहानी संग्रह है। इसकी 'तीन निगाहों की एक तस्वीर' कहानी में लेखिका ने नायिका 'दर्शना' की अत्मपीड़ा का चित्रण किया है। दर्शना अपने टी.बी. से बीमार पति की सेवा करती है। उसका अधिकांश समय पति की सेवा में ही निकल जाता है। दर्शना ने अपने घर का एक कमरा लेखक हरीश को किराये पर दिया है। परिस्थितिवश हरीश और दर्शना के बीच आत्मीयता स्थापित हो जाती है। जब उसके पति को इस बात का पता चलता है तो वह उसे पीटता है और घर से निकाल देता है। कुछ समय बाद पति की मृत्यु हो जाने से दर्शना दुखी हो जाती है। वह नौकरी करने लगती है। दर्शना प्रेम चाहती है, साथ चाहती है किन्तु दया या भीख नहीं चाहती। दर्शना की आत्मनिर्भरता पाठक को आकर्षित करती है।

'अकेली' अकेली कहानी पारिवारिक सन्दर्भ को आधार बनाकर लिखी गई कहानी है। सोमा बुआ नामक एक वृद्धा जिसका जवान बेटा हरखू मर गया है और पति भी संन्यासी होकर चला गया है, इस कहानी के केन्द्र हैं। फलस्वरूप वह पास-पड़ोस के सहारे ही अपना जीवन यापन करती है। साल में एक माह के लिए ही उसके संन्यासी पति घर आकर रहते हैं। पति की उपस्थिति का यह एक माह का समय

सोमा बुआ के लिए अशान्तिपूर्ण हो जाता है। उनकी मानसिकता उदासी और आन्तरिक पीड़ा से घिर जाती है। बुआ अपने एक रिश्तेदार के यहाँ शादी में जाना चाहती है परन्तु वहाँ से कोई न्यौता नहीं आता। "बुआ का विश्वास है कि इस मंगल-कार्य के अवसर पर तो बुआ को अवश्य ही स्मरण किया जाएगा। इस कल्पना मात्र से बुआ उत्साह से भर जाती है और अपने मृत पुत्र की एकमात्र अँगूठी बेचकर लड़की को भेंट में देने के लिए उपहार आदि खरीदती है। विवाह के आखिरी दिन के अन्तिम क्षण तक वह समधी की ओर से बुलाने की प्रतीक्षा करती है, पर अन्ततः उसे निराश होना पड़ता है।"[8]

'अनचाही गहराईयाँ' कहानी की सुनन्दा अध्यापिका है, वह अपने भाई-भाभी के पास रहती है। शिवनाथ बी.ए. का छात्र है। पढ़ाई की अधिक जानकारी के लिए शिवनाथ सुनंदा के घर आता रहता है, जो कि उसके भाई-भाभी को बिल्कुल भी पसंद नहीं। सुनंदा भी उसे बार-बार घर आने के लिए मना कर देती है। कुछ दिनों बाद अपनी कुछ कठिनाइयों को हल करने के लिए वह सुनंदा को एक पुस्तक देता है, जिसमें प्रेम-पत्र था। यह देखकर सुनंदा शिवनाथ को एक तमाचा जड़ देती है। इस घटना से शिवनाथ आत्महत्या कर लेता है। सुनंदा को यह खबर दूसरे दिन मालूम पड़ती है। सुनंदा के साथी लेक्चरर सुनंदा का निराश प्रेमी कहकर मजाक उड़ाते हैं। तीन दिन बाद एक लड़का प्रेम-पत्र की गलत-फहलमी दूर करता है कि पुस्तक में जो प्रेम-पत्र था, वह मेरा था और मेरे पत्र शिवनाथ लिखता था। सुनंदा उस लड़के को खरी-खोटी सुनाकर अपने कमरे में पहुँचती है और अपने दोनों हाथ काटकर लहू-लुहान कर देती है। वह स्वयं को बहुत बड़ी हत्यारिन समझते हुए आत्मग्लानि महसूस करती है। प्रस्तुत कहानी दरिद्र, जिज्ञासु और ज्ञान-पिपासु शिवनाथ की कहानी है। जिसे अपनी शिक्षिका सुनंदा से असीम लगाव है। यही शिक्षिका भ्रमवश उसकी आत्महत्या का कारण बनती है।

'घुटन' कहानी में लेखिका ने दो स्थितियों में जीवन व्यतीत करने वाली दो नारियों की घुटन का चित्रण किया है। इनमें से एक विवाहित है तो दूसरी विवाह की इच्छुक है। विवाहित प्रतिमा अपने पति की बाँहों में जकड़े जाने से घुटन महसूस करती है। मोना अविवाहित है और अपने प्रेमी के साथ भाग जाना चाहती है। परन्तु उसके घर वाले बाधक बनते हैं। इस कारण वह घुटन महसूस करती है। प्रतिमा और मोना की मनोव्यथाओं का मानसिक अन्तर्द्वन्द लेखिका ने बहुत ही सुन्दर, सटीक और मार्मिक रूप से चित्रित किया है।

'हार' कहानी में स्वतन्त्र व्यक्तित्व के इच्छुक पति-पत्नी के द्वन्द्व का चित्रण बड़े ही कलात्मक ढंग से हुआ है। कहानी की नायिका दीपा राजनीति के माहौल में पली थी। इस कारण वह राजनीति में रुचि लेती थी। दीपा एक राजनीतिक पार्टी में सक्रिय सदस्य बन जाती है। विरोधी पार्टी के शेखर से दीपा का विवाह हो जाता है। दोनों पार्टियाँ उन दोनों को चुनाव में खड़ा कर देती हैं। चुनाव निकट आते ही दीपा और शेखर के सम्बन्धों में तनाव पैदा हो जाता है। दीपा शेखर को मित्र से बात करते हुए सुनती है -- "मेरी जीत की सम्भावना ही मुझे खिन्न बनाये दे रही है। सोचता हूँ मैं हार गया, तो उस लज्जा को सह लूँगा। पुरुष हूँ और सहने का आदी। पर जीत गया तो दीपा का क्या होगा। तुम देखते हो, पगली हो गयी है इसके पीछे, वह हार का धक्का बर्दाश्त नहीं कर सकेगी और सच पूछो तो इसलिए चाहता हूँ कि मैं हार जाऊँ।"[9] इस प्रकार की बातें कर के शेखर दीपा को इमोशनली ब्लैकमेल करता है और वह अपना वोट पति को डाल देती है। उसके इस कदम से उसकी राजनीतिक पार्टी हार जाती है। प्रस्ततु कहानी के माध्यम से लेखिका यह दर्शाना चाहती है कि जब भी नारी आगे बढ़ने की कोशिश करती है तो उसके मार्ग में पुरुष प्रधान समाज किसी न किसी रूप में

बाधक बनकर अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेता है।

यही सच है - सन् 1966 में प्रकाशित मन्नू भण्डारी का तीसरा कहानी संग्रह है। इसकी 'क्षय' कहानी एक संघर्षरत युवती कुन्ती की कहानी है। जिसे लेखिका ने परिस्थितियों से लड़ते-लड़ते टूटते हुए दिखाया है। कुन्ती के पिता क्षय रोगी हैं। परिवार के पालन-पोषण के लिए वह नौकरी करती और ट्यूशन पढ़ाती है। दिन-भर स्कूल में काम करने के बाद उसके पूरे तीन घण्टे अपनी विद्यार्थी सावित्री को ट्यूशन पढ़ाने में अर्पित हो जाते हैं। रोज बसों की भीड़ में धक्के खाती ट्यूशन के लिए पहुँचती है। इतनी मेहनत का उसके स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। कुन्ती बहुत मेहनत से सावित्री को पढ़ाती है किन्तु वह मन्द बुद्धि छात्रा पास नहीं होती। सावित्री की माँ कुन्ती को धन का प्रलोभन देकर उसकी अध्यापिकाओं से मिल-मिलाकर पास करवाने का आग्रह करती है। कुन्ती का मन उसकी माँ के इन विचारों को स्वीकार नहीं कर पाता, परन्तु सावित्री की माँ के अहसानों से दबी होने के कारण अनिच्छा होते हुए भी वह अन्य अध्यापिकाओं से इस बारे में बात करने विद्यालय पहुँचती है। अपने आदर्शवादी स्वभाव के कारण वह सावित्री के लिए किसी से एक शब्द भी नहीं कह पाती। निराश मन से वह वापस लौट जाती है और ऐसा महसूस करती है कि उसके पिता की तरह उसे भी क्षय रोग ने घेर लिया है। प्रस्तुत कहानी में लेखिका ने एक आदर्श और स्वाभिमानी अध्यापिका के जीवन का एक करुणा-जनक चित्र दर्शाया है।

'नकली हीरे' कहानी उच्चवर्ग की नारी की ओर संकेत करती है, जिसके पास सम्पूर्ण सुख-सुविधाएँ हैं, परन्तु वह पति-प्रेम से वंचित है, इन्दु और सरन बहनें हैं। इन्दु एक अध्यापक से प्रेम-विवाह करके पूर्ण और संतुष्ट है, परन्तु उसके विपरीत सरन भौतिक सुखों के मध्य भी अपूर्ण और अकेली है। "नकली हीरे' आभिजात्य वर्ग की एक ऐसी पत्नी की कहानी है जिसके पास सुख-सुविधा व सम्पन्नता के सभी साधन होते हुए भी पति का सान्निध्य एवं वह लगाव नहीं है, जो उसकी साधारण जीवन-यापन करने वाली मध्यवर्गीय छोटी बहन को प्राप्त है।"[10]

'नशा' कहानी में लेखिका ने आनन्दी के माध्यम से भारतीय संस्कृति में ढली हुई नारी का हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। आनन्दी का पति बहुत शराबी था। उसके तीन बच्चे हुए, उनमें से दो मर गये, मात्र एक पुत्र किशून रह गया था। आनन्दी किशून को खूब मेहनत करके पालती है। अपने शराबी पिता को देखते हुए किशून घर छोड़कर चला जाता है। वह कपड़े की दुकान खोलकर विवाह भी कर लेता है। किशून अपनी माँ को अपने घर ले जाने के लिए आता है और आनन्दी भी अपने बेटे के साथ चली जाती है। वहाँ रहकर आनन्दी सिलाई-बुनाई का काम करके अपने शराबी पति के लिए पैसे भेजती है। किशून को यह बात मालूम पड़ जाती है तो वह अपनी माँ को डाँट देता है कि रात-दिन जुटकर सिलाई-बुनाई करने की क्या जरूरत थी। ऐसा ही था तो मुझे बता देती, पैसे मैं भिजवा देता। यह सब-सुनकर आनन्दी की आँखें आँसुओं से भर जाती हैं। यह कहना उचित ही होगा कि भारतीय नारी अपने संस्कारों के लिए स्वयं को मिटा देती है परन्तु संस्कारों से मुक्त नहीं हो पाती।

'रानी माँ का चबूतरा' कहानी की नायिका गुलाबी निम्नवर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। गाँव के सेठ का बेटा दस साल पहले सीतला नामक बीमारी से बीमार हो गया था। बहुत इलाज करवाने के बाद भी जब वह ठीक नहीं हुआ तो उसकी माँ (जिसे रानी माँ कहा गया है), गहरी चिन्ता में डूब गई। संयोग से उनके घर में एक साधु आया और उसने रानी माँ को बताया कि अगर तुम एक सप्ताह तक अन्न-जल त्याग दो तो तुम्हारा बेटा बिल्कुल ठीक हो जाएगा। रानी माँ ने ऐसा ही किया परन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि बेटा तो बच गया किन्तु रानी

माँ के प्राण पखेरू उड़ गए। रानी माँ की याद में ही नगर सेठ ने चबूतरा बनाया। पूर्णिमा तिथि को गाँव की औरतें उस चबूतरे पर पूजा करने आती हैं और अपनी सन्तान के लिए मनौतियाँ माँगती हैं। इन औरतों के विपरीत कहानी की नायिका गुलाबी है। "गुलाबी एक ऐसी नारी है जिसने शराबी पति को घर से निकाल दिया और कठिन परिश्रम करके अपना व बच्चों का पेट पालती रही। उसे कई बार भूखे पेट भी रहना पड़ता। बच्चों को अकेले कोठरी में छोड़ जाने एवं दिन भर कठोर परिश्रम करने के बाद भी उसे पेट भरने जितनी पर्याप्त मजदूरी नहीं मिल पाती है। फिर भी वह किसी के आगे हाथ नहीं पसारती है और न ही कभी गाँव की महिलाओं की तरह 'रानी माँ के चबूतरे' पर जाकर अपना दुःखड़ा रोने को तैयार होती है। अन्त में इसी तरह से मजदूरी करते-करते वह एक दिन अपने बच्चों को अनाथ हालत में छोड़कर इस संसार से विदा हो जाती है।"[12]

'यही सच है' दो नायकों के बीच झूलती हुई दीपा के अन्तर्द्वन्द्व को रेखांकित करने वाली कहानी है। दीपा अपने सहपाठी मित्र निशीथ से प्रेम करती है परन्तु अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् दीपा की निशीथ से अनबन हो जाती है। वह अपने शोध-कार्य में लीन हो जाती है। पिता की मृत्यु और निशीथ से अनबन के बाद दीपा संजय की ओर आकृष्ट होती है। संजय को पाकर दीपा निशीथ को भूल जाती है। संजय जब भी दीपा से मिलता उसके लिए राजनीगंधा का फूल अवश्य लाता। एक साक्षात्कार के लिए दीपा कलकत्ता जाती है। वहाँ उसकी भेंट निशीथ से होती है। निशीथ दीपा की हर समय तत्परता से मदद करता है। यह सब देखकर दीपा के मन में फिर से निशीथ के लिए प्रेम उमड़ आता है और वह सोचती है कि पहला प्रेम ही सच्चा प्रेम होता है। दीपा किसको चाहती है, वह स्वयं नहीं जानती, क्योंकि एक मन को शान्ति देता है तो दूसरा शरीर को। संजय का रजनीगंधा का फूल देना और चुम्बन-आलिंगन देना अच्छा लगता है तो निशीथ का समय पर आकर उसकी चिन्ता करना, नयी साड़ी की तारीफ करना, सुख देता है। दीपा स्वयं निर्णय नहीं ले पाती कि वो इन दोनों को चाहती है या अपने आपको चाहती है। दीपा के मन के इसी अन्तर्द्वन्द्व को लेखिका ने उजागर किया है।

4. एक प्लेट सैलाब - सन् 1968 में प्रकाशित मन्नू भण्डारी का चतुर्थ कहानी संग्रह है। इसकी 'नई नौकरी' कहानी में रमा और कुंदन पति-पत्नी हैं। कुंदन ऑफिस में तथा रमा कॉलेज में नौकरी करती है। कुंदन की नयी नौकरी पर नियुक्ति होने के कारण कुंदन का व्यवहार ही बदल गया। रमा को भविष्य के सुनहरे स्वप्न दिखाते हुए कुंदन उसकी कॉलेज की नौकरी छुड़वा देता है और कहता है कि तुम्हें नौकरी छोड़ने से बिल्कुल अकेलापन महसूस नहीं होगा बल्कि तुम बहुत अच्छा महसूस करोगी। नौकरी छोड़ देने के कारण रमा दस साल तक भी अपनी थीसिस कॉलेज में जमा नहीं कर पाती। पति द्वारा नौकरी छुड़वा देने के बाद उसे पता ही नहीं चलता कि वह क्या करती थी और आज क्या कर रही है। यह सब इतने प्रेम से हुआ कि रमा विरोध ही नहीं कर पायी। प्रस्तुत कहानी में रमा के माध्यम से लेखिका ने पुरुष की साजिश की और नारी की घुटन को अभिव्यक्ति दी गई है।

'बंद दरवाजों का साथ' कहानी में नायिका मंजरी की अन्तर्द्वन्द्वात्मक स्थिति का अत्यन्त सहजता से चित्रण हुआ है। मंजरी प्राध्यापिका थी और अपने पति विपिन के साथ सुखमय वैवाहिक जीवन व्यतीत कर रही थी। कुछ समय पश्चात मंजरी को विपिन की शादी से पूर्व की जिन्दगी का पता चलता है कि विपिन के किसी अन्य स्त्री से सम्बन्ध थे और उससे एक बच्चा भी पैदा हुआ था। इस घटना से दोनों के जीवन में दरार आ जाती है। आत्मनिर्भर होने के कारण वो विपिन का घर छोड़कर चली जाती है और अपने बेटे असित के साथ रहने लगती है। आगे की पढ़ाई के लिए मंजरी अपने बेटे असित को हॉस्टल में रख देती

है और दिलीप नामक युवक से विवाह कर लेती है। कॉलेज की सहकर्मियाँ दूसरा विवाह करने पर मंजरी पर व्यंग्य करती हैं तो वह नौकरी छोड़ देती है। वह सब तरह से अकेली पड़ जाती है। असित के स्कूल से उसे फीस का कार्ड आता है। फीस भरने के नाम पर दिलीप आर्थिक कठिनाई की बात करने लगता है, जिससे पुनः उसके दाम्पत्य जीवन में दरार आ जाती है। इस घटना से आहत होकर उसका जीवन दो टुकड़ों में विभक्त हो जाता है।

'एक बार और' कहानी में लेखिका ने नारी जीवन के प्रथम प्रेम सम्बन्ध को महत्व दिया है। बिन्नी इस कहानी की प्रमुख पात्र है, जो कि अध्यापिका है। सुषमा बिन्नी की बचपन की सहेली है और वे दोनों गाँव में रहती हैं। 14 वर्ष से बिन्नी कुंज नाम के लड़के से प्रेम करती है। कुंज की शादी मधु से हो जाती है फिर भी कुंज बिन्नी से सम्बन्ध बनाये रखना चाहता है। बिन्नी इस सम्बन्ध को तोड़ना चाहती है परन्तु कुंज के मिलने पर वह स्वयं को रोक नहीं पाती, अपनी पत्नी मधु के आदेश से कुंज बिन्नी को किसी और से विवाह करने की सलाह देता है। बिन्नी का भाई उसका विवाह नंदन से करना चाहता है। नंदन उसी गाँव में 'आदिवासियों की विवाह पद्धति' नामक प्रोजेक्ट पर कार्य करने आया हुआ है। बिन्नी की सहेली भी उसे नंदन से परिचय बढ़ाने के लिए कहती है। बिन्नी कुंज के मोह से छूटकर नन्दन से जुड़ना चाहती है। परन्तु क्या करूँ? क्या न करूँ? इसी अन्तर्द्वन्द्व में उलझी रहती है।

'बाँहों का घेरा' कहानी अतृप्त यौन-इच्छाओं को रूपायित करने वाली यथार्थमूलक कहानी है। कहानी की नायिका कम्मो अपने व्यस्त पति मित्तल के समीप जाने को तरसती है। फलस्वरूप उसमें अनेक मानसिक विकृतियाँ जन्म लेती हैं। पति द्वारा अतृप्त होने के कारण उसे अपने पूर्व प्रेमी की स्मृति हो जाती है। कम्मो तनाव और अकेलेपन को झेलती रहती है। यौवनावस्था में उसके जीवन में शैलेन नामक युवक आता है परन्तु शैलेन की बाँहों में जाने से पहले ही कम्मो का विवाह मित्तल से हो जाता है। कम्मो को अब किसी के प्रति कोई मोह नहीं रहता। उसकी यही इच्छा होती है कि कोई उसे बाँहों में डालकर प्रेम करे। अपनी इस अतृप्ति को वह अपने बेटे को बाँहों में डालकर स्वयं को तृप्त करती है। प्रस्तुत कहानी के माध्यम से लेखिका ने कम्मो की तृप्ति के लिए छटपटाती भावनाओं की ओर संकेत किया है।

'कमरे, कमरा और कमरे' कहानी में लेखिका ने नायिका नीलू की मनःस्थित को बड़े स्वभाविक ढंग से चित्रित किया है। नीलू अपने घर में बीमार अम्मा के साथ रहती है। घर में पाँच कमरे हैं। नीलू घर में ही अपनी पढ़ाई करती है, क्योंकि उसे बीमार अम्मा की भी सेवा करनी होती है। ऐसे वातावरण में पढ़कर भी नीलू एम.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करती है। उच्च शिक्षा के लिए नीलू दिल्ली जाती है और वहाँ अध्यापन कार्य के साथ ही चार वर्ष में पी.एच.डी. की डिग्री हासिल करती है। नौकरी करते समय नीलू हॉस्टल में रहती है। वहाँ श्रीनिवास से परिचय हो जाने पर नीलू उसके फ्लैट में रहती है। इस तरह कमरे में ही उसका व्यक्तित्व सँवरता-बिखरता जाता है। "यह नारी प्रधान कहानी है, जिसमें एक महत्वाकांक्षी नारी आदि से अन्त तक अपने जीवन को कमरों में ही सिमटता और बिखरता हुआ अनुभव करती है।"

त्रिशंकु - सन् 1978 में प्रकाशित मन्नू भण्डारी का पाँचवां कहानी संग्रह है। इसकी 'आते-जाते यायावर' कहानी में पुरुष आधुनिकता के नाम पर भारतीय नारी को छलता है और विवाह के लिए दूसरी संस्कारयुक्त, शरीर से पवित्र स्त्री को पसंद करता है। कहानी की नायिका मिताली का परिचय नरेन से होता है। एक मुलाकात में ही दोनों अच्छे दोस्त बन जाते हैं। मिताली प्राध्यापिका है और अविवाहित है. नरेन से अच्छी दोस्ती होने के कारण दोनों में शारीरिक सम्बन्ध बन जाते हैं। फिर नरेन मिताली से

किनारा करके विवाह के लिए दूसरी लड़की पसंद कर लेता है। "इस कहानी में स्वाभाविकता, सहजता तथा अनुभूति की गहराई के साथ नये मूल्य उभारने का प्रयत्न किया गया है, किन्तु मूल्यों का उभार खुला है, उसमें सूक्ष्मता नहीं है, फिर भी आंतरिक कमजोरियों का उद्‌घाटन लेखिका ने कौशल के साथ किया है।"[13] कहानी में लेखिका ने आधुनिक युग में प्रेम के बदले हुए नये भाव-बोध का चित्रण किया है।

'स्त्री सुबोधिनी' कहानी में नारी जीवन तथा प्रेम के आधुनिक स्वरूप को सहज और स्वाभाविक ढंग से स्पष्ट किया है। कहानी की नायिका आयकर विभाग में कार्य करती है। वह प्रेम-पिपासु होने के कारण अपने बॉस शिन्दे से बहुत प्रभावित होती है। शिंदे रसिक और कवि है। उन दोनों में प्रेम हो जाता है। नायिका को बाद में पता चलता है कि शिन्दे विवाहित है और एक बच्चे का पिता भी है। वह शिन्दे से प्रेम सम्बन्ध तोड़ना चाहती है परन्तु शिन्दे हमेशा उसे प्रेम जताता रहता है। कहानी का प्रारम्भ अनुभव की प्रामाणिकता एवं संवेदना पर आधारित है। "डाक्टरों का नर्स से, प्रोफेसरों का अपनी छात्राओं से, अफसरों का अपनी स्टैनो-सेक्रेटरी से प्रेम हो जाने का हमारे यहाँ आम रिवाज है।"[14] प्रस्तुत कहानी में ऐसी नारी का चित्रण हुआ है जो विवाहित पुरुष द्वारा छली गई है। नायिका अपने पूर्ण प्रयत्नों से उसको पाने की इच्छा रखती है परन्तु ऐसा सम्भव नहीं हो सका।

'त्रिशंकु' कहानी में लेखिका ने माँ-बेटी की विचारधारा के आधार पर दो पीढ़ियों के अन्तर को स्पष्ट किया है। प्रस्तुत कहानी अभिजात्य वर्ग के परिवार की है जिसमें पति-पत्नी और उनकी पुत्री तनु है। "बुद्धिजीवी और आधुनिक कहे जाने वाले माता-पिता उनकी किशोरी पुत्री को आधुनिकता के नाम पर स्वतः का बड़पन्न बनाये रखने के लिए पुरुष मित्रों के साथ घुलने-मिलने की स्वतन्त्रता तो दे देतै हैं, लेकिन समय-समय पर किस प्रकार उनकी आधुनिकता भरभराती रहती है, वह किशोर पुत्री किस प्रकार अपने पालकों के आधुनिक और परंपरागत स्वरूपों के बीच त्रिशंकु-सी असहाय हो जाती है, इस कथ्य को केन्द्र में रखकर 'त्रिशंकु' कहानी लिखी गयी है।"[15]

निष्कर्षतः मन्नू भण्डारी की कहानियों में आधुनिक नारी की वैयक्तिक अस्मिता उजागर हुई है तथा उन्होंने अपने कथा साहित्य में नारी की दशा का मार्मिक चित्रण कर पुरुष के वर्चस्ववादी समाज में नारी की मुक्ति के सवाल को गम्भीरता के साथ उठाया है और नारी अस्मिता के प्रश्नों को बहुत ही गम्भीरता और मुखरता के साथ चित्रित किया है। आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में 'नारी विमर्श' को पूर्णतः स्थापित करने का श्रेय मन्नू भण्डारी को दिया जा सकता है। मन्नू भण्डारी का साहित्य वर्तमान नारी जीवन की विविध समस्याओं का कलात्मक दस्तावेज है।

सन्दर्भ

1. दिलीप मेहरा, मन्नू भण्डारी का कथा संसार, पृ.सं. - 39। **2.** गुलाबराव हाड़े, मन्नू भण्डारी का कथा साहित्य, पृ.सं.-81। **3.** मन्नू भण्डारी, नायक खलनायक-विदूषक, जीती बाजी की हार, पृ.सं.-41। **4.** गुलाबराय हाड़े, मन्नू भण्डारी का कथा साहित्य, पृ.सं.-138। **5.** डॉ. सूबेदार राय, हिन्दी कथा साहित्य, पृ.सं.-59। **6.** दिली मेहरा, मन्नू भण्डारी का कथा संसार, पृ.सं.-43। **7.** गुलाबराय हाड़े, मन्नू भण्डारी का कथा साहित्य, पृ.सं.-63। **8.** डॉ. बंसीधर, डॉ. राजेन्द्र मिश्र, मन्नू भण्डारी का श्रेष्ठ सर्जनात्मक साहित्य, पृ.सं.60। **9.** दिलीप मेहरा, मन्नू भण्डारी का कथा संसार, पृ.सं.- 51। **10.** किशोर गिरड़कर, मन्नू भण्डारी का कथा संसार, पृ.सं.- 13। **11.** डॉ. बंसीधर, डॉ. राजेन्द्र मिश्र, मन्नू भण्डारी का श्रेष्ठ सर्जनात्मक साहित्य, पृ.सं.- 54। **12.** किशोर गिरड़कर, मन्नू भण्डारी का कथा साहित्य, पृ.सं.- 14। **13.** पूर्ववत्। पृ.सं.- 145। **14.** डॉ. किशोर सिंह राव, डॉ. मीरा ए. सक्सेना, मन्नू भण्डारी की कथा यात्रा, पृ.सं.-57। **15.** किशोर गिरड़कर, मन्नू भण्डारी का कथा साहित्य, पृ.सं.- 13।

असिस्टेंट प्रोफेसर
मानविकी एवं समाज विज्ञान संकाय
श्री गुरु रामराय विश्वविद्यालय देहरादून
उत्तराखंड, मो. : 789531398, 9412918203
ईमेल -garimadimari14@gmail.com

पहाड़ी आंचलिक उपन्यासों में चित्रित धार्मिक समस्या

डॉ. मनीषा बालासाहेब जाधव

स्वातंत्र्योत्तर काल में हिंदी उपन्यास विधा ने एक नया प्रयोगधर्मी मोड़ लिया। इसी कारण हिंदी उपन्यासों में नई धरती, नया राग, नया बोध, नई भूमि की आवाज सुनाई देने लगी। अनदेखी, अनगढ़ी, अनछूई जमीन को तलाशने का काम उपन्यासकारों ने वहाँ जाकर किया और वहाँ के जनजीवन को यथार्थ के साथ चित्रित किया। कई दुर्गम भू-भागों की यात्रा करके वहाँ के अदिवासीय जनजीवन को भी तलाशने का कार्य उपन्यास लेखकों ने किया है। पहाड़ी प्रदेशों में जहाँ अदिवासी रहते हैं वहाँ यातायात के साधनों की कमी है, वहाँ के लोग प्रगति से कोसों दूर हैं, वहाँ विज्ञान की हवा अभी तक पहुंच नहीं पाई है, ऐसे पहाड़ी आदिमों के भू-भागों की यात्रा करके वहाँ के वास्तविक जीवन पर उपन्यास लिखे हैं। उपन्यासकारों ने अदिवासियों के जीवन की इनमें अनुभूति और संवेदना को प्रस्तुत करने का प्रयास किया।

हमारे देश के कुछ क्षेत्रों में बाईस प्रतिशत भू-भाग पहाड़ों और जंगलों से घिरा हुआ है और इन पहाड़ी भू-भागों में बसी हुई 414 जनजातियाँ हैं जिनको अभी तक सरकार द्वारा चलाई जा रही विकास योजनाओं से ज्यादा लाभ नहीं हुआ है। "सन् 1971 की जनगणना के अनुसार आदिवासी लोगी की जनसंख्या 29 लाख 54 हजार अर्थात उस समय की देश की कुल आबादी के सात प्रतिशत आदिमों (आदिवासी) की आबादी है।[1] आदिम जातियों में अज्ञान, अंधविश्वास अधिक मात्रा में दिखाई देता है। ये आदिम (आदिवासी) अपने मर्यादित समूह (कबीलाई) जीवन में एक अलग विश्व का निर्माण कर चुके हैं और देश की विकास योजनाओं से दूर हैं। ये जनजातियाँ जंगलों, वनोपजों, शिकार, मधुमक्खी पालन, खेती आदि के आधार पर जीवनयापन कर रहे हैं जिनका चित्रण पहाड़ी आंचलिक उपन्यासों में है।

स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में "पहाड़ी आंचलिकता" का दौर शुरू हुआ। उसकी गति धीमी होने पर भी महत्वपूर्ण है। पहाड़ी अंचलों में यातायात का अभाव, अज्ञान, अंधश्रद्धा का प्रभाव आंचलिक उपन्यासकारों ने पहाड़ी भौगोलिक की ऊंचाई, प्राकृतिक सुषमा वहाँ का सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक जीवन तथा लोकसभ्यता, संस्कार, मनोरंजन के साधन, वेशभूषा, देवी-देवता, उत्सव पर्व, तीज-त्यौहार, प्रथा-परंपरा और वहाँ की समस्याओं पर लेखन किया है।

शिवशंकर शुक्ल लिखित "मोगरा", सत्यप्रकाश पांडेय लिखित "चंद्रवदनी",

आनंदप्रकाश जैन लिखित "आठवीं भांवर", भगवतीप्रसाद शुक्ल लिखित "खारे जल का गाँव", नरेंद्र वर्मा लिखित "सुबह की तलाश", हिमांशु जोशी लिखित "कगार की आग" और "अरण्य", शैलेश मटियानी कृत "गोफुली गफुरन", राजेंद्र अवस्थी लिखित "जाने कितनी आँखें", शानी लिखित "शालवनों के द्वीप", शिवप्रसाद सिंह लिखित "शैलूष", शिवानी लिखित भैरवी और चौदह फेरे कैंजा, राजेंद्र अवस्थी लिखित "जंगल के फूल" और "सूरज किरण की छाँव" पहाड़ी आंचलिक उपन्यासों में बस्तर, अबुझमाड, उत्तरांचल, पूर्वांचल, हिमाचल नैनीताल, अलमोड़ा अंचल, विंध्याचल, बुंदेलखंड, छत्तीसगढ़, सुखापहाड़, कूर्मांचल आदि भागों के निवासी माड़िया, गोंड, ओरछा, करनट, शिल्पकार, मुस्लिम बंजारा, मुंडा आदि के लोकजीवन का वर्णन किया है।

हिंदी के स्वातंत्र्योत्तर आंचलिक उपन्यासों में पहाड़ी अंचल में प्रचलित धर्म संबंधी मान्यताओं, अंधविश्वासों, भूतप्रेत, चुड़ैल-डायन, झाड़फूंक संबंधी कल्पनाओं पर प्रकाश डाला गया है। "मानव जीवन और जगत् में होनेवाली घटनाओं का संबंध कल्पना की मदद से अतिलौकिक-नैसर्गिक शक्ति के साथ जोड़कर इनके प्रति विश्वास श्रद्धा की भावना रखता है और पूजा-पाठ यज्ञादि का जाल बना देता है। उसे धर्म संस्था माना जाता है।"[2] मानसिक दुर्बलता और अंधश्रद्धा का समन्वित रूप भूत-प्रेत, चुड़ैल-डायन हैं। पहाड़ीजनों का आज भी इस पर विश्वास है। पहाड़ी जनजाति बीमारी दूर करने के लिए, बांझपन हटाने के लिए, संकट से मुक्ति पाने के लिए भूत-प्रेत का आधार लेती है। अकाल मृत्यु से अतृप्त आत्मा भूतयोनी में प्रवेश करती है ऐसी उनकी धारणा है। मंत्र-तंत्र, झाड़-फूंक, जड़ी-बूटी, जादू- टोना संबंधी अंधविश्वास की समस्या पहाड़ों में दिखाई देती है। भूतपिशाच की बाधा दूर करने के लिए मंत्र-तंत्र, जादू-टोना का आधार लेना, बीमारी दूर करने के लिए झाड़-फूंक का प्रयोग करना अंधश्रद्धा ही है। ये जनजातियाँ दवाईयों की अपेक्षा जड़ी-बूटी का प्रयोग अधिक करती हैं। जंगल में रहने के कारण जड़ी-बूटी काटना और बेचना यह उनका धंधा बन गया है। पहाड़ी जनजातियों में स्थित मंत्र-तंत्र, जादू-टोना, जड़ी-बूटी, झाड़-फूंक संबंधी मान्यताएं उपन्यासों में वर्णित हैं।

शुभ-अशुभ एवं शकुन-अपशकुन संबंधी अंधविश्वास पहाड़ी जनजातियों में दिखाई देता है। ये लोग अपने जीवन में घटनेवाली घटनाओं का भविष्य के साथ संदर्भ जोड़ देते हैं। यहाँ पाप-पुण्य संबंधी विचार अंधविश्वास को बढ़ावा देते हैं। पाप-पुण्य संबंधी सामान्यतः यह धारणा है कि जो व्यक्ति सत्कर्म करता है वह इहलोक तथा परलोक में सुख प्राप्त करता है और जो व्यक्ति दुष्कर्म करता है वह कष्ट प्राप्त करता है। इसी अंधश्रद्धा, अंधविश्वास से 'धार्मिक समस्या' निर्माण होती है। धार्मिक समस्या पर उपन्यासकारों ने प्रकाश डाला है। 'मोगरा' में छत्तीसगढ़ अंचल की कथा है जिसमें गाँव के अंधविश्वास दिखाई देते हैं। जब 'केतकी' के बेटे 'समारु' को माता का प्रकोप होता है तो उसे दवा-दारु करने के बजाय केतकी देवी के जयगान के लिए पड़ोसियों को बुलाती है। इस तरह देवी का जयगान करके केतकी बीमारी को भगाना चाहती है। 'चंद्रवदनी' में बीमारी हटाने के लिए 'वाक्या' (मांत्रिक) का आधार लेना, वाक्या के द्वारा मंत्र जपना, बीमार व्यक्ति पर अक्षत फेंकना तथा बीमार व्यक्ति को गाँव की एक बुढ़िया की नजर लग गई है ऐसा कहना और वृद्धा पर जादू-टोना करने का संदेह आदि करना अंधविश्वास की समस्या के रूप में दिखाई देती है। 'आठवी भांवर' में गोसाईयों में स्थित अंधविश्वास दिखाई देते हैं जैसे- नारी द्वारा शरीर गोदने से सदा-सुहागन रहना तथा जिसके चरण सूरज की किरणें छूती हैं उसे देवी का अवतार मानना[3] आदि अंधविश्वास दिखाई देते हैं। 'खारे जल का गाँव' में भी

"बरसात के लिए महादेव को पानी में डुबोने की घटना है।"[4] जो अंधविश्वास का प्रमाण है तथा चसिया की शादी के अवसर पर घी की मटकी का हाथों से गिरना अपशकुन मानकर भयग्रस्त होना भी अपशकुन का प्रमाण है।

'सुबह की तलाश' में छत्तीसगढ़ अंचल के सरोना गाँव के अंधविश्वास चित्रित हैं। महादेव को श्रावण सोमवार के दिन जल चढ़ाने से पुत्र प्राप्ति होना, संकट से मुक्ति पाने के लिए भगवान को नारियल चढ़ाना, महानदी और अन्य नदियाँ जहाँ मिलती हैं वहाँ एक मंदिर है जहाँ गर्भवती महिला के जाने से उसे पुत्र प्राप्ति होना, वल्लभाचार्य का जन्म इसी का फल मानना आदि अंधविश्वास दिखाई देते हैं। छत्तीसगढ़ अंचल के 'अमोलीडीह' गाँव में स्थित भूत-प्रेत संबंधी मान्यताएँ चित्रित हैं। "रात के समय डायन एवं राक्षसी प्रेतनी का घूमना व बीड़ी जलाने से उसका चले जाना, डरने वाले मनुष्य को डायन द्वारा खाना, खंडहर में भुतहा मकान का होना, दर्दनाक चीख की आवाज सुनाई देना, नवविवाहिता का डोली से उतरकर बेतहाशा होकर भागने का दृश्य दिखाई देना, गाड़ी का दुर्घटनाग्रस्त होना"[5] इसी कारण रात के समय औरतें और बच्चे जल्दी घर पहुँचते हैं और पुरुष भी मिलजुलकर घर आते हैं।

'चौदह फेरे' में भविष्य देखना, पुत्र प्राप्ति के लिए शिव उपासना करना, गोमूत्र छिड़कने से व्यक्ति का पवित्र होना आदि अंधविश्वास कुर्मांचल में दिखाई देते हैं। शकुन-अपशकुन पर प्रकाश डालते हुए दिखाया गया है कि शनिचर और मंगल के दिन अतिथियों को घर से विदा नहीं किया जाता। कर्नल शिवदत्त पांडेय अहिल्या से कहते हैं, "शादी के घर से पहाड़ में शनिचर-मंगल के दिन अतिथियों को विदा नहीं किया जाता हैं।"[6] 'कगार की आग' में अलमोड़ा पर्वतांचल में संतान प्राप्ति के लिए भगवान की कृपा के लिए सिद्धनारसिंग बाबा की दुआ को महत्व दिया गया है। गोमती को खुशालराम कहता है, "जहाँ तक बच्चे का सवाल है सिद्धनारसिंग बाबा की कृपा हुई तो तेरी गोद यहीं भर जाएगी। तुझे बच्चा चाहिए ना।"[7] अतः बच्चे के लिए भगवान की कृपा का होना यह विचार अंधविश्वास का प्रतीक है तो गोमती की माँ और गोमती झाड़-फूंक, मंत्र-तंत्र का आधार लेकर अपने शत्रु का नाश करना चाहती हैं। 'भैरवी' में कुमायूँ अंचल में स्थित भूत-प्रेत संबंधी अंधविश्वास पर प्रकाश डाला है। इसके बारे में चंदन सोचती है-- शिव के मंदिर में एक दम से चिलम ओढ़ने (पीने) से रास्ते के भूत-प्रेत भाग जाते हैं।

'जंगल के आसपास' में पहाड़ी गाँव दमकड़ी में स्थित अंधविश्वास चित्रित हैं। "ओझा के मुख से देवता का बोलना, भूत-प्रेत की बाधा दूर करने के लिए होम-यज्ञ करना, अग्निपरीक्षा से नारी का पवित्र होना आदि। अग्निपरीक्षा के प्रति उनकी यह धारणा है कि अग्निपरीक्षा एक धार्मिक काम है। माँ सीता को भी अग्निपरीक्षा देनी पड़ी थी। इसमें हम या अन्य क्या कर सकते हैं।"[8] गाँव में स्थित भूत-प्रेत संबंधी धारणा है-- "रात के समय प्रेत द्वारा बच्चों और औरतों का उठाना, उसका जंगली जानवर का रूप लेकर घूमना, चंदेरी की बेटी को प्रेत द्वारा उठाना। उनका यह विश्वास है कि ओझा भूत-प्रेत बाधा से ग्रस्त मर्द और औरत को पीट-पीटकर उनके अंदर के प्रेत, चुड़ैल, डाकिन या डायन को प्रत्यक्ष रूप में बुलवा देता है।"[9] ओझा मंत्र-तंत्र के बल पर भूत-चुड़ैल को बुलाता है, लापता करता है तथा जादू-टोना के माध्यम से प्रेत एवं दैवी शक्ति पर काबू पा सकता है। इस तरह पहाड़ीजनों का ओझा पर बहुत विश्वास है लेकिन ओझा इन गरीब लोगों को लूटता है, औरतों को वासनाभरी दृष्टि से देखता है।

'गोपुली गफूरन' में ब्राह्मण द्वारा मांस खाने से उसका गीध बन जाना, पूर्वजन्म के अनुसार फल मिलना, भगवती मैया की कृपा से संकट से मुक्ति पाना, नजर लगना आदि अंधविश्वास दिखाई देते हैं। लोगों का विचार है कि गाय और औरत को बुरी नजर

जल्दी लगती है। गोपुली पिछले जन्म को कोसती हुई कहती है, "यह मेरे पिछले जनमों का पापफल है, नहीं तो यह अनहोनी क्यों होती।"[10] 'जाने कितनी आँखें' में दीवाली के समय दीपक जलाने से घर में लक्ष्मी का आना, संतान प्राप्ति के लिए भगवान की इच्छा को मानना, व्यक्ति में कासार देवता का संचार होना, शंख फूंकने से घर का सुखी रहना आदि बातें अंधविश्वास का प्रतीक हैं। बदरीप्रसाद मंत्र-तंत्र के बल पर तावीज बनाकर देता है जिससे मुसीबतें दूर होती हैं। गाँव के लोगों का बदरीप्रसाद के मंत्र-तंत्र पर पूरा विश्वास है। गाँव की बहुत सी नारियाँ बदरीप्रसाद के पास तावीज लेने के लिए आती हैं। यहाँ शुभ-अशुभ विचारों पर भी प्रकाश डाला है, जैसे तीज-त्यौहारों के समय विधवा का मुख देखना अशुभ मानकर विधवा स्त्रियों को उस दिन घर में प्रवेश न देना, पाड़ा (एक जानवर) की आवाज सुनना अशुभ माना जाता है। आँख फड़कना, सिटीवाली चिड़ियाँ का पीपल पर बोलना सफलता का संकेत मानते हैं। 'शाल वनों का द्वीप' में शीतला माता के प्रकोप से बीमारी का फैलना, लस्के (मांत्रिक) के मुख से देवता का बोलना, माता की बिदाई से बीमारी का हट जाना, अच्छी फसल के लिए गोत्र देवता की पूजा करना व मूर्गी की बलि देना, बाघ के संकट से मुक्ति के लिए अंडा, लाली शराब, घास आदि से 'पेन लस्किताल' (देवता) की पूजा करना आदि पहाड़ीजनों के अंधविश्वास हैं।

'शैलूष' में विंध्याचल के करनटों के अंधविश्वास पर प्रकाश डाला गया है जैसे बबूल की लकड़ी को छूने से छूनेवाले का निर्वंश होना, बुखार कम होने के लिए देवता से प्रार्थना करना, विंध्यवासिनी देवी का प्रसाद भैंस को खिलाने से भैंस द्वारा अधिक दूध देना, पोखर में स्नान करने से कोढ़ का फूटना व दैवी प्रकोप होना, होम-यज्ञ में देवी-देवता का प्रकट होना व पुण्य मिलना आदि अंधविश्वास हैं। भूत-प्रेत संबंधी मान्यताएँ इस तरह हैं जैसे किसी की बीमारी का कम न होने का संबंध मृत-प्रेत से जोड़ना। सिंदूर से रंगा हुआ चावल, कनदल का फूल, तीन बोतल महुए की शराब, कटुआ का तेल आदि से प्रेत की पूजा करना, सूअर की बलि चढ़ाना। पूजा के समय ओझा का कथन इस प्रकार होता है, "जाग दैतरा बीर, आज तेरे भगत के ईमान तराजू पर चढ़ल है रे। देख.... तोर भगत कभी सनसाई, जाई जाग, खुल के पूजा ले।"[11] मानबाबा मंत्र-तंत्र के बल पर संकट से मुक्ति दिलाता है ऐसा उनका विश्वास है। सावित्री मौसी सोचती है, "यदि आज बकुल होता तो उसके नाम का ताबीज अगरबत्ती के धुएँ में जगाया जाता। मंत्र के बल से उसकी रक्षा के लिए मानबाबा को रोट चढ़ाती"[12] इस तरह विंध्याचल के करनटों में अंधविश्वास कूट-कूट कर भरे हैं।

'वनवासी' में नागा जाति के लोगों में लड़की का सयानी होना उम्र पर अवलंबित न होकर पुरोहित की मर्जी पर अवलंबित है। मन में पाप आने से भगवान के सामने गिड़गिड़ाना, मृतक संस्कार में मृतक के साथ दो भाले रखना, पति के हाथ से मरनेवाली स्त्री को स्वर्ग प्राप्ति होना आदि अंधविश्वास के विविध आयाम देखने को मिलते हैं।

'कब तक पुकारूं' में करनट जाति में कोई बीमार हो तो ताबीज बांधना, खिरनीवाले बाबा की राख मलना, मंत्र का प्रयोग करना, संतान प्राप्ति के लिए सात शनिचर के दिन आग लगाना, मृत व्यक्ति का सिर फूटने के बाद मृतक का बिटरावन जाना आदि अंधविश्वास हैं। जो इंसान सात शनिचर के दिन जगह-जगह आग लगाता है, उसे बच्चा होता है, इसी अंधविश्वास के कारण निरोती बामन कई घरों को आग लगाता है, "रामा की बहू बेटे की बीमारी हटाने के लिए ताबीज और राख का प्रयोग करती है।"[13] अधूरे किले में ठकुरानी का भूत होना तथा हवा में माला को घुमाकर थाली का निर्माण करना आदि अंधविश्वास के रूप देखने को मिलते हैं।

'अरण्य' में कूर्मांचल के वनमहोत्सव के दिन

लगाए पेड़ को फूल का आसानी से लग जाना, अधर्म के कारण अकाल, महामारी तथा झगड़ा-फसाद का होना, संकट की मुक्ति के लिए बलि देना, सहस्त्र नाम जपना, बीमारी से मुक्ति पाने के लिए दान देना आदि मान्यताएं अंधविश्वास को दर्शाती हैं। माधव प्रधान की बीमारी कम होने के लिए पत्नी "भगवती के थान में सवाचार आने का पाठ करवा देती है।"[14] शुभ-अशुभ संबंधी मान्यताएँ इस तरह हैं-- पुरुषोत्तम हथेली का खुजाना धन-प्राप्ति का शुभ संकेत मानता है, कावेरी को मायके भेजते समय शुभ दिन देखकर भेजा जाता है। ब्राह्मण द्वारा हल चलाना पाप माना जाता है तो चारों धाम की यात्रा करने से पुण्य मिलकर स्वर्ग प्राप्ति होती है ऐसी धारणा है। शिवशंकर कृत 'मोगरा' में ब्राह्मण मंगलू द्वारा हल चलाने से उसे पापी मानकर बहिष्कृत किया जाता है।

'कैजा' में विवाह के समय भविष्य देखने के कारण नंदी की कुंडली में घोर वैधव्य योग होने से उसकी शादी सुरेश भट्ट से नहीं होती। अतः पिता नंदी का विवाह न करके उसे डॉक्टर बनाकर अपने पैरों पर खड़ा करते हैं। 'रथ्या' में भी वसंती की कुंडली विमलानंद से न मिलने के कारण उनका विवाह नहीं होता और वसंती को मजबूरन होटल डांसर बनना पड़ता है। 'श्मशान चंपा' में भी भविष्य देखना, कुंडली मिलाना, संतान प्राप्ति के लिए जोगेश्वरी देवी की उपासना के शकुन पर प्रकाश डाला है। विवाह के समय नाक पर रोली का गिरना अच्छा शगुन माना जाता है। ऐसा होने से दुल्हा, दुल्हन से खुब प्यार करता है।

'जंगल के फूल' में बस्तर के गोंड लोग गाँव को सुखी रखने के लिए नारायण देवता की पूजा करते हैं और सूअर की बलि चढ़ाते हैं। प्रियतम के प्यार के लिए शरीर पर गोदना के लिए बेटियों से कहती है, "मत रो बेटी गुदने से.... तुझे अच्छा प्रीतम मिलेगा, दुनियाभर के चेलिक तुझे प्यार करेंगे...... मरने के बाद यही गुदनें तुझे नरक की यातना से बचाएंगे तब देवता तेरी छाती में भाला नहीं घुसेड़ेगा।"[15] झिरिया द्वारा खुदकुशी करना, उसका चुड़ैल बनना और भेस बदलकर गाँव में घूमना, गोरे साहब को चुड़ैल द्वारा पकड़ना आदि भूत-प्रेत संबंधी मान्यताएँ गोंडों में दिखाई देती हैं। आधी रात में बांझ औरत नंगी होकर पीपल के नीचे दीपक जलाकर भूत-प्रेत को बुलाती है तो उसे संतान की प्राप्ति होती है। जब देवी-देवता असफल होते हैं तो ये लोग भूत-प्रेत का आधार लेते हैं। सिरहा मंत्र-तंत्र द्वारा गोरे साहब की मुक्ति चुड़ैल के हाथ से कराता है तथा झाड़-फूंक के बल पर सिरहा मृत बालक को फिर से जिंदा करता है। अरुआ का मुँह देखना आदि अपशकुन माने जाते हैं। इस अपशकुन से निर्मित अनर्थ को टालने के लिए ये लोग देवता से प्रार्थना करते हैं।

'सूरज किरन की छाँव' में ओझा का चित्रण इस तरह है- चुड़ैल द्वारा गाँव में आए अफसर को पकड़ना, ओझा द्वारा "काली है, कंकाली है, टीलेवाली है, गाँव-गाँव की है, मेरे हाथ 'बीर-भवानी' इस मंत्र का पठन करना।"[16] और अफसर की मुक्ति चुड़ैल से करना आदि घटनाएँ गाँव के लोगों के अंधविश्वास को उजागर करती हैं।

इन पहाड़ी आंचलिक उपन्यासों में वर्णित अंधविश्वास के विविध आयामों को देखने के पश्चात यह लक्षित होता है कि पहाड़ी लोग अज्ञानी, अर्थाभाव, अंधश्रद्धा से युक्त, वैज्ञानिक विचारों से दूर धर्म, जाति, देवी-देवता, साधु, ओझा, वाक्या, लस्के (मांत्रिक) आदि के प्रभाव में होने के कारण अभी भी अंधविश्वास में अटके हुए हैं और वही उनके शोषण का कारण बना है। इन उपन्यासों में भविष्य देखना, यात्रा करना, कल्याण के लिए एवं संकट से मुक्ति पाने के लिए देवी-देवता की पूजा करना, ताबीज बांधना, संतान प्राप्ति के लिए विविध मार्ग अपनाना, खिरनीवाले बाबा की राख मलना, मन्नत माँगना, बलि चढ़ाना, शरीर गोदना, पूर्वजन्म एवं कर्म पर विश्वास रखना, नजर लगना, महामारी एवं अकाल

का कारण अधर्म को मानना, जप-तप करना, देवी की यात्राएँ करना, वाक्या, पुरोहित लस्के एवं ओझा को महत्व देना उसे देवता का अवतार मानना, बरसात के लिए देवता को जल में डुबोना, नारी की अग्निपरीक्षा लेना, होम-यज्ञ करना, पुरोहित के शब्द को भगवान की आज्ञा मानना आदि अंधविश्वास वर्णित हैं। मृत्यु के बाद मृतात्मा का भूत बनना, खंडहर में पिशाच का होना, डायन का रात में घूमना, बीड़ी जलाने से डायन का भाग जाना, मंत्र के बल पर आदमी के शरीर से भूत पिशाच को निकालना, संतान प्राप्ति के लिए भूत-प्रेत की सहायता लेना, भूत द्वारा औरतों को उठाकर ले जाना आदि मान्यताएँ भूत-प्रेत, डायन-चुड़ैल संबंधी हैं। जहाँ दवा और दुआ असफल होती है वहाँ ये लोग भूत का आधार लेते हैं।

पहाड़ीजन बीमारी हटाने के लिए, भूत-पिशाच से मुक्ति पाने के लिए, विष उतारने के लिए, मृतक को जिंदा करने के लिए, चमत्कारिक कार्य करने के लिए, मुसीबतों को दूर करने के लिए मंत्र-तंत्र, जड़ी-बूटी, झाड़-फूंक जादू-टोना आदि का आधार लेते हैं। पहाड़ी लोग किसी वस्तु का हाथ से गिरना, अरुआ तथा विधवा का मुँह न देखना, संध्या के समय हाथ में झाड़ू न लेना, शनिचर के दिन किसी के घर से न आना तथा देवी-देवता की यात्राएँ करना, मंदिर में जाना पुण्य मानते हैं, तो धर्मबाह्य कर्म करना पाप मानते हैं। स्पष्ट है कि पहाड़ी लोग दैनिक जीवन की घटनाओं का भविष्य में घटनेवाली घटनाओं से संबंध जोड़ने का प्रयास करते हैं। जिसके कारण अंधविश्वास को बल मिलता जा रहा है। इन उपन्यासों में इन अंधविश्वासों का विरोध कम लक्षित होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि पहाड़ी लोग अंधविश्वास का पालन एवं स्वीकार रखते हैं।

संदर्भ

1. भारतीय आदिवासी -- डॉ. गुरुनाथ नागगौंडा, कॉन्टीनेंटल प्रकाशन, पुणे, प्र.स. 1979, पृ. 14। **2.** 'सामाजिक संस्था'-- प्रो. सौ. हारपू अनंतराय -- महाराष्ट्र विद्यापीठ ग्रंथ- निर्मित प्रकाशन, नागपुर, सं-- 1971, पृ. 243। **3.** 'आठवी भांवर'-- आनंद प्रकाश जैन-- राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, द्वि सं.-1971, पृ. 13। **4.** 'खारे जल का गाँव'- भगवती प्रसाद शुक्ल - स्मृति प्रकाशन इलहाबाद, प्र.सं. 1972, पृ. 112। **5.** 'सुबह की तलाश'- नरेंद्र वर्मा- राजपाल एंड सन्स, नई दिल्ली, प्र.सं. 1972, पृ. 18-24। **6.** 'चौदह फेरे'-- शिवानी- हिंद पॉकेट बुक्स, प्रा. लि. दिल्ली, प्र.सं. 1972 पृ. 113। **7.** 'कगार की आग'- हिमांशु जोशी -- भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, प्र.सं. 1981, पृ. 62। **8.** 'जंगल के आसपास'- राकेश वत्स- राजपाल एन्ड सन्स, नई दिल्ली, प्र.सं. 1980, पृ. 198। **9.** वही-- पृ. 13-14। **10.** 'गोपुली गफूरन'- राजेंद्र अवस्थी, सरस्वती विहार, दिल्ली-32, प्र.स. 1981, पृ. 84। **11.** 'शैलूष' - शिवप्रसाद सिंह - नैशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, प्र.स. 1989, पृ. 86-87। **12.** वही-- पृ. 84। **13.** 'कब तक पुकारूँ' - रांगेय राघव - राजपाल एंड सन्स, दिल्ली, द्वि. स. 1991, पृ. 74। **14.** 'अरण्य' - हिमांशु जोशी, किताबघर, नई दिल्ली, द्वि. स. 1993, पृ. 88। **15.** 'जंगल के फूल' - राजेंद्र अवस्थी - राजपाल एंड सन्स, दिल्ली, द्वि. स. 1996, पृ. 134। **16.** 'सूरज किरन की छाँव' - राजेंद्र अवस्थी, परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.स. 1997 पृ. 90-92।

सहायक प्राध्यापक (हिंदी विभाग)
कला व वाणिज्य महाविद्यालय,
117, शुक्रवार पेठ, सातारा - 415001
मो. 8888411566
ईमेल-mbj2010@rediffmail.com

●

सोच अच्छी होनी चाहिए क्योंकि नजर का इलाज तो मुमकिन है पर नजरिये का नहीं।

अवधी, बघेली और छत्सीगढ़ी की रूप-रचना : एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. गिरजा शंकर गौतम

लोक भाषाओं/बोलियों के समक्ष संकट तब पैदा होता है जब बोलियों का प्रयोक्ता अपनी बोली बोलने में झिझकता है। हीन-भावना तथा अपनी बोली भाषा की अस्मिता और उससे प्रेम न होना। अपनी भाषा बोली की जान पहचान वाले समाज/अंचल से कट जाना या प्रतियोगिता के इस दौड़ वाले समय में रोजगार के लिए अन्य भाषा का प्रयोग करना आदि। भाषा पैतृक संपत्ति नहीं है यह व्यवहार से सीखी जाती है लेकिन वर्तमान में भाषा प्रयोक्ता युवा तेजी से द्वितीय भाषा तथा तृतीय भाषा की ओर बढ़ रहे हैं अपनी मातृभाषा को वे संपर्क भाषा जैसा प्रयोग नहीं कर पा रहे हैं। ये स्थानीय बोलियाँ प्राथमिक स्तर पर शिक्षा का सशक्त और अकादमिक माध्यम भी नहीं हैं; विशेषकर बघेली और अवधी में लगातार ह्रास देखने को मिल रहा है। भाषा संस्कृति की संवाहक होती है एक बोली को बनने में हजारों वर्ष लगते हैं। ये हमारी सामाजिक संपत्ति होती है इनका ह्रास राष्ट्र, संस्कृति, सभ्यता और अस्मिता का संकट है। अतः बोलियों को बचाये रखने के लिए हमें प्रयास करना आवश्यक है। इस संदर्भ से अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी की रूप-रचना का तुलनात्मक यहाँ प्रस्तुत है।

प्राचीनकाल में जिसे कोशल राज्य कहा जाता था अब वह पूर्वी हिंदी का क्षेत्र है। तब उत्तर कोसल और दक्षिण कोसल में विभाजित था। वर्तमान में यह तीन प्रांतों छत्तीसगढ़, पूर्वी मध्य प्रदेश एवं केंद्रीय उत्तर प्रदेश तक विस्तृत है। इस पूर्वी हिंदी उपभाषा वर्ग में तीन बोलियाँ हैं - छत्तीसगढ़, बघेली और अवधी, इन बोलियों की सीमाएँ उत्तर में नेपाल के दक्षिणी क्षेत्र से लेकर पूर्व में भोजपुरी तथा ओडिशा, दक्षिण में तेलुगू, पश्चिम में मराठी एवं बुंदेली से मिलती हैं। अतः इन सब बोली भाषाओं का प्रभाव पूर्वी हिंदी में दिखायी देता है। कहा जाता है -

कोस कोस में पानी बदले, चार कोस मा बानी।
बीस कोस मा पगड़ी बदले, तीस कोस मा छानी।।

लोक में कहा जाता है कि कोस भर में पानी का स्वाद और मिजाज बदलता है। चार कोस में बोली-बानी में कुछ परिवर्तन दिखायी देता है। बीस कोस में पगड़ी के बांधने में अंतर हो जाता है तथा तीस कोस में घर-द्वार, छानी-छप्पर छाने की रीति में परिवर्तन हो जाता है।

बोली भाषा में यह परिवर्तन स्थान तथा व्यक्तियों के उच्चारण भेद से उत्पन्न होता है। इस

प्रकार हर क्षेत्र में भाषा रूपांतर पाये जाते हैं। ये रूपांतर आदर्श रूप से कुछ भिन्न होते हैं। रायपुर क्षेत्र की छत्तीसगढ़ी विलासपुर की छत्तीसगढ़ी से यत्किंचित भिन्न है। सरगुजिया और हल्बी के बीच व्यतिरेक है तथा अवधी और छत्तीगढ़ी की उपबोलियों के मध्य व्यतिरेक का स्तर अपेक्षाकृत और अधिक है। पूर्वी हिंदी का क्षेत्र, प्राचीन काल में जिसे उत्तर कोसल एवं दक्षिण कोसल कहा गया है वही क्षेत्र इन तीनों बोलियों का है। दक्षिण कोसल की बोली छत्तीसगढ़ी और उत्तर कोसल की बोली कोसली या अवधी नाम से जानी जाती है। इन दोनों बोलियों के मध्य बघेली प्रचलित है। बघेली, छत्तीसगढ़ी और अवधी में पर्याप्त समानताएं होने पर भी उनकी अपनी विशिष्टताएँ भी हैं। शब्दों के प्रारंभिक संयुक्त अक्षर परिवर्तित हो जाते हैं। जैसे-स्थापना-थापना, स्वरूप-सरूप, श्लोक-इस्लोक, स्वर्ग-सरग, स्थान-थान, स्टेशन-टेसन, ध्वजा-धजा आदि।

तीनों बोलियों में संज्ञा शब्द स्वरांत एवं व्यंजनांत हैं। पूर्वी हिंदी की बोलियों में संज्ञा प्रातिपदिक के तीन रूप मिलते हैं - सामान्य, गुरु एवं गुरतर। प्रायः गुरु रूपों का प्रयोग हीनता, घृणा एवं उदासीनता व्यक्त करने के लिए किया जाता है। जैसे - सुवा-सुवन (छ.) सार-सरऊ सरउना। इस तारतम्य में बाबूराम सक्सेना का कथन महत्वपूर्ण है, पूर्वी बोलियों में पुल्लिंग आकारांत अथवा उकारांत ह्रस्व रूप से आगे 'ना' जोड़कर दीर्घ रूप बनता है। जैसे- कुँआ-कुँआना, फिर इनका दीर्घत्तर रूप नहीं बनता। स्त्रीलिंग दीर्घ रूप में - 'वा' जोड़कर दीर्घतर रूप बनाया जाता है और पुल्लिंग दीर्घ रूप में - 'वा' के स्थान पर 'उन' रखकर दीर्घतर रूप बनाया जाता है।

पूर्वी हिंदी की बोलियों में लिंगभेद व्याकरणिक नहीं अर्थात्मक होता है। निर्जीव संज्ञाओं में स्त्रीलिंग पुल्लिंग भेद देखने को नहीं मिलता है। आकारांत संज्ञाएँ प्रायः पुल्लिंग होती हैं और ईकारांत संज्ञाएँ स्त्रीलिंग होती हैं। इया और इन पर प्रत्यय जोड़कर स्त्रीलिंग शब्द बनते हैं जैसे - आ-टूरा, लरिका, बेटवा। ई-बिहनिया, चिरई, मनई। लिंग-विधान की कतिपय विशिष्टताएं द्रष्टव्य हैं। छत्तीसगढ़ में कुछ शब्द स्त्री लिंगवाची हैं जैसे - बिहई, सउत, गाभिन आदि। कुछ संज्ञा शब्दों में लिंग सूचक प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिंग एवं पुल्लिंग युग्म बनाए जाते हैं। जैसे नर चिरई, माई चिरई, संबोधन बोध से भी भेद प्रदर्शित होता है जैसे - एजी, एगा, गा, एया, रे (स्त्री)।

रूप और शब्द का विवेचन करने पर विदित होता है कि सार्थक मूलरूप 'शब्द' है। इसे संस्कृत में 'प्रातिपादिक' या 'प्रकृति' कहा जाता है-- "अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्।"[1] 'धातु' और प्रत्यय के अतिरिक्त जो भी अर्थयुक्त (मूल) शब्द हो, प्रातिपादिक हैं। "कोई भी शब्द तब तक पद नहीं बन जाएगा, जब तक उसका प्रयोग नहीं हो सकता है।"[2] न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या, नापि केवलः प्रत्ययः। अपदं न प्रयुज्जीता।"[3] -महाभाष्य।

उपसर्ग और पर प्रत्यय से रहित सार्थक शब्द प्रातिपादिक कहलाते हैं। पूर्वी हिंदी की बोलियों में स्वरांत एवं व्यंजनांत दोनों ही तरह के प्रातिपादिक मिलते हैं। बोलियों के प्रातिपादिकों के उदाहरण हैं। प्रातिपादिक - स्वरांत एवं व्यंजनांत संज्ञाएँ :-

छत्तीसगढ़ी : । स्वरांत - 'ओला', 'भाई', 'पनही', 'धिउ', 'जिउ', गहूँ, भाँटो, लइका, डउकी।। व्यंजनांत - तुक् 'निशाना', नाक्, दुख्-सुख्, जप्, तप्, जीभ्, काम्, माथ्, तात्, जात्।

बघेली : । स्वरांत - लरका, बिनउवा, अंगुरी, भुँइ, बुढ़ऊ, गोरु, जै, मड़ई (मनुष्य)। व्यंजनांत - 'पलक्', 'झलक', 'टरक्', 'पाख', 'राख', 'दाख्', 'माघ', 'बाघ', 'नाच', 'पिसान्', 'गाय्', 'जीव', 'लिलार'।

अवधी : । स्वरांत - लरिका, राजा, परजा, 'प्रजा', बारु, चौबे, दुबे, पांडे, गाँठ, अवध, गिलावा, दोहा, चेला, सवति, गाई ('गाय') दाई, माखी, बारी (बाड़ी), पीउ (प्रिय), बयारि, धोबी, पानी।। व्यंजनांत - 'भूख्',

‘घाघ्’, ‘काँच्’, ‘प्याज्’, ‘सेज्’, ‘पेट्’, ‘ठाठ्’, ‘बाढ़्’, ‘दाँय्’, ‘नाथ्’, ‘बाह्’।

पूर्वी हिंदी की तीनों बोलियों में संज्ञा प्रतिपादिक के तीन रूप मिलते हैं - सामान्य, गुरु, तथा गुरुतर। ‘सामान्य’ बातचीत में छत्तीसगढ़ी में लघु रूपों का ही प्रयोग होता है तथा घृणा, उदासीनता आदि प्रदर्शित करते समय लोग प्रायः गुरु रूपों का प्रयोग करते हैं। पुल्लिंग एवं स्त्रीलिंग संज्ञाओं में गुरु रूपों का निर्माण करते समय विभिन्न प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। आधुनिक छत्तीगढ़ी में गुरुत्तर रूपों का प्रयोग समाप्त हो गया है।”[4]

छतीसगढ़ी : पुल्लिंग

सामान्य - टूरा, पंडित, सुवा, रउतइन।

गुरु - टुरवा, पंडितवा, सुवना।

गुरुतर - टुरउना, पंडितउना,

स्त्रीलिंग - रउतइन (सामान्य),रउतिनिया (गुरु)।

बघेली : पुल्लिंग

सामान्य - घ्वाड़, छवाट्।

गुरु - घ्वड़वा, छोटु।

गुरुतर - घोड़उना, छोटउना, छोटकवा।

स्त्रीलिंग - डब्बी (सामान्य), डाँढिया (गुरु), डॅबिकवा (गुरुत्तर)।

अवधी : पुल्लिंग

सामान्य - सुआ, सरवा, नाँऊ, ठग।

गुरु - सुअना, सरऊ, नँउँवा, गवा।

गुरुतर - सरउना, नउनवा, ठगौना।

स्त्रीलिंग - नाउन (सामान्य), नउनिया (गुरु)

इस तारतम्य में बाबूराम जी का कथन सही जान पड़ता है - “पूर्वी बोलियों में पुल्लिंग आकारांत अथवा उकारांत ह्रस्व रूप के आगे ‘-ना” जोड़कर दीर्घ रूप बनता है, जैसे - कुंआ, कुँअना; ... इनका फिर दीर्घतर रूप नहीं होता है। ..... स्त्रीलिंग दीर्घ रूप में ‘-वा’ जोड़कर दीर्घतर रूप बनाया जाता है और पुलिंग दीर्घ रूप में ‘-वा’ के स्थान पर ‘-उना’ रखकर दीर्घतर रूप बनाया जाता है।”[5]

संज्ञा - ‘संज्ञा’ उस विकारी शब्द को कहते हैं, जिससे किसी विशेष वस्तु, भाव और जीव के नाम का बोध हो।[6] संज्ञा से तात्पर्य नाम से है, अर्थात् जिससे किसी व्यक्ति, जाति, समूह, द्रव्य अथवा भाव के नाम का बोध हो, वह संज्ञा है।

पूर्वी हिंदी की संज्ञा - शब्दावली को निम्नलिखित पाँच प्रकारों में विभक्त कर सकते हैं -

क्र.सं.	**संज्ञा**
1.	व्यक्तिवाचक (सभी में समान)
2.	जातिवाचक
3.	समूहवाचक
4.	द्रव्यवाचक
5.	भाववाचक

छत्तीसगढ़ी - व्यक्तिवाचक (सभी में समान)- हरी, समारु, सुरेस, भारत, बुधारु, गंगा, रईपुर, महानदी। **जातिवाचक -** मनखे, पोथी, नद्दी, टूरी, कका। **समूहवाचक -** पंचाइत, सभा। **द्रव्यवाचक-** सोन, गेहूँ, मही। **भाववाचक -** अंजोर, दोख, सिट्टा, धियान, कहिनी।

बघेली - व्यक्तिवाचक (सभी में समान) - संता, जगेसुर, रीबा, दातादीन। **जातिवाचक -** मनई, घ्वाड़, सदर, बिलारी, पहार, बीही, बाम्हन। **समूहवाचक -** पंचाइत, सभा, हाट। **द्रव्यवाचक-**माठा। **भाववाचक-** उजियार, दोख, पीरा, घिन, पाख, कहिनी।

अवधी - व्यक्तिवाचक (सभी में समान) - लछिमन, सहदेव, बिभीसन, अजोध्या। **जातिवाचक-** मनई, घोड़। **समूहवाचक -** सभा, पंचाइत। **द्रव्यवाचक -** मठा। **भाववाचक -** अंजोर, सिधाई, निकाई, केहिनी।

लिंग - लिंग-भेद संज्ञाओं में होता है, परंतु यह पूर्वी हिंदी की बोलियों में व्याकरणिक नहीं, अर्थात्मक है। जीवधारियों में पुल्लिंग-स्त्रीलिंग का भेद है। “निर्जीव संज्ञाओं के पुल्लिंग-स्त्रीलिंग भेद की उपयोगिता छत्तीसगढ़ी में नहीं प्रतीत होती है।”[7]

आकारांत संज्ञाएं प्रायः पुल्लिंग होती हैं और

ईकारांत संज्ञाएँ प्रायः स्त्रीलिंग होती हैं। संज्ञापदों के कतिपय (सामान्य) लिंग सूचक प्रत्यय निम्नलिखित हैं-

छत्तीसगढ़ी

क्र. संज्ञा

1. पुल्लिंग
    - आ — टूरा, ददा, बोकरा, मेछा, अपवाद, दया, मया
2. स्त्रीलिंग
    - इ — आँखी, माटी, रेती
    - ई, आई — डोंगरी, दाई, टूरी
    - आनी — देरानी
    - इया — मंझनिया, बहनिया
    - इन — रौताइन, बघनिन, पंडितिन

बघेली

क्र. संज्ञा

1. पुल्लिंग
    - आ — लरिका, बेटवा, म्याछा, अपवाद- बरखा
2. स्त्रीलिंग
    - इ. — छाती, बीछी,
    - ई.आई — पसुरी, नसेनी
    - आनी — देउरानी
    - इया — बिटिया, चिरइया, जोन्धइया
    - इन — दुलहिन, सोनारिन

अवधी -

क्र. संज्ञा

1. पुल्लिंग
    - आ. — हन्ना, बछवा, सियार, मिसरा, जेठ
2. स्त्रीलिंग
    - इ. — कूकुरि, हन्नी,
    - इ, आई — जेठानी, मनई
    - आनी — नाउनि
    - इया — बछिया, बुढ़िया, चिरइया
    - इन — कोरिनी, सियारिन, पंडिताइन

लिंग विधान - छत्तीसगढ़ी में कतिपय शब्द केवल स्त्रीलिंग वाची होते हैं - गाभिन, टोनही, बिहई, परगोतरी, सउत आदि। कुछ संज्ञा शब्दों के स्वतंत्र पुल्लिंग-स्त्रीलिंग युग्म होते हैं - दादा-दाई, बाबू-नोनी, भाँटों-दादी, भाई-भउजी आदि। कुछ संज्ञा शब्दों के पूर्व लिंग द्योतन के लिए पुल्लिंग एवं स्त्रीलिंग वाची प्रत्यय लगाया जाता है -- नर गुड़ेला-माई गुड़ेला (गौरेया) एंडरा भालू-एंडरी भालू, डौका कीड़ा-डौकी कीड़ा, नर चिरई-माई चिरई।[8] लिंग एवं वय भेद होने पर संबोधन में भेद हो जाता है - समवस्यक पुरुष आपस में 'एजी', एगा, 'गा' आदि का प्रयोग करते हैं। समववस्यक स्त्रियाँ आपस में - 'एया', 'रे' का प्रयोग करती हैं। आदरणीय पुरुष के लिए स्त्री 'हौ, हा, ह जी' का प्रयोग करती है। बच्चे आदरणीय पुरुष के लिए 'हौ/हा/हगो/गो/गा, का प्रयोग करते हैं।' सम्मानीय स्त्रियों के लिए 'ह ओ (हौ ओ) या 'ए ओ', 'ए गो', का प्रयोग किया जाता है। बच्चों के लिए नाम के आगे/पीछे 'रे' का प्रयोग होता है।

बघेली का लिंग-विधान छत्तीसगढ़ी जैसा ही है। संज्ञा का पद सरलता से लिंग-बोध करा देते हैं। सामान्यतः वाक्य-संरचना में विशेषण क्रिया, परसर्ग, सर्वनाम, इनसे प्रभावित नहीं होते। जैसे - भाई केर बेटवा पु. (पुल्लिंग)। भाई केर बिटिया स्त्री. (स्त्रीलिंग)। दुई रुपिया (पु.)। दुई रुपल्ली/रुपट्टी (कम प्रचलित) (स्त्री.)।

अवधी में लिंग-भेद से प्रकृति-भेद संभव हो जाता है।[10] - जैसे बिलारी (स्त्री.), बिलउटा (बिल्ली का बच्चा)। चिरइया (स्त्री.), चिरउटा (चिड़ा)। कुछ शब्द रूप की दृष्टि से पुल्लिंग और स्त्रीलिंग होते हैं किंतु उनमें परस्पर कोई संबंध नहीं होता। जैसे - एकन्ना - (एक विशेष पहाड़ा) पु.। एकन्नी- (एक आने का सिक्का) (स्त्री.)। छउना - (छोटा सा बच्चा)। छउनी - (छप्पर छाने की क्रिया)। अधपवा- (पैर में हो जाने वाला एक विशेष प्रकार छल्ला) पु.। अधपई - आधा पाव परिमाण का बटखरा। दोना-पतरी/पत्तल (पु.)। दोनियाँ/दोनइया - छोटा दोना (स्त्री.)।

निष्कर्षतः लिंग-सूचक ये प्रत्यय पूर्वी हिंदी की बोलियों के लिंग विधान को द्योतित करते हैं। ये प्रत्यय प्रायः लिंग की पहचान में सहायक हैं, तथापि अपवाद भी मिलते हैं।

वचन- प्राचीन आर्य भाषाओं में तीन वचन थे, लेकिन मध्यकाल तक केवल एकवचन एवं बहुवचन रह गए थे। पूर्वी हिंदी की बोलियों में भी दो वचन हैं - एकवचन एवं बहुवचन।

एकवचन : शब्द/ प्रतिपादिक का वह रूप जिससे एक ही वस्तु का बोध हो। छत्तीसगढ़ी में, जैसे- टूर, घर, लइका।

बहुवचन : छत्तीसगढ़ी संज्ञाओं के बहुवचनात्मक रूपों में मुख्यतः 'मन' प्रत्यय मिलता है। इसके अलावा बहुलतावाची विशेषणों के पूर्व प्रयोग से भी बहुवचन का द्योतन होता है। सब्बो/अब्बड/ जम्मो/ गंजकन/खूब आदि जोड़कर बहुवचन बना लेते हैं।

एकवचन-बहुवचन : गाड़ी-गाड़ीमन। भाँटा-भाँटमोन। कका-ककामन। गंज लइका, अब्बड़ लइका, जम्मो लइका। छत्तसीगढ़ी संज्ञाओं में द्वित्व से भी बहुवचन बनता है - गायेच गाय (गाय ही गाय), इलकेच इलका। टूरीच टूरी (लड़कियाँ ही लड़कियाँ)।

बघेली में सामान्यतः 'अन' प्रत्यय जोड़कर बहुवचन बनाए जाते हैं। जैसे - आम-आमन, उरदा-उरदन, किताब-किताबन, प्याढ- प्याढ़न (बहुत पेड़)। 'ई' कारांत प्रतिपदिक में इन, इनि, इयन के योग से बहुवचन बनाए जाते हैं - राजा-राजन, पाण्डे-पाण्डेन, धरमपुरहा- धमपुरहन, दुलहिन-दुलहिनिन। संज्ञा एकवचन रूप में बहुत एक्का, हरैं, तथा सर्वनाम के साथ पंचै का प्रयोग किया जाता है - बहुत एक्का आम, सुनीता हरैं, तुपंचै, उपंचै लगते हैं। जैसे- हम पंच, लोग, लरिकन, मनहन, गोरुअन, चिरइअन, साहब। संख्या या समूहवाचक विशेषण के प्रयोग से भी बहुवचन संकेतित होता है - द्वि लरिका/ज्वाड़ा बइल।

परसर्ग -

1. छत्तीसगढ़ी में निम्नलिखित परसर्ग प्रयुक्त होते हैं[11] -

	एक वचन	**बहुवचन**
कर्ता	हर	मन, मन-हर
कर्म	का, ला	मन-का, मन-ला
करण	ले	मन-ले
संप्रदान	का, ला, बर,	मन-का, मन-ला, मन-बर
अपादान	ले	मन-ले
संबंध	के	मन-के
अधिकरण	में, माँ	मन-मे, मन-माँ

2. बघेली परसर्ग [12]

कर्ता	*, (ने का अभाव), शून्य परसर्ग,
कर्म	का, काँही, केहीं, केनिती
संप्रदान	कहा, केंही, काँही, लाने, बाप्ते, निमित्त
अपादान	के, से, ते,
करण	से, ते, तार
संबंध	कर, केर, के केर, काँही
अधिकरण	में, माँ
संबोधन	अरे, हाय, भइयों, भइकरा, आँय, कसो, हे भगमान, हुँह, मोरबप्ता आदि।

3. अवधी के परसर्ग [13]

कर्ता	*, (ने का अभाव), शून्य परसर्ग
कर्म	का, कॉ, कह, काह,
करण	कु, के. कऊँ, कहँ, को कह, तई,
संप्रदान	से, ते, दे, सन्, सों, में लग, मारे, कास
अपादान	बाड़े का, बरे, बदे, खातिर, ताई
संबंध	से, सेनी, सेन
अधिकरण	केर, कै, करके, केरा, की, का
संबोधन	में, म, पै, पर, माँ, महँ, माहि, माँझ, मइहाँ, तीर, लगे, तना रे ! अरे !

पूर्वी हिंदी की बोलियों के रूप विकारी रूपों में परसर्ग जोड़कर बनते हैं। कर्ता मूल कारक के परसर्ग रूप में ही जुड़ते हैं शेष कारक रूप विकारी रूपों में ही जुड़ते हैं। एकवचन एवं बहुवचन के रूपों

में प्रयोग की दृष्टि से स्पष्टता है, क्योंकि एकवचन से बहुवचन बनाने में बहुवचन सूचक शब्दों का प्रयोग होता है। जैसे- आप, आप-मन (छत्तीसगढ़ी)। अवधी में कुछ शब्द रूप की दृष्टि से पुल्लिंग और स्त्रीलिंग होते हैं किंतु उनमें परस्पर कोई संबंध नहीं होता है जैसे- एकन्ना (एक विशेष पहाड़ा)। एकन्नी (एक आने का सिक्का)। छउना (छोटा सा बच्चा)। उछउनी (छप्पर छाने की क्रिया)। छत्तीसगढ़ी में बहुवचनात्मक रूपों के लिए "मन" प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। बहुलता का संकेत सब्बो, अब्बड़, जम्मों एवं गंजकन आदि को जोड़कर व्यक्त किया जाता है। जैसे- लइकामन, गंज लइका। अवधी एवं बघेली में अन, 'पंच', 'पंचै', का प्रयोग बहुवचन बनाने के लिए किया जाता है। जैसे आम-आमन (आम का बगीचा)। हम - हमपंच (हम सभी)।

"पूर्वी हिंदी की बोलियों के परसर्गों में व्यतिरेक दृष्टिगोचर होता है। छत्तीसगढ़ी में निश्चयार्थकता और विशेषार्थकता बताने के लिए (अंगरेजी के 'दी' के समान) 'हर' या 'ह' का प्रयोग किया जाता है। यह छत्तीसगढ़ी परसर्ग विशिष्टता व सूचित करने के लिए प्रयुक्त होता है।"[14] कर्म कारक के रूप में 'ला' परसर्ग प्रयुक्त होता है। संप्रदान कारक के परसर्ग में 'ला' के अतिरिक्त बर और 'खातिर' का करण एवं अपादान में 'ले' परसर्ग जुड़ता है। तीनों बोलियों में परसर्गों के लगने पर सामान्यतः सर्वनामों के रूप विकृत हो जाते हैं। 'हम' का प्रयोग अवधी में एकवचन में होता है। हम दिल्ली जाब। बघेली में 'अपना' शब्द का प्रयोग आदर देने हेतु तुम के स्थान पर प्रचलित है।

शब्द भंडार में ये बोलियाँ प्रायः समान हैं। कुछ ऐसे विशिष्ट शब्द प्रत्येक बोली में अवश्य मिल जाते हैं, जो स्थानीय आवश्यकता के कारण प्रयुक्त हैं। तद्भव एवं देशज शब्दों का बाहुल्य तथा तत्सम शब्दों का प्रयोग भी तीनों बोलियों में देखने को मिलता है। तत्सम शब्द वे ही बोलचाल में प्रयुक्त हुए हैं जो लोकजन द्वारा सहज ग्राह्य किए गए हैं। 'राम' ज्यों का त्यों तीनों बोलियों में समान रूप से मिलता है। लोक भाषाओं और क्षेत्रीय बोलियों में ठेठ स्थानीय संस्कृति के सारे उपकरण सुरक्षित रहते हैं। संपूर्ण सांस्कृतिक परंपरा और परिवेश बोलियों के दर्पण में झलकता है। पर्व-त्यौहारों, संस्कारों, विश्वासों और व्यवहारों की सारी सांस्कृतिक मौलिकता ये बोलियाँ व्यक्त करती हैं और उन्हें संरक्षण प्रदान करती हैं।

सांस्कृतिक प्रयोजनों के क्षेत्र में लोक भाषाओं की इस विशिष्ट भूमिका के रक्षण और संवर्धन के लिए लगातार प्रयास किए जा रहे हैं। पूर्वी हिंदी की बोलियों की प्रयोजन मूलकता प्रमाणित करने के लिए आवश्यक है कि संस्कृति और भाषा के अंतः संबंधों की विस्तृत और अधुनातम व्याख्या की जाए। यह कार्य सिर्फ भाषा वैज्ञानिकों और साहित्यशास्त्रियों के भरोसे संभव नहीं यह एक अंतःअनुशासनात्मक प्रयास होगा कि साहित्य, भाषा, समाजशास्त्र, मानव विज्ञान और संस्कृति के प्रतिमानों को एक-दूसरे से गूँथकर लोकभाषाओं की प्रयोजनीयता में श्रीवृद्धि की जाए। मौखिक माने जाने वाली इन बोलियों को चौखट से बाहर निकालकर लिखित भाषा के खुले आकाश में ग्लोबलाइज किया जाए। अभी भी लोकगीतों, लोक-कथाओं, लोकनाट्यों, लोकोक्तियों के संग्रहण, संरक्षण, संवर्धन की दिशा में कार्य करने की आवश्यकता है। लोकभाषा को शिष्टभाषा में बदलने के भगीरथ प्रयासों के साथ उसकी सांस्कृतिक प्रयोजनशील उपयोगिता को जीवंत बनाये रखना आवश्यक है।

वर्तमान में पूर्वी हिंदी की तीनों बोलिोयाँ राष्ट्रीय लिपि देवनागरी में लिखी जाती हैं। अवधी लेखन में पहले कैथीलिपि का भी प्रयोग होता था, विशेषरूप से अदालती कागज पत्रों आदि में। लेकिन अब इन बोलियों के लिए देवनागरी का ही सर्वत्र प्रयोग होता है। अतः लिपि की एकरूपता की दृष्टि से तीनों

बोलियों में पूर्ण समानता है यद्यपि लिपि साम्य इन बोलियों का न तो अनिवार्य अंग है और न भेदक तत्व। साहित्यिक दृष्टि से अवधी मध्यकाल से ही संपन्न है। तुलसीदास, मलिक मुहम्मद जायसी आदि ने इस बोली में महाकाव्य रचकर इसके साहित्य एवं इस भाषा दोनों को अमर बना दिया है। साहित्यिक दृष्टिकोण से अवधी सक्षम रही है। संत धरमदास, पद्माकर, रहीम आदि के काव्य में बघेली का प्राभव देखने को मिलता है लेकिन इन्हें बघेली के कवि नहीं माना जा सकता। मध्यकाल में छत्तीसगढ़ी की स्थिति भी बघेली जैसी है। लोक साहित्य तो विपुल मात्रा में उपलब्ध है लेकिन साहित्यिक परंपरा का अभाव है। यदि बात आज की जाए तो छत्तीसगढ़ी के प्रचार प्रसार में वृद्धि हुई है। राज्य बनने के बाद इसे राज्यभाषा का दर्जा दिया गया है। कविता, कहानी, उपन्यास, फिल्में, पत्र-पत्रिकाओं में अन्य दो बोलियों की अपेक्षा यह सुदृढ़ स्थित में हैं।

पूर्वी हिंदी की इन बोलियों का अध्ययन करते हुए हमने पाया है कि बोलियों का प्रयोक्ता अपनी बोली बोलने में झिझकता है। हमने बोली-भाषा में बातचीत की लेकिन प्रत्युत्तर अन्य भाषा में मिला। ठेठ शब्दों का प्रयोग सामान्यतः परिवार में सांस्कृतिक कार्यक्रमों में, संस्कारों में देखने को मिलता है। विश्वविद्यालय एवं स्कूल शिक्षा में पूर्णतः हिंदी का प्रयोग इन क्षेत्रों में किया जाता है। बाजार में भाषा-व्यवहार हिंदी और अँगरेजी में देखने को मिलता है, स्थानीय बोली का प्रयोग शहरी शॉपिंग मॉल में बहुत कम देखने को मिलता है। भूमंडलीकरण के इस युग में स्थानीय बोलियों पर लगातार संकट मंडरा रहा है। भाषा के जानकारों का मानना हैकि यदि किसी बोली को नई पीढ़ी प्रयोग नहीं कर रही है तथा बोली के स्थान पर अन्य भाषा में उत्तर दे रही है तो यह भाषा संकट का संकेत है।

ये स्थानीय बोलियाँ शिक्षा का माध्यम भी नहीं है, विशेषकर बघेली और अवधी में लगातार ह्रास देखने को मिल रहा है। भाषा संस्कृति की संवाहक होती है, ये हमारी सामाजिक संपत्ति होती हैं इनका ह्रास राष्ट्र, संस्कृति और अस्मिता का संकट है।

संदर्भ

1. दयाननंद सरस्वती, अष्टाध्यायीभाष्यम्, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, वि. 1984, पृ.- 138। **2.** द्विवेदी कपिलदेव, भाषाविज्ञान एवं भाषा शास्त्र, वाराणसी विश्वविद्यालय प्रकाशन पृ. 256। **3.** वर्मा नरेन्द्रदेव, छत्तीसगढ़ी भाषा का उद्विकास, रायपुर, छत्तीसगढ़ राज्य हिंदी ग्रंथ अकादमी पृ.- 210। **4.** सक्सेना बाबूराम, अवधी का विकास, इलाहाबाद, हिन्दुस्तानी अकेडेमी, 1972, पृ.-96। **5.** प्रसाद वासुदेवनंदन, आधुनिक हिंदी व्याकरण और रचना, पटना, भारती भवन, 23वाँ संक्रण 2014, पृ.- 68। **6.** देवी गणेश एन. कर, चितरंजन (संपा), भारतीय भाषा लोक सर्वेक्षण ओरिएंट ब्लैकस्वान PLSI-16. खंड 7 भाग 1- पृ.-54। **7.** वही, पृष्ठ- 54। **8.** वही, पृष्ठ - 55। **9.** वर्मा नरेन्द्रदेव, छत्तीसगढ़ी भाषा का उद्विकास, रायपुर, छत्तीसगढ़ राज्य हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2009 पृ. - 225। **10.** शुक्ल भगवती प्रसाद, बघेली भाषा और साहित्य, पृ.- 41। **11.** सक्सेना बाबूराम, अवधी का विकास, इलाहाबाद, हिन्दुस्तानी अकेडेमी-1972 पृ.- 99। **12.** बाहरी हरदेव, व्यावहारिक हिंदी व्याकरण तथा रचना, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण 2016, पृ.-84। **13.** तिवारी भोलानाथ, भाषाविज्ञान कोश, ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी प्रकाशन पृ.- 608। **14.** तिवारी उदयनारायण, हिंदी भाषा का उद्भव और विकास, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 2014 पृ.-2014।

सहायक प्राध्यापक (हिंदी), सीबीएस,
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय
रायपुर, (छत्तीसगढ़)-492010,
मो. 94242-29233
ईमेल - dr.girjashankar@gmail.com

●

सफल शिक्षक और सुधी समीक्षक डॉ. राम विनोद सिंह

पौल्टी कुमारी

हिन्दी आलोचना जगत् में मगध विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग में कृतकार्य आचार्य एवं अध्यक्ष तत्पश्चात् कुलपति जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा डॉ. राम विनोद सिंह की एक विशिष्ट पहचान है। डॉ. सिंह एक बहुमुखी प्रतिभा के विद्वान रहे हैं। एक उत्कृष्ट कोटि के विद्वान, प्राध्यापक, अधिकारी प्रशासक, साहित्य के विश्लेषक, सम्पादक, समालोचक जैसे विविध क्षेत्रों में इनकी प्रतिभापूर्ण कार्यक्षमता इन्हें एक अलग स्थान देती रही है। किसी भी साहित्य-विधा के अध्ययन, विवेचन, विश्लेषण तथा सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक समीक्षा में उनका मौलिक चिन्तन उनकी एक विशिष्ट पहचान बनाता है।

डॉ. सिंह की समीक्षा के सम्बन्ध में डॉ. त्रिभुवन सिंह का कथन यहाँ उल्लेखनीय है, "यों तो एक सफल शिक्षक के लिए आवश्यक है कि वह समीक्षक की योग्यता अर्जित करे परंतु डॉ. सिंह शिक्षक के साथ-साथ स्वभाव, प्रवृत्ति और चिंतन के तहत एक सफल समीक्षक हैं। हिंदी कथा साहित्य की, विशेषकर उपन्यास साहित्य की समीक्षा के क्षेत्र में उनकी अपनी पैठ और पहचान है। अद्यतन प्रवृत्तियों के आलोक में रचनाओं को भली भांति पढ़कर समीक्षा करने की पक्षधरता के कारण उनकी टिप्पणियाँ और स्थापनाएँ चुटकिली तथा महत्वपूर्ण होती हैं। अपनी इन्हीं विशेषताओं के चलते अपने शिष्यों और प्रशंसकों का काफिला उन्होंने बना रखा है, जो मुझे बिहार के साहित्य जगत् में देखने को मिला।"[1]

डॉ. नरेश प्रसाद वर्मा ने डॉ. सिंह के शिक्षक एवं समालोचकीय व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए लिखा है --"मैंने अनेक आलोचकों की समीक्षाएँ पढ़ी हैं और सुनी भी हैं, पर डॉ. राम विनोद सिंह की समीक्षा-पद्धति मुझे सबसे निराली लगी। उनकी समीक्षा अपने आप में रचनात्मक ताने-बाने से बुनी होती है। वे जब किसी विषय की समीक्षा पर लेखनी उठाते हैं, तो अपनी कला, कल्पना, भाव और लच्छेदार भाषा के माध्यम से उसे जीवंत बनाकर उसमें सरसता छलकाने लगते हैं। उसकी खूबियों के साथ-साथ खामियों पर बड़े ही मनोरंजक ढंग से प्रकाश डालते हैं। सर्वथा सुस्पष्ट चंचल निर्भीक और प्रवाहमयी आलोचना पद्धति इनकी नियति है। कलात्मक समीक्षा पद्धति में भी इनकी गहरी पैठ है। इस बात का प्रमाण उन्होंने हमें कक्षा में 'साकेत' पढ़ाते हुए दिया था, अलंकार, रस, रीति, वृत्ति, गुण-दोष आदि सौन्दर्य व भारतीय दृष्टि से जब वे पंक्ति पंक्ति पर प्रकाश डालने लगते थे तो हम सभी छात्र आनंदमग्न हो जाते थे। वे पंक्तियों का केवल पाठ करते थे, तब छायात्मक आरोह, अवरोह के कारण लयात्मक नाद सौन्दर्य स्वतः उत्पन्न हो जाया करता था। 'मुझे फूल मत मारो' जैसी पंक्तियाँ पढ़ाते हुए वे इतने तन्मय हो जाते थे कि उर्मिला और कामदेव का द्वन्द्व युद्ध

साकार हो उठता था। विरहिणी वीर बाला उर्मिला के दिव्य तेज के समक्ष कामदेव पराजित होकर एक भीरु की भाँति मैदान छोड़कर भागता सा प्रतीत होता था। 'साकेत : एक नव्य परिबोध' नामक अपनी आलोचनात्मक पुस्तक में डॉ. सिंह ने गुप्त जी की काव्याकाया में चार चाँद लगा दिए।"[2]

डॉ. वर्मा के उपर्युक्त, कथन में हमें डॉ. सिंह की काव्यात्मक एवं गद्यात्मक साहित्य की विविध विधाओं में समीक्षा और विश्लेषण की उनकी सूक्ष्म एवं पैनी दूर दृष्टि का परिचय प्राप्त होता है। उनकी समीक्षा पद्धति एक ओर शास्त्रीय होती है तो दूसरी ओर उतनी ही व्यावहारिक भी। कविता पढ़ाते हुए उसके एक-एक शब्द में सन्निहित लाक्षणिकता एवं व्यंग्यात्मकता का विश्लेषण तथा छन्द, रस, अलंकार, गुण, दोष, बिम्ब, प्रतीक आदि का विश्लेषण, उनके सूक्ष्म शास्त्रीय गांभीर्य का परिचायक है तो पात्रों के संवाद के माध्यम से उनकी चारित्रिक विशेषताओं का विश्लेषण व्यावहारिक समीक्षा की सूक्ष्मदर्शिता का।

'समीक्षा' शब्द सम-ईक्षा के योग से बना है। 'सम्' का अर्थ है 'सम्यकरूप से' और ईक्षा का अर्थ है 'देखना'। किसी रचना को निष्पक्ष और पूर्वग्रह मुक्त होकर उसमें सन्निहित समग्र गुण दोषात्मक स्थितियों का पर्यवेक्षण और मूल्यांकन ही समीक्षा है। डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने उक्त तथ्य की संपुष्टि करते हुए लिखा है "किसी वस्तु, रचना या विषय के सम्बन्ध में सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना, प्रत्येक तत्व का विवेच करना समीक्षा है। जब साहित्य के सम्बन्ध में उसकी उत्पत्ति, उसके स्वरूप, उसके विविध अंगों, गुण-दोष आदि विभिन्न तत्त्वों और पक्षों के सम्बन्ध में सम्यक् विवेचन किया जाता है तो उसे 'साहित्यिक समीक्षा' कहते हैं। साहित्य के विविध तत्वों और रूपों का स्वयं दर्शन कर दूसरों के लिए उसे द्रष्टव्य बनाना ही समीक्षक का कर्म है..... व्यावहारिक रूप में 'आलोचना' और समीक्षा का प्रयोग लगभग एक ही अर्थ में होता है।"[3]

डॉ. श्याम सुन्दर दास ने समीक्षा की चार पद्धतियों का उल्लेख किया है। कुछ विद्वानों ने इन्हें समीक्षा पद्धति के चार सोपान के रूप में माना है, ये हैं- 1. सैद्धान्तिक समीक्षा पद्धति, 2. व्याख्यानात्मक समीक्षा पद्धति, 3. निर्णायक समीक्षा पद्धति तथा 4. स्वतंत्र अथवा आत्म-प्रधान समीक्षा पद्धति। डॉ. दास ने इन चारों समीक्षा पद्धतियों में समन्वय स्थापित करने को एक अच्छे समीक्षक का गुण बतलाते हुए कहा है- यद्यपि आलोचना में इन चारों अथवा इनमें से अधिक का मिश्रण पाया जाता है फिर भी तिलतण्डुवत इसका स्वरूप भेद स्पष्ट है। आधुनिक समालोचना की यह विशेषता है कि यह विस्तृत सार्वदेशिक और सर्वकालीन साहित्य को अपना आधार बनाती है।[4]

उक्त परिभाषाओं के आलोक में डॉ. राम विनोद सिंह द्वारा प्रणीत आठ समीक्षा-पुस्तकें हैं -1. हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यास (शोध साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद) 2. साकेत : एक नव्य परिबोध (अभिनव भारती प्रकाशन-पटना), 3. जय रामदास और उनकी रामायण (अभिनव भारती प्रकाशन, पटना), 4. आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास (अनुपम प्रकाशन, पटना), 5. हिन्दी समीक्षा : सीमाएं और संभावनाएँ (अनुपम प्रकाशन पटना), 6. समकालीन हिन्दी उपन्यास (अनुपम प्रकाशन पटना), 7. गोदान : पुनर्मूल्यांकन के बाद (मोतीलाल बनारसीदास पटना) तथा 8. नौवे दशक के हिन्दी उपन्यास (अनुपम प्रकाशन पटना)।

उपर्युक्त समीक्षात्मक पुस्तकों के अतिरिक्त कथा-विधाओं से सम्बन्धित लगभग दस संपादित पुस्तकों की भूमिका में भी उनकी समीक्षात्मक अंतर्दृष्टि का परिचय प्राप्त होता है। डॉ. सिंह की दृष्टि में उपन्यास और कहानी दोनों के संघटक तत्त्व प्रायः एक ही होते हैं। कुछ मौलिक अंतर है तो यह कि उपन्यास का स्वरूप महाकाव्यात्मक होता है, कहानी का मुक्तकात्मक। फलतः उपन्यास के कलेवर में सम्पूर्ण जीवन-परिवेश प्रस्तुत होता है, कहानी में घटना अथवा परिस्थिति विशेष के परिप्रेक्ष्य में ये सारे कार्य सम्पन्न होते हैं। उपन्यास का स्वरूप एक हरीभरी वाटिका के रूप में होता है तो कहानी का एक सुनियोजित गुलदस्ते के रूप में। लोक जीवन के बिम्ब दोनों ही विधाओं में

प्राप्त होते हैं। डॉ. सिंह द्वारा संपादित कथा-संग्रहों-1. कथांतर, 2. मध्यांतर, 3. कथापथ, 4. कथ्यांतर तथा गद्य-संचय की भूमिकाओं में डॉ. सिंह की कथालोचन सम्बन्धी अंतर्दृष्टि का परिचय पाठकों को प्राप्त होता है। इनके कथा संकलनों में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी से लेकर अद्यतन कहानीकारों तक की रचनाएं संकलित हैं जिनकी भूमिका के रूप में हिन्दी कथा साहित्य के विकास तथा परिवर्तनशील परिस्थितियों में कथा-लेखन की स्थितियों प्रवृत्तियों से पाठकों को परिचित कराते हुए हरेक कहानी की अलग-अलग समीक्षा भी प्रस्तुत की गयी है।

इनके द्वारा संपादित पहला कथा संग्रह 'कथापथ' सामान्य स्नातक स्तर के विद्यार्थियों के लिए उनके पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर संपादित है। दूसरा कथासंग्रह 'मध्यान्तर' स्नातक-प्रतिष्ठा स्तर के विद्यार्थियों के निमित्त उनके पाठ्यक्रम के अनुरूप तथा तीसरा और चौथा कहानी संग्रह क्रमशः 'कथान्तर' और 'कथ्यांतर' स्नातकोत्तर स्तर के छात्रों के लिए उनके पाठ्यक्रम के अनुरूप हैं। इनमें 'कथान्तर' कहानी संग्रह का उद्देश्य हिन्दी के विविध कथा-आन्दोलनों से सम्बद्ध कहानीकारों और उनकी प्रमुख कहानियों का परिचय देना तथा हिन्दी कथा-आन्दोलनों के कारणों उनके स्वरूप, कथ्य, भाषा, शिल्प, वैचारिकता आदि से पाठकों को अवगत कराते हुए उनमें समागत परिवर्तनों से साक्षात्कार कराना उनका उद्देश्य रहा है। इस पुस्तक की भूमिका में डॉ. सिंह ने कहानी के कथ्य, शिल्प, भाषा, दृष्टि और वैचारिकता में आये परिवर्तनों में आन्दोलनों की पृष्ठभूमि और विविध विचारधाराओं का सुविस्तृत विवेचन किया है। डॉ. माधुरी कुमारी ने अपने शोध-प्रबंध में उनके कथालोचन पर विचार करते हुए लिखा है : "डॉ. सिंह ने पुस्तक की भूमिका में हिन्दी कहानी में समागत आन्दोलनों की पृष्ठभूमि और विविध विचारधाराओं से सम्बद्ध कथा आन्दोलनों पर विस्तार से प्रकाश डाला है। डॉ. सिंह ने यह स्पष्ट किया है कि जब पुराने जीवन-मूल्य मानव के विकास में बाधा होने लगते हैं तो जन-समुदाय नये दर्शन और विचारों को अपनाकर उसके अनुभव से नये जीवन-मार्ग का अन्वेषण कर उस पथ पर चल कर अपना विकास करना चाहता है। इससे पूर्व स्वीकृत जीवन मूल्यों के साथ परिवर्तित जीवन मूल्यों और परिवर्तित नवीन दृष्टिकोण का टकराव होता है। इससे आन्दोलन की शुरुआत होती है, नये जीवन मूल्यों की स्थापना होती है, लेकिन वही मूल्य फिर यदि रूढ़ होकर सामाजिक विकास का द्वार अवरुद्ध करने लगते हैं, तब फिर नये विचार कौंधते हैं। बदलाव के लिए जन-समुदाय संघर्षरत होता है। ऐसी स्थिति व सामाजिक परिवर्तन का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ता है। कहानी भी परिवर्तित विचारों और नवीन जीवन दर्शन से प्रभावित होती है।"[5]

डॉ. सिंह उन आन्दोलनों के कारण को स्पष्ट हुए कहते हैं, "वैज्ञानिक उपलब्धियों ने दुनियाँ की दूरी को अपेक्षाकृत कम करके एक-दूसरे को निकटता प्रदान की है। वैज्ञानिक अनुसंधानों और आवश्यकताओं ने हमें विश्व-मैत्री के लिए प्रेरित किया है। विश्व के बहुत सारे देशों की सभ्यता, संस्कृति और दर्शन से हमारा साक्षाताकर हुआ है और हम बहुत मायने में उससे प्रभावत भी हुए हैं। फलस्वरूप हमारी चेतना न केवल गाँधीवाद अपितु मार्क्सवाद, मनोविश्लेषणवाद जैसे वादों से भी प्रभावित हुई है। परिवर्तित स्थितियों के दबाव ने हमारी जीवन-दृष्टि और विचारधारा को बदलाव के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया है। हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं की तरह काहनी के संदर्भ में भी यह बात लागू होती है।"[6]

डॉ. सिंह द्वारा सम्पादित 'काथ्यांतर' नामक कहानी-संग्रह में संकलित कहानियाँ हिन्दी कथा-साहित्य के आरंभिक काल से सन् 2004 ई. तक परिस्थिति, परिवेश, सामाजिक स्थिति तथा जीवन-पद्धति में आये हुए विविध प्रकार की मनोवृत्तिगत परिवर्तनों का परिचय देते हुए और परिणामतः कथा-लेखन में विषयगत, परिवेशगत एवं शिल्पगत परिवर्तनों को रेखांकित करते हुए उनके नमूने प्रस्तुत करती हैं। ये कहानियाँ दशकों पूर्व लिखे जाने और प्रकाशित होने के बावजूद अद्यावधि प्रासंगिक और जीवनोपयोगी हैं। डॉ. माधुरी कुमारी का कथन है कि "ये कहानियाँ जब प्रकाशित हुई थीं तब भी चर्चित रही

और समकालीन परिवेश में इतने सारे परिवर्तनों के बावजूद आज तक धूमिल नहीं हुई। इन प्रतिष्ठित कहानियों को पुस्तक में संग्रहित करने का उद्देश्य हिन्दी की उत्कृष्ट कहानियों से पाठकों का साक्षात्कार कराना है। ये कहानियाँ अपने दम-खम के बल पर पाठकों के बीच लोकप्रिय और उपादेय सिद्ध हुई हैं।"

इनके कहानी संग्रहों में भूमिका कहीं अति संक्षिप्त तथा कहीं सुविस्तृत है जो पाठकों के पाठ्यक्रम स्तर को ध्यान रखकर लिखी गयी है। 'कथापथ' में इनकी भूमिका मात्र दो पृष्ठों की है तो मध्यांतर, कथांतर, कथ्यांतर में दर्जनों पृष्ठों की, जिनमें कहानियों की तथा कहानी विशेष की रचनात्मक परिस्थिति, कारण तथा परिणाम स्पष्टतः संकेतित हैं, वहाँ इन्होंने संग्रहित कहानियों के सर्वांगीण वैशिष्ट्य से पाठकों को परिचित कराया गया है।

डॉ. सिंह के लेखन में विश्व स्तर पर और हिन्दीतर भाषाओं की रचना परंपरा में आये सामाजिक प्रवाह और परिवर्तन से भी परिचय प्राप्त होता है। 'कथ्यांतर' की भूमिका में डॉ. सिंह ने भारतीय साहित्य पर पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव का उल्लेख करते हुए लिखा है; "भारतीय लेखकों ने अपनी जीवन-दृष्टि के अनुरूप एक ओर मार्क्सवाद तथा फ्रायड के विचारात्मक आन्दोलन से प्रेरणा प्राप्त की तो दूसरी ओर गाँधीवादी की विचार सरणियों को भी आत्मसात् किया। इस संक्रमण काल में उनके पास एक तरफ आजादी के लिए किए जाने वाले संघर्षों के प्रति लगाव स्वाभाविक रूप से था, तो दूसरी ओर पाश्चात्य जीवन मूल्यों के प्रति आकर्षण था और तीसरी ओर जड़ एवं गलित परंपरागत भावनाओं के प्रति विद्रोह का भाव भी।"[8] डॉ. सिंह अपने संपादकीय लेखन में साहित्य की विविध विधाओं में समागत परिवर्तनों का सम्बन्ध विश्वस्तरीय साहित्यिक आन्दोलनों से जोड़ते हुए विविध संपादित रचनाओं के कथ्यगत संकेतों को सूचीबद्ध करते हुए रचनाओं के केन्द्रीय भाव की ओर संकेत करते चलते हैं।

वैश्विक फलक पर साहित्यिक आन्दोलनों को प्रेरणा स्रोत के रूप में प्रस्तुत करते हुए कहानियों में उनकी परिणति को दिखलाना, कहानियों के लक्ष्य और परिणति को पाठकों के समक्ष सरल और स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करना, हर युग के कहानीकारों और उनकी प्रतिनिधि कहानियों को संपादित कराना, रचनाओं की भावी परिणति की ओर संकेत करना, जीवन मूल्यों के संदर्भ में समाज के हर वर्ग की अपेक्षाओं को उजागर करते हुए उसका सम्यक् मूल्यांकन करना, जनवादी भावनाओं के परिप्रेक्ष्य में कहानियों की यथार्थवादी एवं मनोवैज्ञानिक समीक्षा, वैदूष्यपूर्ण सरल एवं चुटकिली भाषा में कहानियों तथा उनमें समाहित तथ्यों का विश्लेषण, तथा अतं-अंत तक अपने कथनों के प्रति पाठकों के रुझान को बनाये रखना डॉ. सिंह के कथालोचन की मुख्य विशेषता है। आश्चर्य की बात है कि डॉ. सिंह स्वयं एक सम्पन्न एवं जमींदार (सामन्त) परिवार में उत्पन्न होकर, उसी व्यवस्था में पलते और बढ़ते हुए भी कहीं सामन्तवादी मानसिकता से प्रेरित होकर नहीं लिखते। साहित्यालोचन के क्षेत्र में उनके विचार सर्वथा जानवादी हैं तथा वे प्रेमचंद की जनवादी चेतना से उत्प्रेरित दिखते हैं, साथ ही अज्ञेय के मनोवैज्ञानिक चिन्तन के यथार्थ को भी वे मुक्तकंठ से स्वीकार करते हैं। डॉ. सिंह युग-चेतना से जुड़कर चलने वाले समीक्षक हैं तथा समागत परिणतियों को सामयिक प्रवाह के रूप में स्वीकार करते हैं।

सन्दर्भ

1. सं. डॉ. जितेन्द्र वत्स : डॉ. राम विनोद सिंह अभिवंदन ग्रंथ पृ.-33-38। **2.** सं. डॉ. जितेन्द्र वत्स : डॉ. राम विनोद सिंह अभिवंदन ग्रंथ पृ.-42। **3.** सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश प्रथम खण्ड (द्वि. सं.) पृ.-888। **4.** डॉ. श्यामसुन्दर दास : साहित्यलोचन (प्र.सं.) पृ.-215। **5.** डॉ. माधुरी कुमारी : हिन्दी समालोचन को डॉ. राम विनोद सिंह की देन पृ.-143। **6.** कथांतर : भूमिका डॉ. रामविनोद सिंह पृ.-1। **7.** डॉ. रामविनोद सिंह : गद्य-संचय, विषय-संकेत। **8.** कथांतर : भूमिका पृ.सं.-1।

शोधार्थी - स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
ईमेल -paultykumari123@gmail.com
मो. - 7632074786

कुपोषण का भारतीय परिदृश्य (एक समाजशास्त्रीय अध्ययन)

सुश्री सीता पाण्डेय

सारांशः किसी भी देश की प्रगति और संतुलित विकास उस देश के स्वस्थ और सुपोषित मानव संसाधन पर निर्भर करता है। परंतु बदलती सामाजिक आर्थिक व्यवस्था, कृषि पर जलवायु परिवर्तन तथा ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव, मानसून की अनिश्चितता, बदलते भोजन के प्रतिमान (फूड हैबिट), जंक फूड, फास्ट फूड तथा डिब्बा बन्द खाद्य पदार्थों तथा उपभोक्तावाद की संस्कृति आदि के संयुक्त परिणामस्वरूप कुपोषण का नए रूप में अवतरण हो रहा है, जो कुपोषण मुक्त आत्मनिर्भर भारत के निर्माण को कमजोर करता है।

यह स्थिति उस समय बन रही है, जब भारत बहुत से खाद्य पदार्थों के उत्पादन में विश्व स्तर पर अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए है। वैश्विक अर्थव्यवस्था में पाँचवीं बड़ी अर्थव्यवस्था भारत की है तथा प्रौद्योगिकी व तकनीकी विकास के माध्यम से हम चाँद के दक्षिणी ध्रुव पर पहुँच चुके हैं। ऐसे में कुपोषण की समस्या भारत के लिए किसी कलंक से कम नहीं है। इसी संदर्भ में यह शोध पत्र तैयार किया गया है। कुपोषण का भारतीय परिदृश्य क्या है? कुपोषण को दूर करने के लिए जो कल्याणकारी योजनाएं व नीतियां चलाई जा रही हैं, उनका इसे दूर करने में क्या महत्व रहा है? कुपोषण को दूर करने के लिए और क्या किया जा सकता है?

इस शोध पत्र में आंकड़ों तथा तथ्यों को संकलित करने के लिए अवलोकन प्रविधि का प्रयोग किया गया है। आंकड़ों तथा तथ्यों का अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि को ध्यान में रखते हुए विश्लेषणात्मक तथा तर्कसंगत प्रयोग किया गया है। आवश्यकतानुसार तुलनात्मक अध्ययन पद्धति प्रयुक्त की गई है। इस शोध प्रपत्र में राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय रिपोर्ट व सर्वेक्षणों का प्रयोग तथ्यों को प्रमाणित करने के लिए किया गया है। इस शोध प्रपत्र में वर्णनात्मक शोध प्ररचना तथा द्वितीयक आंकड़ों का भी प्रयोग किया गया है।

(**बीजशब्द :** कुपोषण, स्वास्थ्य, राष्ट्रीय पोषण मिशन, संतुलित आहार)।

एक स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है। यदि यह उक्ति अक्षरशः सत्य है, तो मस्तिष्क को स्वस्थ व अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए पोषण अनिवार्य संघटक तत्व है। कोई भी व्यक्ति तभी शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ तथा संतुलित रह सकता है, जब उसे प्राप्य खाद्य पदार्थों से मिलने वाली ऊर्जा उसकी शारीरिक व मानसिक अवस्था के अनुकूल हो। अर्थात उसके खाद्य पदार्थों में प्रोटीन, विटामिन, फोलिक एसिड, आयरन व

सूक्ष्म पोषक तत्वों का संतुलित समन्वय हो।

भारत विविधताओं से परिपूर्ण है, जहाँ क्षेत्रीय, सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक, नृजातीय व धार्मिक विविधताओं के दर्शन होते हैं, जो 28 राज्यों व 8 केंद्र शासित प्रदेशों में विद्यमान है। यह विविधताएं खाद्य पदार्थों की उपलब्धता व पहुंच के आधार पर अलग-अलग भोजन के प्रतिमान (फूड हैबिट) तथा पोषण के स्तर विकसित करती हैं, परंतु गुणवत्तापूर्ण खाद्यान्नों की उपलब्धता में कमी, पहुंच में असमानता तथा वितरण प्रणाली में विद्यमान दोष के मध्य से कुपोषण जैसी समस्या जन्म लेती है।

कुपोषण, पोषण की वह स्थिति है, जिसमें शरीर की अवसंरचना तथा आवश्यकता के अनुसार ऊर्जा, प्रोटीन, विटामिन तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की आपूर्ति उचित मात्रा में नहीं हो पाती है। जिससे शरीर के साथ-साथ प्रतिरक्षा प्रणाली भी कमजोर हो जाती है। आधुनिक जीवन मूल्यों के मध्य अति पोषण की जो संकल्पना विकसित हुई है, वह पोषण से संबंधित समस्याओं को जन्म दे रही है।

स्वतंत्रता के पश्चात स्वास्थ्य को प्राथमिकता प्रदान करते हुए जहाँ एक तरफ संविधान में इसे अनुच्छेद 47 व 21 में स्थान दिया गया। वहीं दूसरी तरफ स्वास्थ्य को सातवीं अनुसूची का विषय बनाया गया। स्वास्थ्य को राज्य सूची में सम्मिलित किया गया, जिससे क्षेत्रीय विविधताओं के अनुररूप उस पर कार्य किया जा सके। केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा स्वास्थ्य के बेहतर प्रबंधन के लिए नीतियाँ, कार्यक्रम व योजनाओं की शुरुआत की गई, जिससे स्वास्थ्य में सुधार करते हुए कुपोषण जैसी समस्याओं का समाधान किया जा सके। इसके लिए जहाँ एक तरफ खाद्यान्न की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही प्राथमिक व्यवसाय कृषि को सर्वाधिक महत्व प्रदान करते हुए उसे बढ़ावा दिया गया, वहीं दूसरी तरफ सन् 1966-1967 के खरीफ फसल से खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ सके, इसके लिए हरित क्रांति की शुरुआत की गई। गरीबी हटाओ को प्राथमिकता दी गई। 20 सूत्रीय कार्यक्रम चलाए गए। स्वास्थ्य संबंधित नीतियों का निर्माण हुआ, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम बनाया गया। एक राष्ट्र एक राशन कार्ड व राष्ट्रीय पोषण मिशन जैसे कार्यक्रमों की शुरुआत हुई। इन सभी कार्यक्रमों व योजनाओं का अंतिम लक्ष्य स्वास्थ्य सुधार के साथ कुपोषण की समस्या को दूर करना है। अनवरत रूप से चलाए जा रहे इन कार्यक्रमों व नीतियों के परिणामस्वरूप निश्चित रूप से स्वास्थ्य के साथ-साथ कुपोषण की स्थिति में सुधार हुआ है। परंतु अभी भी बहुत कुछ किया जाना शेष है। इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रख कर यह शोध पत्र तैयार किया जायेगा, जिससे यह जाना जा सके-- कुपोषण का वास्तविक कारण क्या है? बदलती परिस्थितियों में कुपोषण का स्वरूप कैसे परिवर्तित हुआ है? जो योजनाएं, नीतियां और कार्यक्रम राज्यों व केंद्र सरकार द्वारा चलाए जा रहे हैं वे कुपोषण को दूर करने में कहाँ तक प्रभावी रहे हैं? अतः समाज पर उसका क्या प्रभाव पड़ा है?

यदि भारत में कुपोषण के आयामों को रेखांकित किया जाए तो परंपरागत समाज से लेकर आधुनिक समाज तक जो तथ्य उभरते हैं, वह निम्नलिखित हैं--

भारत में भोजन की थाली में विविधता तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की न्यूनता और इन कारणों से प्राप्य कैलोरी की मात्रा में कमी है। इन सभी के मूल में आहार में कार्बोहाइड्रेट युक्त खाद्य पदार्थो अर्थात गेहूँ व चावल जैसे अनाजों का वर्चस्व है। एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में 23 प्रतिशत महिलाएं तथा 20 प्रतिशत पुरुष कुपोषण की समस्या से ग्रस्त हैं। झारखंड में कुपोषण से पीड़ित बच्चों का प्रतिशत सर्वाधिक है।

खाद्य तथा कृषि संगठन की रिपोर्ट के अनुसार भारत की लगभग 14.8 प्रतिशत जनसंख्या कुपोषण से ग्रस्त है। आंकडों के अनुसार वर्ष 2019 में सर्वाधिक कुपोषण की स्थिति बनी।

विश्व में खाद्य सुरक्षा और पोषण अवस्था संबंधी रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत सबसे बड़ी खाद्य असुरक्षित जनसंख्या वाला देश है। वैश्विक महामारी कोविड-19 के कारण सतत् विकास लक्ष्य के लक्ष्य संख्या 02 (शून्य भुखमरी) को 2030 तक प्राप्त करना भी कठिन और चुनौती पूर्ण प्रतीत हो रहा है।

वैश्विक खाद्य सुरक्षा रिपोर्ट 2022 में भारत 66वें स्थान पर है, जो सुधार को दिखाता है। यद्यपि भारत में स्वतंत्रता के उपरांत से लेकर आजादी के अमृत काल तक की बात की जाए तो कुपोषण की स्थिति में अनवरत सुधार दृष्टिगत होते हैं। फिर भी अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है, जिससे सिकल सेल एनीमिया, संक्रमण, मानसिक विकलांगता आदि कुपोषण से होने वाली बीमारियों को उन्मूलित किया जा सके।

विभिन्न रिपोर्टों तथा अध्ययनों के आधार पर भारत में कुपोषण के जो कारण परिलक्षित हो रहे हैं, उनमें से कुछ महत्वपूर्ण कारण इस प्रकार हैं--

1. भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 68.8 प्रतिशत (2011 जनगणना) जनसंख्या अब भी ग्रामीण क्षेत्र में निवास करती है और इस जनसंख्या का लगभग 25.7 प्रतिशत भाग निर्धनता रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहा है। इस स्थिति में लोगों के आय का स्तर निम्न है। जब प्रश्न पेट भरने का हो, तब पोषण सुस्वाद अर्थहीन हो जाते हैं। इतना ही नहीं 2019-2021 के मध्य 16.4 प्रतिशत जनसंख्या बहुआयामी निर्धनता से ग्रस्त थी। 2019-2021 के मध्य ही बहुआयामी रूप से गरीब और पोषण से वंचित लोगों का प्रतिशत 11.8 है। निर्धनता के कारण लोगों की क्रय शक्ति प्रभावित होती है तथा सतत् विकास लक्ष्यों को प्राप्त कर पाना मुश्किल होने लगता है तथा कुपोषण का मार्ग प्रशस्त होता है।

2. भारत में कुल आबादी का लगभग आधी महिलाएं हैं, लेकिन अनेकानेक प्रयासों के बावजूद वे जेंडर आधारित भेदभाव का सामना कर रही हैं। जब बात पोषण की आती है तो वह स्वयं की अपेक्षा परिवार के अन्य सदस्यों का अधिक ध्यान रखती और स्वयं की उपेक्षा करती दिखती हैं। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-5 की रिपोर्ट से यह तथ्य प्रमाणित भी होता है, क्योंकि 15 से 19 वर्ष की आयु वर्ग में 59 प्रतिशत महिलाएं एनीमिक है तथा 15 से 49 वर्ष की 57 प्रतिशत महिलाएं एनीमिया से ग्रस्त हैं। जबकि पुरुषों में यह दर कम है।

3. भोजन संबंधी अस्वस्थकर आदतों के कारण भी कुपोषण की समस्या जन्म लेती है, क्योंकि ग्रामीण व नगरीय क्षेत्रों में भोजन को लेकर अलग-अलग वैचारिकी है। आज के आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भी ग्रामीण क्षेत्रों में सामान्यतः सुबह के नाश्ते की अवधारणा लगभग नहीं है, तो वहीं नगरीय क्षेत्रों में कम आय वालों को पोषण युक्त भोजन का अभाव है। बहुत से परिवारों में अतिपोषण व फास्ट फूड तथा जंक फूड की अस्वस्थकर आदतों के कारण कुपोषण की समस्या जन्म लेती है।

4. पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव, आधुनिकीकरण तथा वैश्वीकरण के संयुक्त प्रभाव स्वरूप भारत में भी बच्चों तथा बड़ों में जंक फूड, फास्ट फूड का क्रेज बढ़ता जा रहा है। ऐसे खाद्य पदार्थों में स्वाद भले हो लेकिन पोषण के स्तर पर यह ठीक नहीं है। इनके सेवन से तमाम तरह की समस्याएं उत्पन्न हो रही है और अंततः इससे कुपोषण का मार्ग प्रशस्त होता है।

5. बढ़ते भौतिकतावाद, बदलती कार्य संस्कृति के कारण लोगों के जीवन शैली में परिवर्तन दृष्टिगत हो रहे हैं। रात्रि के समय देर तक कार्य तथा सुबह देर तक सोना सामान्य दिनचर्या बनती जा रही है, जिससे उनकी दिनचर्चा भी विनियोजित हो जाती है, जो कुपोषण को बढ़ावा देती है।

6. भारत में स्वास्थ्य सेवाएं जनसंख्या के सापेक्ष कम हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के मानक के अनुसार 1000 की जनसंख्या पर एक चिकित्सक होना चाहिए, जबकि भारत में प्रति 13000 नागरिकों पर एक

चिकित्सक है। स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच तमाम प्रयासों के बावजूद सभी तक नहीं हो पा रही है। यद्यपि डिजिटल माध्यमों का भी प्रयोग स्वास्थ्य के क्षेत्र में निरन्तर किया जा रहा है। समय से स्वास्थ्य संबंधित समस्याओं का निदान न हो पाना भी अस्वस्थता व कुपोषण का कारण बनती है।

7. भारत जैसे विविधता से परिपूर्ण समाज में लगभग विश्व में पाए जाने वाले सभी धर्म के लोग निवास करते हैं। बहुत से धर्म में बहुत से खाद्य पदार्थों को नियंत्रित इसलिए किया जाता है, क्यों कि उनका धर्म इसे ग्रहण करने की अनुमति नहीं प्रदान करता है। भले ही वे खाद्य पदार्थ पोषक तत्वों से परिपूर्ण क्यों न हों। ऐसे में यह निषेध अप्रत्यक्ष रूप से ही सही कुपोषण को बढ़ावा देते हैं।

8. आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करने वाली महिलाओं में कुपोषण का सबसे महत्वपूर्ण कारण उनका पोषण को लेकर स्वयं के प्रति उपेक्षा का भाव है। अन्नपूर्णा की उपाधि से विभूषित बहुत सी महिलाएं अन्न के बहुत थोड़े से भाग से तृप्त हो जाती हैं। सब्जियाँ व दालें न हों या अति अल्प मात्रा में हो तो भी उनका भोजन पूर्ण हो जाता है। यही कारण है कि एनीमिया से ग्रस्त लोगों में सर्वाधिक संख्या महिलाओं की होती है।

9. भारत में आज भी सभी महिलाओं के पास अचल संपत्ति अर्थात कृषि योग्य भूमि नहीं है। इतना ही नहीं बेरोजगारी की सभी किस्म भारत में पायी जाती है, जो व्यक्ति के आय के स्तर तथा उसके क्रय शक्ति को कमजोर बनाती है। ऐसे में बात भूख की हो तो पोषण स्वतः ही हाशिए पर चला जाता है।

10. कम उम्र में विवाह (बाल विवाह) के कारण महिलाओं का शारीरिक व मानसिक विकास पूर्ण रूप से नहीं हो पाता है। ऐसे में जब वे मां बनती हैं, तब उन्हें बहुत सी स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इतना ही नहीं भारत में मातृत्व मृत्यु दर अधिक होने का कारण बाल विवाह भी है। आगे चलकर यह स्थितियां एनीमिया तथा कुपोषण का कारण बनती हैं।

11. स्वस्थ संतुलित तथा पोषण युक्त भोजन के प्रति जागरूकता में कमी कुपोषण को बढ़ाता है। इस जागरूकता में भी विविधता दृष्टिगोचर होती है। गाँव, नगर, गंदी बस्तियों, जनजातीय क्षेत्रों में पोषण संबंधी जागरूकता में विभिन्नता है।

12. आवश्यक संतुलित आहार लंबे समय तक उपलब्ध न होना तथा जागरूकता व शिक्षा में कमी के कारण भी कुपोषण की स्थिति बनती है।

कुपोषण संबंधी इन विभिन्न कारणों के उन्मूलन हेतु राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं। सतत् विकास लक्ष्यों की सूची (जिसका भारत भी हस्ताक्षरकर्ता देश है) में लक्ष्य संख्या (1) गरीबी की पूर्णतया समाप्ति, लक्ष्य संख्या (2) भुखमरी की समाप्ति, लक्ष्य संख्या (3) अच्छा स्वास्थ्य और जीवन स्तर है। जिन्हें प्राप्त करने की समय सीमा 2030 तक है। यदि इन लक्ष्यों को समय से प्राप्त किया जाता है, तो निश्चित रूप से कुपोषण की स्थिति में सुधार होगा। भारत में केंद्र तथा राज्य सरकारें विभिन्न नीतियां, कार्यक्रम तथा योजनाएं चला रहे हैं। जिससे कुपोषण मुक्त भारत को मूर्त रूप दिया जा सके। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण नीतियां व कार्यक्रम इस प्रकार हैं--

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2017- राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति का मुख्य उद्देश्य स्वास्थ्य प्रणाली के समस्त आयामों, स्वास्थ्य क्षेत्र में निवेश, स्वास्थ्य सेवा सुविधाओं के व्यवस्थापन व वित्तपोषण, रोगों की रोकथाम, प्रौद्योगिकी तक पहुंच, मानव संसाधन विकास, विभिन्न चिकित्सकीय प्रणाली को प्रोत्साहन, बेहतर स्वास्थ्य हेतु अपेक्षित ज्ञान आधार तैयार करना, विभिन्न विभागों से सहयोग, वित्तीय संरक्षण संबंधी कार्य नीति तथा स्वास्थ्य क्षेत्र के विनिमय इत्यादि के संदर्भ में सरकार की भूमिका और प्राथमिकता को स्पष्ट करना है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति

2017 स्वास्थ्य सेवाओं की सार्वभौमिक पहुंच के साथ-साथ पोषण पर विशेष ध्यान देता है तथा समावेशी समाज का मार्ग प्रशस्त करता है।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013- भोजन मनुष्य की अनिवार्य आवश्यकता है तथा स्वस्थ व क्रियाशील जीवन के लिए पोषण युक्त भोजन अति आवश्यक है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013 का क्रियान्वयन किया जा रहा है। इसका उद्देश्य सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत सब्सिडी मूल्य पर खाद्यान्न प्राप्त करने के लिए 'योग्य परिवारों' के संबंधित व्यक्तियों को खाद्य सुरक्षा से आच्छादित करना है। इसके अंतर्गत 75 प्रतिशत ग्रामीण तथा 50 प्रतिशत शहरी जनसंख्या को सम्मिलित किया गया है।

राष्ट्रीय पोषण मिशन (पोषण अभियान) - मार्च 2018 को 'सुपोषित भारत, स्वस्थ भारत' के लक्ष्य को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय पोषण मिशन की शुरुआत की गई। जिसका उद्देश्य बच्चों, किशोरियों और महिलाओं के अनुकूलतम पोषण स्तर को सुनिश्चित करना है। इसमें आंगनवाड़ी केंद्रों तथा सूचना तकनीकी का प्रयोग इस मिशन को गति देने के लिए किया जा रहा है। वर्तमान में पोषण मिशन 2.0 का संचालन किया जा रहा है।

एक राष्ट्र एक राशन कार्ड- वैश्विक महामारी कोविड-19 के दौरान इसकी आवश्यकता महसूस करते हुए नौ अगस्त 2019 को यह चार राज्यों में पायलट प्रोजेक्ट के रूप में प्रारंभ हुई। जून 2022 तक यह योजना 36 राज्य व केंद्र शासित प्रदेशों में संचालित हो रही है। लगभग 80 करोड़ लोग इससे लाभान्वित हो रहे हैं। एक राष्ट्र, एक राशनकार्ड योजना खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013 का बेहतर क्रियान्वयन सुनिश्चित करती है, जिससे कि कुपोषण की समस्या को दूर करने में सहायता मिल रही है। इस योजना के तहत आच्छादित आर्थिक रूप से कमजोर गरीब, मजदूर, प्रवासी जैसे लोगों को लाभ प्राप्त होगा। जो रोजगार या किसी अन्य कारण से एक राज्य से दूसरे राज्य में आवागमन या प्रवास करते रहते हैं। इससे उन्हें भोजन की समस्या नहीं होगी।

प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना- इस योजना की शुरुआत 2 जनवरी 2017 से हुई है। यह एक केंद्र प्रायोजित योजना है। इस योजना के अंतर्गत गर्भवती महिला को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। इसमें 6000 की धनराशि तीन किश्तों में दी जाती है। इसके लिए ऑनलाइन आवेदन किया जा सकता है।

एकीकृत बाल विकास योजना- भारत में 1975 से ही एकीकृत बाल विकास सेवा चलाई जा रही है, जिसका उद्देश्य बाल कुपोषण के दुष्चक्र को तोड़ना है। क्योंकि तमाम प्रयासों के बावजूद भारत में अन्य विकसित देशों की अपेक्षा बाल कुपोषण अधिक है। बाल कुपोषण को लक्षित करके चलाया जाने वाला यह अभियान विश्व का बाल कुपोषण के विरूद्ध सबसे बड़ा कार्यक्रम है।

आयुष्मान भारत प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना- इस योजना का शुभारंभ 23 सितंबर 2018 को हुआ। इसका उद्देश्य स्वास्थ्य से संबंधित समस्याओं का समग्र रूप से समाधान करना है, जिससे स्वस्थ व सुपोषित भारत का निर्माण हो सके। आयुष्मान भारत के अंतर्गत देश के नागरिकों को पाँच लाख रू. प्रति परिवार स्वास्थ्य बीमा प्रदान किया जाता है। यह योजना विश्व की सबसे बड़ी सरकारी वित्त पोषित स्वास्थ्य देखभाल कार्यक्रम है। निर्धन वंचित समूह के लिए यह योजना किसी संजीवनी से कम नहीं है।

मध्याह्न भोजन योजना- अब 'प्रधानमंत्री पोषण शक्ति निर्माण योजना' भूख व कुपोषण की स्थिति को समाप्त करने, स्कूलों में नामांकन और उपस्थिति में वृद्धि करने तथा जातिगत असमानता को कमजोर करने के उद्देश्य से 1995 में मध्याह्न भोजन योजना प्रारंभ की गई थी जिसका नाम बदलकर 2021 में पी.एम. पोषण योजना कर दिया

गया। यह योजना विद्यालयों में भोजन उपलब्ध कराने वाली विश्व की सबसे बड़ी योजना है, जिसका लक्ष्य प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिक स्वरूप को प्राप्त करना है।

मिशन इन्द्रधनुष- इस मिशन के अंतर्गत नवजात शिशु (दो वर्ष तक के बच्चे) को सात प्रकार की बीमारियों से बचाव के लिए टीकाकरण से आच्छादित किया जाता है। ये बीमारियां हैं डिप्थीरिया, काली खांसी, टिटनेस, क्षय रोग, पोलियो, हेपेटाइटिस बी एवं खसरा।

उपयुक्त सभी योजनाओं, नीतियों तथा कार्यक्रमों के सम्मिलित प्रहार से कुपोषण की स्थिति में सुधार आ रहा है परंतु कुपोषण मुक्त भारत के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है--

1. सुरक्षित व स्वच्छ पेयजल का प्रबंध, जिससे दुर्गम व पिछड़े क्षेत्रों में जल जनित समस्याओं का समाधान किया जा सके तथा प्रदूषित जल से होने वाली स्वास्थ्य समस्या को रोका जा सके।

2. जेंडर विभेद के प्रति स्थापित मानसिकता में परिवर्तन करके महिलाओं में कुपोषण की मात्रा को कम किया जा सकता है।

3. धार्मिक निषेध, सामाजिक मूल्य, परंपराएं और रूढ़ियां सम्मिलित रूप से आज भी कुछ परंपरागत समाजों में भोजन के प्रतिमान निर्धारित करती हैं, जो विशेष रूप से महिलाओं, किशोरियों, गर्भवती महिलाओं और बच्चों पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। इसे जागरूकता व शिक्षा के माध्यम से दूर करने का प्रयास किया जाए।

4. जैविक कृषि तथा 'श्री अन्न' के कृषि को सभी क्षेत्रों में बढ़ावा दिया जाए, जिससे पोषक तत्वों से भरपूर खाद्य पदार्थों को सर्वसुलभ बनाया जा सके। इससे कुपोषण को रोकने में सहायता मिलेगी।

5. वैश्विक पोषण लक्ष्य को 2025 तक तभी प्राप्त किया जा सकता है, जब हमारा आहार संतुलित पोषक तत्वों से भरपूर हो। इसके लिए सुपर फूड 'श्री अन्न', फोर्टीफाइड फूड तथा मौसमी फल व सब्जियों को आहार तालिका में पर्याप्त मात्रा में स्थान देना होगा।

6. आकांक्षी जनपदों में कुपोषण को दूर करने के लिए जागरूकता तथा विशेष प्रयास की आवश्यकता है।

7. फास्ट फूड, जंक फूड तथा डिब्बा बंद खाद्य पदार्थों की अपेक्षा पौष्टिकता पर बल दिया जाए। पौष्टिकता को दृष्टिगत रखते हुए कुछ रचनात्मक प्रयासों से परंपरागत आहार में बदलाव किए जा सकते हैं, जो स्वास्थ्य व पोषण दोनों ही दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण होंगे।

8. आहार में महंगे फलों या साग सब्जियों की अपेक्षा मौसमी फल, साग सब्जियों को विशेष महत्व दिया जाए, क्योंकि यह एक तरफ जहाँ पौष्टिकता से भरपूर होते हैं, वहीं इनकी उपलब्धता सर्व सुलभ होती है। उनके संदर्भ में जागरूकता बढ़ाने की आवश्यकता है। सोशल मीडिया इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

9. कुपोषण के दुष्चक्र को तभी खंडित किया जा सकता है, जब माताएं स्वस्थ व सुपोषित हों इसके लिए महिला स्वास्थ्य तथा पोषण से संबंधित योजनाओं व कार्यक्रमों का जहाँ क्रियान्वयन सुदृढ़ ढंग से हो, वहीं उनके आहार में पोषक पदार्थ की संतुलित मात्रा भी सम्मिलित हो।

10. ग्रामीण क्षेत्र जहाँ आज भी कुल जनसंख्या का एक बड़ा भाग लगभग 68 प्रतिशत जनसंख्या निवास कर रही है, वहाँ जन-जागरूकता बढ़ाने के लिए आंगनबाडी, पंचायतें, आशा से (सामुदायिक स्तर पर) वास्तविक धरातल पर सहयोग अपेक्षित है, तभी बाल कुपोषण तथा महिलाओं में कुपोषण को दूर किया जा सकता है।

11. पोषण संबंधी कार्यक्रम और नीतियों का लाभ वंचित, शोषित व समाज में हाशिए पर जीवनयापन कर रहे लोगों तक पहुँचे। इसके लिए मजबूत

निगरानी तंत्र की आवश्यकता है।

12. पोषण से संबंधित जागरूकता को बढ़ाया जाए। विशेष रूप से जनजातीय बाहुल्य क्षेत्रों, ग्रामीण व पिछड़े क्षेत्रों में इसके लिए सोशल मीडिया के साथ-साथ स्थानीय स्तर पर जन-जागरूकता अभियान चलाए जा सकते हैं।

13. पोषण संबंधी कार्यक्रमों के प्रचार-प्रसार के लिए गैर सरकारी संस्थाओं आदि का सहयोग लिया जा सकता है।

14. 'श्री अन्न' पोषक से भरपूर होते हैं तथा स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से उत्तम भी। इनके उत्पादन, वितरण तथा उपयोग को अधिक से अधिक बढ़ावा दिया जाए, जिससे पौष्टिकता में वृद्धि हो।

15. वैश्विक पोषण लक्ष्य 2025 तथा एस.डी.जी. के लक्ष्यों को यदि 2030 तक भारत को प्राप्त कर स्वस्थ, सुपोषित तथा समावेशी समाज का निर्माण करना है तो पोषण, निर्धनता, भुखमरी तथा स्वास्थ्य संबंधी नीतियों, कार्यक्रमों तथा कल्याणकारी योजनाओं के क्रियान्वयन को और अधिक सुदृढ़ करना होगा।

निष्कर्ष - समस्त योजनाओं, नीतियों व कार्यक्रमों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि इससे कुपोषण की स्थिति में अनवरत सुधार हो रहा है। मिशन इंद्रधनुष जहाँ बीमारियों से टीकाकरण के माध्यम से सुरक्षा कवच प्रदान करता है, वहीं पी.एम. पोषण बच्चों के शारीरिक व मानसिक विकास को पोषण प्रदान करता है। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013 तथा राष्ट्रीय पोषण अधिनियम भूख, गरीबी से प्रभावित लोगों को भोजन संबंधी संरक्षण देता है। तो दूसरी तरफ वन नेशन वन राशन कार्ड एक स्थान से दूसरे स्थान को संचरण करने वाले प्रवासी समूह को खाद्य सुरक्षा की गारंटी देता है। एकीकृत बाल विकास बाल कुपोषण के दुष्चक्र को तोड़ने में सहायक है तो प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना गर्भधारण के बाद से लेकर प्रसूति काल तक वित्तीय सहायता के माध्यम से महिलाओं के स्वास्थ्य को सुदृढ़ बनाता है। आयुष्मान भारत योजना किसी भी तरह से हाशिए पर जीवन यापन करने वाले लोगों के लिए आजादी के अमृत काल में संजीवनी से कम नहीं है। आत्मनिर्भर भारत के निर्माण के लिए सुपोषित व स्वस्थ मानव पूँजी अनिवार्य है।

सहायक स्रोत

1. राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण रिपोर्ट 1,2,3,4,5। **2.** ग्लोबल हंगर इंडेक्स रिपोर्ट---2022। **3.** वैश्विक पोषण रिपोर्ट--2021। **4.** सतत विकास लक्ष्य--2030 संयुक्त राष्ट्र संघ (1 जनवरी 2016-2030 तक)। **5.** राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2017। 6. () **7.** भारत में कुपोषण : कारण और प्रयास। **8.** राकेश श्रीवास्तव (मई 2018), पोषण अभियान : कुपोषण से निपटने की कारगर शुरुआत (योजना, मई 2018 प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, अंक-5, पृ. 9-11)। **9.** डॉ. संतोष जैन, आकांक्षा जैन (जुलाई 2017), सार्वजनिक समुचित पोषण : वर्तमान स्थिति एवं आगामी दृष्टिकोण (कुरुक्षेत्र, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, अंक-9, पृ. 32-35)। **10.** मीरा मिश्र (जुलाई 2016), कुपोषण की रोकथाम : महिला स्वास्थ्य की भूमिका (योजना, जुलाई 2016 प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, अंक-2, पृ. 40-42)।

असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
रमाबाई राजकीय महिला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, अकबरपुर,
अंबेडकरनगर, उत्तर प्रदेश
मो.- 9076571313

●

फतह की हुई दिल्ली सिखों ने मुस्लिम बहन को तोहफे में दे दी

हमारे देश में दिल्ली के तख्त पर मुगलिया सल्तनत का शासन लगभग 300 सालों का रहा, बाबर से लेकर औरंगजेब और फिर बहादुर शाह द्वितीय तक और सिख गुरु परंपरा भी गुरु नानक देव से लेकर गुरु गोविन्द सिंह और फिर बंदा बहादुर तथा और जरनैलों का शासन भी लगभग उसी के आसपास ठहरता है। यानि दोनों लगभग एक ही कालखंड की घटनाएं हैं। सिखों के पहले गुरु नानक से लेकर पांचवें गुरु अर्जुन देव तक की पूरी गुरु परंपरा भक्ति भाव और अध्यात्म की ही रही है। वहीं पांचवें गुरु अर्जुन देव की शहादत के बाद छठे गुरु हरगोविंद से इसमें कुछ तब्दीली आनी शुरू हो गई थी। इसलिए उन्होंने एक साथ दो तलवारें धारण की-- एक मीरी की और दूसरी पीरी की। उन्होंने बताया कि मीरी की यानि राज-काज चलाने की तथा पीरी की यानि अध्यात्म की। मीरी की तलवार से पीरी की तलवार दो इंच लम्बी रखी गई थी, यानि राजकाज या शासन धर्म के अधीन है। इसका मकसद था कि शासक को ताकतवर होने के बावजूद ईश्वर को नहीं भूलना है और न्याय संगत शासन ही करना है।

दिल्ली के मुगलिया सल्तनत ने समय-समय पर भयंकर जुल्म किया। बाबर के अत्याचारों पर गुरु नानक देव ने खुलेआम यह कहा था कि -- बाबर दूं जाबर है, जिसके लिए भले ही उन्हें जेल की सलाखों के पीछे जाना पड़ा था। मुगल सुल्तान जहांगीर के समय सिख के पांचवें गुरु अर्जुन देव को लाहौर में गर्म तवे पर बिठाकर शहीद कर दिया गया था और नवें गुरु तेग बहादुर को औरंगजेब ने दिल्ली के चांदनी चौक में सर कलम कर शहीद कर दिया था। लेकिन फिर भी अन्याय के प्रतिकार के लिए सिखों का जोश कभी रुका नहीं। सिख जरनैल बाबा बंदा सिंह बहादुर 1716 ई. में अंग-अंग काट कर शहीद किया गया, यहां तक कि उनके बेटे को उनके सामने मार कर उसका कलेजा उनके मुंह में ठूंसा गया। औरगंजेब के बाद मुगल सल्तनत धीरे-धीरे खोखली होती जा रही थी और उसका शासन भी सीमित रह गया था। उस दौरान अफगानिस्तान से हमलावरों का आना शुरू हो चुका था जो भारत से करोड़ों की संपत्ति, हीरे जवाहरात तथा बच्चों और युवतियों को लूट कर ले जाने लगे थे। पहले नादिर शाह और फिर अहमद शाह अब्दाली ने हिंदुस्तान पर कई बार हमले किये। अब्दाली को रोकने वाला कोई नहीं था, लेकिन फिर सिखों की फौज से कई बार युद्ध हुए और सिखों ने उनके कब्जे से महिलाओं को छुड़वा कर उनके घर बाइज्जत भेजा। आखिरकार फिर वापस आने की अब्दाली हिम्मत नहीं कर पाया। इस बीच सिख योद्धाओं ने अलग-अलग जत्थे कायम कर लिए, जिन्हें मिसल कहा जाता था जिनमें उनका एक-एक बहादुर योद्धा लीडर होता था।

दिल्ली का तख्त, जिसके जुल्मों का लंबा इतिहास रहा है, उसके अहंकार को दूर करने के लिए जत्थेदार सरदार बघेल सिंह तथा जत्थेदार जस्सा सिंह अहलूवालिया ने सिखों की फौज के साथ 8 मार्च 1783 को दिल्ली पर चढ़ाई कर दी। उस समय दिल्ली के तख्त पर शाह आलम द्वितीय था। सिख फौजों ने दिल्ली के अलग-अलग हिस्सों को अपने कब्जे में लेना शुरू कर दिया था। इसी बीच रामगढ़िया मिसल के जत्थेदार जस्सा सिंह रामगढ़िया भी अपनी फौज के साथ दिल्ली पहुंच चुके थे। शाह आलम द्वितीय को जब हमले का पता चला तो उसने लाल किले के सभी फाटकों को बंद करवा दिया। सिख योद्धाओं ने किले की दीवार का पहले अच्छी तरह मुआयना किया फिर एक जगह ठीक की और दीवार पर मोटी लकड़ी के कुंदे से मार-मार कर उसको तोड़ दिया। वहां एक बड़ा छेद बना लिया जिसके अंदर से सभी लाल किले में दाखिल हो गये। जिस जगह पर वो छेद

किया गया था, उसे अब मोरी गेट कहा जाता है। मोरी का पंजाबी में अर्थ होता है छेद, वहीं अब अंतरराष्ट्रीय बस टर्मिनस है। दिल्ली जीतने के बाद जिस जगह मिठाई बांटी गई थी, वह जगह मिठाई पुल के नाम से परिचित है और उस समय जहां बाबा बघेल सिंह के नेतृत्व में 30 हजार सैनिक तैनात हुए थे वह जगह तीस हजारी के नाम से प्रसिद्ध है, जहां कई जिला आदालतें लगती हैं। 11 मार्च 1783 को सिख फौजें दरबारे आम तक जा पहुंची और लाल किले पर लहरा दिया गया था - केसरी निशान। केसरी निशान फहराने के साथ ही दिल्ली पर हो गया था सिखों का कब्जा। शाह आलम अब सिखों के कब्जे में कैद था।

वह लाल किला जहां कभी मुगल शासक औरंगजेब तथा बुहादुर शाह अपना दरबार लगाया करते थे उसी दीवाने आम में जत्थेदार जस्सा सिंह अहलूवालिया को सुल्तान ऐलान कर दिया गया। शाह आलम द्वितीय बंदी होते हुए गहरी चिंता में था, लेकिन इस दौरान उसे एक युक्ति सूझी और उसने अपनी बेगम समरू को बुला भेजा। समरू जिसने कभी बाबा बघेल सिंह को रक्षाबंधन कर अपना धर्म भाई बनाया था। बेगम समरू ने विचार विमर्श किया और अपने सहयोगी को साथ लेकर बाबा बघेल सिंह के पास जा पहुंची और उससे बहन होने का वास्ता दिया तथा शाह आलम की जान की खैर मांगी। धन्य है वो धर्म भाई जिसके पूर्वजों पर मुगलों ने बेइंतहां जुल्म ढाये थे, उसने बेगम समरू के सर पर हाथ रखा और कहा- जा बहन, तुम्हारे शाह आलम की जिंदगी मैं बख्श दी। लेकिन बेगम समरू इतने पर भी नहीं रुकी, उसने फिर इल्तिजा की कि लाल किले पर शाह आलम का अधिकार बरकरार रहे।

बाबा बघेल सिंह ने थोड़ी देर सोचा फिर उसने कहा -- बहन समरु, तू भी क्या याद करेगी और इतिहास भी क्या याद करेगा- लाल किला और जीती हुई दिल्ली वापस करते हैं। लेकिन इसके साथ उन्होंने कुछ शर्तें भी रखीं, जिनमें पहली थी - उन सारे स्थानों की पहचान की जाएगी जहां सिख गुरुओं की शहादत या फिर अन्य घटनाएं जुड़ी हुई हों, वहां यादगार इमारत यानि गुरुद्वारे बनाने का फरमान जारी किया जाए। इसके अलावे दिल्ली में जितनी भी बिक्री होगी उस पर लगने वाली चूंगी का 37.5% सिखों को दिया जाए, जिससे सिख फौजियों का खर्च तथा गुरुद्वारों का निर्माण वहां किया जा सके। ये सारी शर्तें मान ली गईं और जीती हुई दिल्ली एक धर्म भाई ने अपनी बहन को तोहफे में दे दी। बघेल सिंह के अलावे दूसरे सिख जरनैलों ने भी उनके दिए गए वचन का मान रखा और सिख फौज वहाँ से वापस पंजाब चली गई। हां, जीत के प्रतीक के रूप में वहां से तख्ते-ताउस को उखाड़ कर साथ ले गए और स्वर्ण मंदिर की परिक्रमा में लगा दिया।

बाबा बघेल सिंह अपनी सैन्य टुकड़ी के साथ वहां लगभग 6 महीने रहे और दिल्ली के सभी ऐतिहासिक गुरुद्वारों का निर्माण करवाया, जिनमें शामिल थे - गुरुद्वारा शीशगंज, गुरुद्वारा बंगला साहिब, बाला साहिब, माता सुंदरी जी, रकाबगंज, मोतीबाग तथा मजनू का टीला। बघेल सिंह की वापसी पर शाह आलम द्वितीय ने उन्हें अमृतसर स्वर्ण मंदिर में प्रसाद चढ़ाने के लिए 5000 रुपए भेंट किए और बड़े आदर सत्कार के साथ उन्हें रुखसत किया। इस गौरवशाली ऐतिहासिक घटना की याद में अब 11 मार्च को दिल्ली फतेह दिवस मनाया जाता है।

गौरतलब है कि हमारी पाठ्य पुस्तकों में अकबर महान की बातें तो बड़ी शान से पढ़ाई जाती हैं, लेकिन इस सुनहरे पन्ने का कहीं जिक्र नहीं मिलता, जब फतह की हुई दिल्ली को सिखों ने वचन की रक्षा के लिए मुस्लिम बहन को तोहफे में दे दिया। दिल्ली फतह की गवाही देता लाल किले पर झूलता केसरी निशान।

- रावेल पुष्प
नेताजी टावर, 278/ए, एन.एस.सी.बोस रोड,
कोलकाता - 700047, मो. 9434198898
ईमेल - rawelpushp@gmail.com

स्वत्वाधिकारी भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता के लिए सचिव शंकरलाल सोमानी द्वारा कल्याणी प्रिंटर्स, अलखसागर रोड, बीकानेर के लिए कंप्यूटर-एन-मीडिया, 25ए, सी.आर. एवेन्यू, कोलकाता-72 में मुद्रित एवं भारतीय विद्या मंदिर से प्रकाशित। संपादक-डॉ. बाबूलाल शर्मा।

भारतीय विद्या मंदिर द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

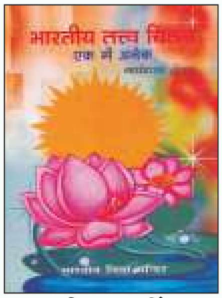

भारतीय तत्त्व चिंतन
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 190

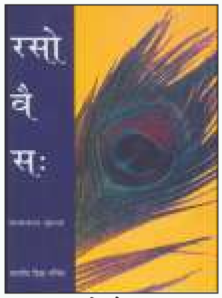

रसो वै सः
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 165

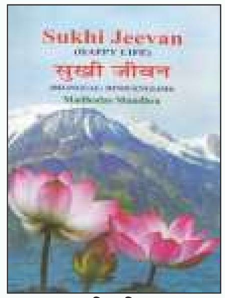

सुखी जीवन
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 275/- पृ. सं. 216

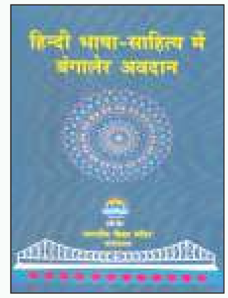

हिन्दी भाषा-साहित्य में बंगालेर अवदान
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 800/- पृ. सं. 352

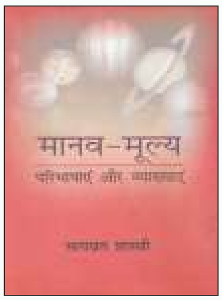

मानव मूल्य परिभाषाएं और व्याख्याएं
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 550/- पृ. सं. 304

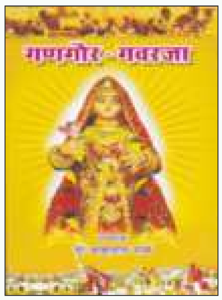

गणगौर-गवरजा
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 400/- पृ. सं. 264

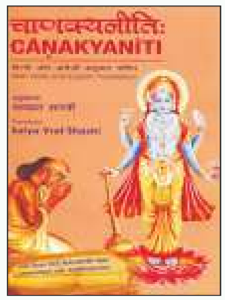

चाणक्यनीतिः
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 295/- पृ.सं. 194

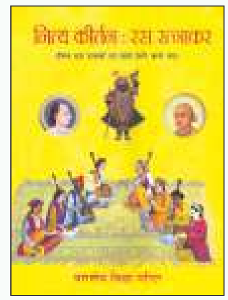

नित्य कीर्तन : रस रत्नाकर
मूल्य 900/-

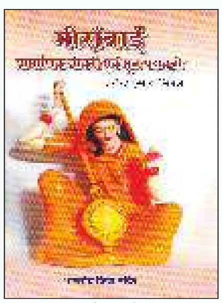

मीरांबाई
प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली
संपा. ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल
मूल्य 900/- पृ.सं. 584

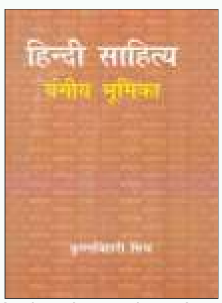

हिन्दी साहित्य बंगीय भूमिका
कृष्णबिहारी मिश्र
मूल्य 750/- पृ.सं. 551

श्रीरामकथा की कथा (प्रथम खण्ड)
आचार्य सोहनलाल रामरंग
मूल्य 600/- पृ. सं. 379

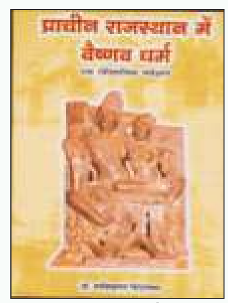

प्राचीन राजस्थान में वैष्णव धर्म
डॉ. सतीश कुमार त्रिगुणायत
मूल्य 550/- पृ. सं. 287

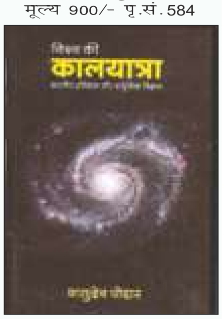

विश्व की कालयात्रा
डॉ. वासुदेव पोद्दार
मूल्य 700/- पृ. सं. 409

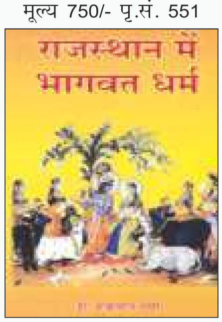

राजस्थान में भागवत धर्म
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 900/- पृ. सं. 468

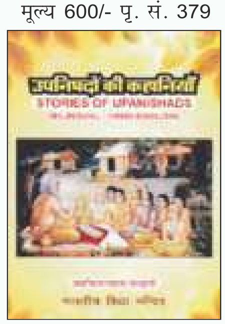

उपनिषदों की कहानियाँ
जयकिशन दास सदानी
मूल्य 400/- पृ. सं. 208

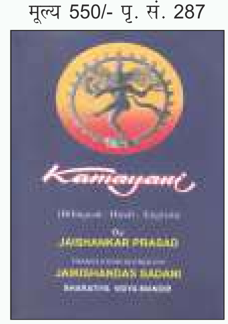

Kamayani
Tr. Jaikishandas Sadani
Price : Rs. 900/- Pages : 477

पुस्तकादेश हेतु संपर्क करें

शंकरलाल सोमानी, सिम्पलेक्स हाउस, 27, शेक्सपीयर सरणी, कोलकाता-700 017 मोबाइल : 09830559364 ई-मेल : shankar.somani@simplexinfra.com

VAICHARIKI Bi-Monthly • ₹50/-   March-April 2025   R.N.I. No. 22298/71

From	***TO***
BHARATIYA VIDYA MANDIR 12/1, Nellie Sengupta Sarani Kolkata - 700087 *(W.B.)*	

जयपुर में वैचारिकी लेखक-पाठक सम्मेलन के दौरान संस्था के अध्यक्ष डा. बी. डी. मूंधड़ाजी एवं स्वामी रामानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के प्राचार्य को इण्डियन कल्चर का सेट भेंट करते हुए।

भक्ति वेदांत इंस्टीच्यूट के समर स्कूल में भाग लेते हुए बायें से सचिव शँकरलाल सोमानी, अध्यक्ष डा. बी.डी. मूंधड़ा, पौत्र अभ्युदय मूंधड़ा (पुत्र श्री अमिताभ दास मूंधड़ा) एवं संसद के न्यासी श्री राजगोपाल सुरेका।

यादवपुर स्थित श्रीमृगानन्द महाराज जी के आश्रम में अभिवादन स्वीकार करते हुए संस्था अध्यक्ष डा. बी. डी. मूंधड़ा। बायीं ओर सचिव शँकरलाल सोमानी एवं आश्रम इंचार्ज परिचारिका।

'सिम्पलैक्स' ग्रूप के शताब्दि वर्ष के उपलक्ष्य में आयोजित कार्यक्रम के दौरान चेयरमैन एमेरिटस डा. बी. डी. मूंधड़ाजी को बंगाल का प्रसिद्ध मिष्ठान गुड़ का संदेश भेंट कर बधाई देते हुए श्रीराजगोपाल सुरेका (संसद न्यासी) एवं सिम्पलैक्स परिवार के सदस्यगण।

माँ अन्नपूर्णा का आनंद लेते हुए डा. बी.डी. मूंधड़ा और ज्येष्ठ पुत्र श्री अमिताभ दास मूंधड़ा एवं इनके पुत्र श्री अभ्युदय मूधड़ा परिलक्षित हैं।

भक्ति वेदांत इंस्टीच्यूट द्वारा बी.एच.यू. काशी में आयोजित सेमिनार के दौरान विद्यार्थियों से विज्ञान एवं चेतना पर परिचर्चा करते हुए डा. बी.डी. मूंधड़ा, ज्योतिष विभाग के प्राचार्य डा. मिश्र एवं अन्य।